ISSN-2278-0912
ओ३म्
वर्षम् - 8, अङ्कः - 97 ज्येष्ठ-आषाढ़ः-२०७३/ जूनमासः - 2016

आर्ष-ज्योतिः

तमसो मा ज्योतिर्गमय

अन्ताराष्ट्रिय-मूल्याङ्कित-शोधपत्रिका

कृषि-विज्ञानविशेषाङ्कः

राजाओं के राजा किसान....

- महर्षि दयानन्द सरस्वती

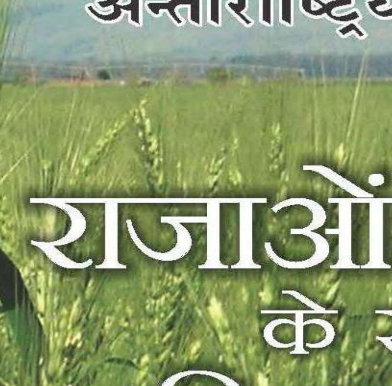

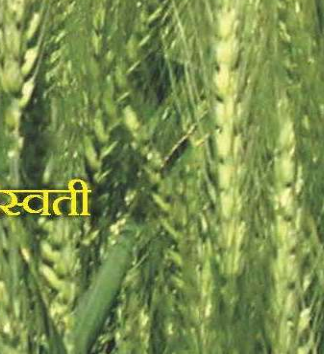

प्रसारणकार्यालयः

श्रीमद् दयानन्दार्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुलम् पौन्धा,
देहरादूनम् (उत्तराखण्डः)

दूरवाणी - ७५७६४६६६५६ चलवाणी - ०६४११०६१०४
ई-मेल : arsh.jyoti@yahoo.in Website: www.pranwanand.org

गुरुकुल परम्परा के सम्पोषक

हमारे प्रेरणापुञ्ज

माता परमेश्वरी देवी जी

प्रसिद्ध समाजसेविका

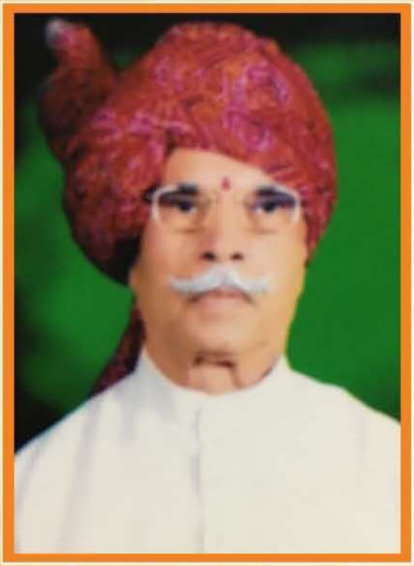

श्री राव हरिश्चन्द्र जी

प्रसिद्ध समाजसेवी

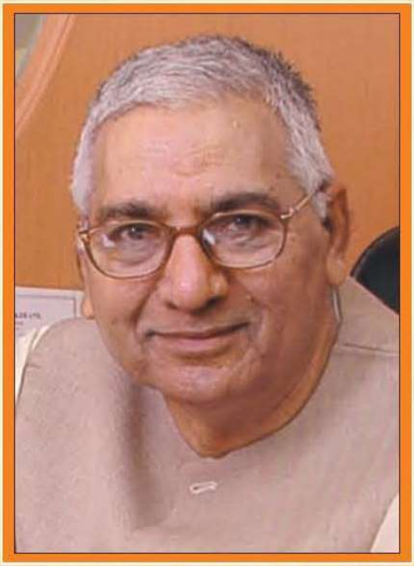

श्री लाला दीनदयाल गुप्त जी

आधिपति, डॉलर बनियान कम्पनी

ISSN : 2278:0912

❖ ओ३म् ❖

ज्यैष्ठ-आषाढः २०७३

ज्योतिष्कृणोति सूनरी

आर्ष-ज्योतिः

जूनमासः २०१६

❖संरक्षकाः❖

स्वामी प्रणवानन्दः सरस्वती
कै. रुद्रसेन आर्यः
श्रीगिरीश-अवस्थीवर्याः
(कुलसचिवः, उ.सं.वि.वि.हरिद्वारम्)
आचार्ययज्ञवीरवर्याः
श्रीचन्द्रभूषणशास्त्री

❖परामर्शदातृमण्डलम्❖

डॉ. रघुवीरवेदालङ्कारः
प्रो. महावीरः
डॉ. सोमदेवशास्त्री (मुम्बई)
डॉ. ज्वलन्तकुमारशास्त्री

❖मुख्यसम्पादकौ❖

डॉ. धनञ्जय आर्यः
रवीन्द्रकुमारः

❖कार्यकारी सम्पादकः❖

ब्र. शिवदेवार्यः

❖लेखपर्यवेक्षकाः❖

डॉ. धर्मेन्द्रकुमारशास्त्री
डॉ. विनयविद्यालङ्कारवर्याः

❖कार्यालयः❖

श्रीमद्दयानन्द-आर्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुलम्
दूनवाटिका-२, पौंधा,
देहरादूनम् (उत्तराखण्डः)
दूरवाणी - ०९४११९०६१०४
website: www.pranwanand.org
E-mail : arsh.jyoti@yahoo.in

मूल्य : रु. ५/- प्रति, वार्षिक : रु. ५०/-
मूल्य : रु. ४०/- प्रति(शोधाङ्क)

विषयानुक्रमणिका

विषय	लेखक	पृ.सङ्ख्या
सम्पादक की कलम से		
वैदिक कृषि का दृष्टिकोण...	- स्वामी विवेकानन्द सरस्वती	०६
कृषि-कृषक विश्लेषण	- डॉ० रघुवीर वेदालङ्कार	०८
वैदिक संहिताओं में कृषि साधन	- डॉ० जयदत्त उप्रेती	१२
कृषि विषयक वैदिक चिन्तन	- आचार्य यज्ञवीर शास्त्री	१६
वेदों में कृषि कार्य की श्रेष्ठता	- डॉ० विनय विद्यालङ्कार	२०
उत्तम खेती (कृषि)	- आचार्य योगेन्द्र याज्ञिक	२३
उत्तम खेती	- श्री बद्रीप्रसाद पंचोली	२७
वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कृषि दुर्दशा के कारण	- डॉ० रवीन्द्र कुमार	२९
कृषिविचार मन्थन से अमृतत्व	- श्री शिवदेव आर्य	३१
वैदिक कृषि-विज्ञान का स्वरूप	- डॉ.० वेदव्रत	३४
सृष्टि का आरम्भ और कृषि विज्ञान	- श्री मनमोहन कुमार आर्य	३८
कृषि विज्ञान में अर्थववेद का महत्त्व	- श्री कृष्णकान्त वैदिक	४१
वैदिककालीन कृषिविज्ञान	- श्री विकाश शास्त्री	४४
रामायणकालीन कृषिव्यवस्था	- श्री निखिल आर्य	४७
वेदों में कृषि, औषधि और वनस्पति विज्ञान	- डॉ० इन्दु सोनी	५०
कौटिल्य अर्थशास्त्र में कृषि-कर्म	- डॉ० रेनू के. शर्मा	५५
वैदिक वाङ्मय में वर्णित कृषि विज्ञान	- डॉ० तारेश कुमार शर्मा	५९
वेदों में कृषि विज्ञान	- डॉ० भूपेन्द्र कुमार राठौर	६३
वैदिककालीन कृषिसंरचना	- डॉ० सुमन शर्मा	६७
वैदिक कृषि में सिंचाई व्यवस्था	- श्री अवधेश कुमार	७०
वैदिक कृषि विज्ञान पद्धति	- कु. पुष्पा भोज	७४
कृषि-उत्पाद में वैदिक दृष्टिकोण	- श्री अमित धीमान	७७
वैदिक वाङ्मय में कृषि विज्ञान	- श्री आशीष कुमार	८१
अथर्ववेद में निहित कृषि का स्वरूप	- कु. मिताली	८४
कृषि-व्यवस्था	- कु. उपमा राय	८९
वेदों में कृषि-विज्ञान	- कु. प्रियंका पाठक	९२
अथर्ववेद में कृषि का स्वरूप	- अनघा गावस्कर	९५
श्रेष्ठ कृषि के उपाय	- कु. शिवानी शर्मा	९८
कृषिः वेदानामेव विज्ञानम्	- आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा	९९
प्राचीनभारते कृषिः	- डॉ. प्रभासचन्द्रः	१०७
अन्नसंवर्धने यज्ञमहत्वम्	- श्री सत्यकामः	१०९
प्रधानमन्त्री शस्य बीमा नीतिः ...	- डॉ. कान्ता शर्मा	११२

वेद-सन्देश

ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च मऽऔद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥

पदार्थः - (ऊर्क्) सुसंस्कृतमन्नम् (च) सुगन्ध्यादियुक्तम् (मे) (सूनृता) प्रिया वाक् (च) सत्या (मे) (पयः) दुग्धम् (च) उत्तमं पक्वमौषधम् (मे) (रसः) सर्वद्रव्यसारः (च) महौषधीभ्यो निष्पादितः (मे) (घृतम्) आज्यम् (च) सुसंस्कृतम् (मे) क्षौद्रम् (च) शर्करादिकम् (मे) (सग्धिः) समानभोजनम् (च) भक्ष्यादिकम् (मे) (सपीतिः) समाना पीतिः पानं यस्यां सा (च) चूष्यम् (मे) (कृषिः) भूमिकर्षणम् (च) शस्यविशेषाः (मे) (वृष्टिः) जलवर्षणम् (च) आहुतिभिः संस्क्रिया (मे) (जैत्रम्) जेतुं शीलम् (च) सुशिक्षितं सेनादिकम् (मे) (औद्भिद्यम्) उद्भिदां पृथिवीं भित्त्वा जातानां भावम् (च) फलादिकम् (मे) (यज्ञेन) सर्वरसपदार्थवर्द्धकेन कर्मणा (कल्पन्ताम्)।

अन्वयः - मे ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतञ्च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृष्टिश्च मे जैत्रञ्च मे औद्भिद्यं च यज्ञेन कल्पन्ताम्।

पदार्थः - (मे) मेरा (ऊर्क्) अच्छा संस्कार किया आर्थात् बनाया हुआ अन्न (च) और सुगन्धि आदि पदार्थों से युक्त व्यञ्जन (मे) मेरा (सूनृता) प्रियवाणी (च) और सत्य वचन (मे) मेरा (पयः) दूध (च) और उत्तम पकाये ओषधि आदि पदार्थ (मे) मेरा (रसः) सब पदार्थों का सार (च) और बड़ी-बड़ी ओषधियों से निकाला हुआ रस (मे) मेरा (घृतम्) घी (च) और उसका संस्कार करने तपाने आदि से सिद्ध हुआ पक्वान्न (मे) मेरा (मधु) सहित (च) और खाण्ड, गुड़ आदि (मे) मेरा (सग्धिः) एकसा भोजन (च) और उत्तम भोग साधन (मे) मेरी (सपीतिः) एकसा जिसमें जल का पान (च) और जो चूसने योग्य पदार्थ (मे) मेरा (कृषिः) भूमि की जुताई (च) और गेहूँ आदि अन्न (मे) मेरी (वृष्टिः) वर्षा (च) और होम की आहुतियों से पवन आदि की शुद्धि करना (मे) मेरा (जैत्रम्) जीतने का स्वभाव (च) और अच्छे शिक्षित सेना आदि जन तथा (मे) मेरे (औद्भिद्यम्) भूमि को तोड़-फोड़ के निकालने वाले वृक्षों वा वनस्पतियों का होना (च) और फूल-फल ये सब पदार्थ (यज्ञेन) समस्त रस और पदार्थों की बढ़ती करने वाले कर्म से (कल्पन्ताम) समर्थ होवें।

भावार्थः - मनुष्याः सर्वानुत्तमरसयुक्तान् पदार्थान् सञ्चित्य तान् यथाकालं होमाद्युत्तमेषु व्यवहारेषु नियोजयेयुः।

भावार्थः - मनुष्य समस्त उत्तम रसयुक्त पदार्थों को इकट्ठा करके उनको समय-समय के अनुकूल होमादि उत्तम व्यवहारों में लगावें।

सम्पादक की कलम से....

नमः ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यश्च। (ऋ. १०/१४/१५)

अनादिनिधन, करुणावरुणालय परमेश की अनुपम अनुकम्पा से ''**आर्ष-ज्योतिः**'' की ज्ञानतरङ्गिणी अनवरत प्रवाहमान है। ''**आर्ष-ज्योतिः**'' की इस अविस्मरणीय अहर्निश प्रवाहमान गति के निमित्त जहाँ हमारे सभी परापराविद्या के पारावार, शास्त्रमनीषी, वैदुष्यनिधि विद्वज्जन हैं वहीं सुधी पाठक भी हैं। क्योंकि ज्ञानरस की निष्पत्ति की प्रतिपत्ति सुधी लेखकों एवं पाठकों से ही सर्वथा सम्भव है। ''**आर्ष-ज्योतिः**'' का प्रत्येक अङ्क इस निकषोपल पर सदा उत्तम ही सिद्ध नहीं हुआ है अपितु प्रसिद्ध भी हुआ है । इस सिद्धता और प्रसिद्धता में लेखकों और पाठकों की सिद्धहस्तता और प्रबुद्धता भी अविस्मरणीय हैं'' **आर्ष-ज्योतिः**'' की प्रसिद्धि की वृद्धि में विद्यासमृद्ध बुधजनों के नैरन्तर्यताप्राप्त प्रबुद्धविचार एवं बुधजनों स्वाध्यायी पाठकों की प्रबुद्धता के प्रतिफलस्वरूप प्राप्त पत्र अत्यन्त सहायक होते हैं। सम्पादक तो मात्र लेखकों एवं पाठकों की मध्यस्थता कर योजकत्व का कार्य करता है। यह अत्यन्त सुखद एवं उत्साहवर्धक है कि ''**आर्ष-ज्योतिः**'' निर्विघ्न अपने अष्टाब्द को पूर्ण कर रही है। आप सबको हम विद्वज्जनों की अङ्कनी से समुद्भूत आशान्वित ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वस्त करते हैं कि यह आर्षज्ञानगङ्गा निरन्तर आप सब पाठकों के द्वार पर उपस्थित होकर अविद्या का विनाश और विद्या का प्रकाश करती रहेगी।

'**आर्ष-ज्योतिः**' के प्रस्तुत शोधाङ्क का विषय माननीय विद्वानों की सत्प्रेरणा से '**कृषि-विज्ञान विशेषाङ्क**' निश्चित किया है। कृषि भारतीयपरम्परा का एक अभिन्नाङ्ग है। जिसमें व्यक्ति स्वपरिश्रम से कठिनतम प्रयत्न कर जीविकोपार्जन करता है। प्राचीन काल में गृहस्थ व्यक्तियों की एक महती सङ्ख्या कृषिकर्म में ही संलग्न रहती थी। निश्छल, निर्मल एवं अविरल परिश्रम से गृहस्थ कृषक जहाँ आत्मीय परिवार का परिपोषण करता है, वहीं वह अन्य गृहस्थावलम्बी ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी एवं सन्यासी जनों का भी पालन-पोषण करता है। जिसके कारण गृहस्थ आश्रम को धर्मशास्त्रों में ज्येष्ठ व श्रेष्ठ कहा गया है।

सुहृत् पाठकजन!

कृषि कृषक का आत्मस्वाभिमान है। कृषि कर कृषक सम्पूर्ण विश्व को जीवन चलाने के लिए अन्न देता है। यदि कृषक कृषिकर्म से विरक्त हो जाये तो विश्व में अन्न व फल हेतु भयङ्कर समस्या उत्पन्न हो जायेगी। समस्त संसार में जीवनप्रदायक अन्न-फल का उत्पादक कृषक ही है। कृषक को स्वाभिमान होना चाहिए कि वह विश्व का अन्नदाता है।

वेद में कृषिकर्म को उत्तम माना है, क्योंकि कृषि कर्म में अपवित्रता की सम्भावना लेशमात्र भी नहीं है। आजीविकार्थ क्रियमाण कर्मों में कृषि ही एक ऐसा कर्म है, जो कपट आदि दोषों से पूर्णतः रहित है। अत एव दुर्व्यसनों का विहनन कर उत्तम जीवन के निर्वाहार्थ वेद कृषिकर्म को करने का ही आदेश देता है। तद्यथा - **अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व**। इससे सुस्पष्ट है कि कृषि जीवनोपार्जन का एक अनुपम उत्तम साधन

है। **'सर्वे भवन्तु सुखिनः', 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'मनुर्भव'** इत्यादि भारतीय उदात्तभावना का मूलस्थान कृषक का परिवार ही है। कृषक के परिवार में दुराचार, व्यभिचार की शिक्षा का अभाव है। वहाँ तो शैशवकाल से श्रमशक्ति का उपदेश ही प्राप्त होता है। जिस कारण कृषक बालक आजीवन भारतीय परम्पराओं का निर्वहण करते हुए जीवनयापन करता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय परम्परा का सुदृढ सुरक्षाकर्त्ता कृषक है। सम्पूर्ण वर्ष भारतवर्ष का प्रत्येक पर्व कृषक ही हर्षोल्लास के साथ मनाता है। नगरवासी तो भारतीयपरम्परा को मात्र उपलक्षणरूप में मानता है। इससे स्पष्ट है कि भारतीयपरम्परा का सर्वोत्तम रक्षक भी कृषक ही है।

सुहृत् पाठकवृन्द!

यदि अद्यतनीय परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण कृषकजनों की दु:खद कथा का श्रवण दर्शन व मनन करते है तो निश्चित ही हृदय उद्वेलित हो उठता है। समस्त विश्व को जीवनाधार अन्न प्रदान करने वाले कृषक की महत्ता भारत मे नगण्य हो गयी है। कृषक असहाय हो गया है। सर्वकारीय सुविधा उसके लिए स्वप्न है। सर्वकारीय अधिकारियों कों कृषक की समस्या सुनने का समय नही है। किसी भी क्षेत्र में कोई दुर्घटना होने पर सभी को सर्वकारीय सहायता अतिशीघ्र प्रदान की जाती है, परन्तु कृषक की कृषि पर अतिवृष्टि या अनावृष्टि आदि दैवीय आपदाओं के आने पर मिलने वाली नगण्य सहायताराशि सरकारीय अधिकारी ही खा जाते हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में कृषिकर्म एक दुष्कर एवं हीन कार्य प्रतीत होता है। सर्वकार का कोई ध्यान कृषकों पर नहीं होता है। वर्तमान में केन्द्र सर्वकार से कतिपय आशा की किरण उदीयमान होती दिख रही है। तदर्थ हम सब कृषकबन्धुओं को एकत्रित हो अपनी कृषकशक्ति का परिचय सर्वकार को देना होगा, क्योंकि सत्य ही कहा है कि – **'सङ्घे शक्तिः कलौ युगे।'**

सुहृद् बन्धुजन!

आशा एवं निराशा का दीपक प्रत्येक के जीवन में जाज्वल्यमान होने वाला अभिन्नकार्य है। सभी कृषकबन्धु नकारात्मक व हीन विचारों का त्यागकर श्रमपूर्वक अपना कर्तव्य पालन करें, क्योंकि ईश्वर न्यायकारी है। वह निश्चित ही आप सबको आपके श्रम का फल देगा। आत्महत्या जैसे कुकृत्यों को करने से तो इस समस्या का कोई समाधान नहीं प्रतीत होता है। इसे आप अपने परिवार को असहाय कर और अधिक कष्ट देते हैं। आप विकट परिस्थितियों में **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'** यह गीतावाक्य स्मरण कर अपनी जीवनयात्रा सुचारुतया प्रगतिशील करें।

विगत वर्ष की तरह इस वर्ष भी यह **आर्ष-ज्योतिः** का कृषि-विज्ञान विशेषाङ्क गुरुकुलगरिमा और प्रागल्भ्यप्रतिभा की सङ्कलना को आप सबके चित्त में समधिक चमत्कृत करेगा ऐसी मुझे महती आशा है। सुधी पाठक ही स्वयं इसकी वास्तविकता का मूल्यांकन कर इसे सार्थक करेंगे। महाकवि कालिदास के शब्दों में कहूँ तो यह है कि-

आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः॥

यह कहने कि बात नहीं कि सम्पादक का धर्म व कर्म असिधाराव्रत होता है। क्योंकि पत्रिका के सफल सम्पादन में बाधाओं के साथ बाध्यताएँ भी होती हैं, जो सम्पादक के लिए पग-पग पर निकषोपल बनकर अडिग हो जाती है, किन्तु ऐसे में निरपेक्ष भाव की सापेक्षसाधुता ही कर्तव्यपथ से हिलने नहीं देती। यह कहते हुए मुझे लेशमात्र भी क्लेश नहीं कि पत्रिका में लेखों के स्तर, उसकी उपादेयता और नैतिक मूल्य की शुद्धता का शब्दश: ध्यान रखा गया है। तथापि हमारे चर्मचक्षुओं से बचकर जो अनपेक्षित त्रुटियाँ रह गई हों, उन्हें सुधी पाठक सुधार कर पढ़ने का कष्ट करें तथा आवश्यक सुझाव भी दें। इस सम्पादनकार्य में **ब्र. शिवदेव आर्य** का सहयोग मेरे लिए अत्यन्त उपादेय रहा है। इन्होंने अहर्निश परिश्रम कर परिच्छायासदृश मेरा इस दुष्कर कार्य में सहाय्य किया है। मैं इनके लिए हार्दिक साधुवाद प्रकट करता हूँ।

अपने पितृतुल्य गुरुवर **स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी व आचार्य डॉ धनञ्जय जी** के अमोघ आशीर्वाद एवं परिच्छाया में पल्लवित होकर ही उनकी अपरिमित अमित कृपा से यह सामाजिक कृत्य करने का अवसररत्न हमें प्राप्त हुआ है। उन्ही के चरणचञ्चरीक बनकर हमें धैर्य, साहस, उत्साह एवं प्रेरणा की उपलब्धि हुई, जिनकी परिकृपा से पशुत्व से मनुष्यत्व के प्रति पथ मिला। उस महान् विभूति के हम आजीवन ऋणी रहेंगे। उनके प्रति हम सदा नतमस्तक हैं।

जिन वेदमनीषियों ने हमारी अल्पकालीन सूचना पर ही हमें **कृषिविज्ञानविषयक** लेख भेजे हैं। मैं उनका संस्था की ओर से हृदय से कोटिश: आभार व्यक्त करता हूँ। शीघ्रतावश कतिपय सम्मान्य विद्वानों से सम्पर्क भी न कर सके और कुछ विद्वान् ऐसे भी रह गए जो हमें समयाभाव या कार्यव्यस्तता के कारण लेख नहीं भेज सके हैं, उन सबके प्रति भी मैं नतमस्तक हूँ। भविष्य में भी विद्वत्समूह इसी प्रकार स्नेहाशीर्वाद से अभिषिक्त करेगा, ऐसा मेरा अतिशय विश्वास है।

अन्त में मैं यही कहूँगा कि संसार में वैसा कुछ भी नहीं जो सर्वांग सुन्दर हो, ''**नास्त्येवं जगति सर्वमनोहरं यत्।**'' अत: जो कुछ भी न्यूनता रह गई, इसकी पूर्ति के लिए ''**पण्डितानां दासोऽहं क्षन्तव्यमेतत् स्खलनम्**'' कहकर मैं दोषों को भी सद्‌गुण से मण्डित कर देने वाले, प्रकाश से अन्धकार को भी भूषित कर देने वाले ज्ञानमूर्ति वाग्देव परब्रह्म का स्मरण करता हुआ अपनी लेखनी को विराम देना चाहता हूँ कि वे इसे भी सद्‌गुणों से विभूषित करें। सम्प्रति इन्हीं शब्दों के साथ......।

संसारेऽस्मिन् विलसतु पुनर्भव्यवेदांशुमाली,
संस्काराणां भवतु महतां पावनानां प्रचार:।
लोकस्वान्ते सततसुखदा स्यन्दतां स्नेहधारा,
दिव्यानन्दे मनुजहृदयं लीयतां ब्रह्मणीदम्।।

विद्वच्चरणचञ्चरीक

रवीन्द्र कुमार
गुरुकुल पौन्धा, देहरादून

वैदिक कृषि का दृष्टिकोण एवं प्रकार

❑ स्वामी विवेकानन्द सरस्वती.....✍

कृषि का आधार है भूमि, जिसके सम्बन्ध में अथर्ववेद में स्पष्ट ही कहा है- **'कृष्टयः संबभूवुः'** (अथर्ववेद- १२/१/३,४) और अधिक स्पष्ट करते हुए वेद में ही कहा है- **जगतो निवेशिनी** (अथर्ववेद- १२/१/६)। भूमि के महत्त्व को दर्शाते हुए अथर्ववेद में **'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः'** (अथर्ववेद- १२/१/१२) अर्थात् भूमि हमारी माता है तथा हम सब इसके पुत्र हैं, यह कहा गया है। इस माता विशेषण से पृथिवी के प्रति हमारा कर्त्तव्य क्या है? पृथिवी हमारे लिये किस प्रकार से प्राणदायिनी, संपोषिका एवं पालनकर्त्री है? इसका भी स्पष्टीकरण हो जाता है। मनुष्य की जैसे-जैसे आवश्यकतायें बढ़ती गयी वैसे-वैसे वह अपने भरणपोषणार्थ भूमि को अपने ढंग से उपयोग में लाता गया और इस प्रकार अकृष्टपच्या भूमि को कृष्टपच्या के रूप में परिणत करने लगा। उसके कृष्टपच्या होने पर भी जब उसकी आवश्यकता की पूर्त्ति नहीं हुई तो उसने विविध प्रकार से उर्वरकों का निर्माण कर उससे अधिक उत्पादन लेने का प्रयास किया और वह अधिक उत्पादन के लोभ में आकर विविध प्रकार के अप्राकृतिक उर्वरकों का अवलम्बन लेने लगा। भूमि माता से उत्पादन के लिए हमें उसके स्वास्थ्य का भी ध्यान रखना चाहिए था किन्तु गौ के अबोध वत्स के समान केवल अपना ध्यान रखते हुए माँ के स्तन का पूरा दूध पीने का प्रयास किया, जो पृथिवीरूपी गौ के स्वास्थ्य के लिए अहितकर हो गया आज ऐसी स्थिति में हमें पुनः भूमि माता के स्वास्थ्य का ध्यान रखना पड़ेगा।

इस सृष्टि का निर्माण **'पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश'** इन पाँच तत्त्वों से हुआ है। किन्तु इन पाँच तत्त्वों में जहाँ भी हमें स्थूल रूप से सर्जन (निर्माण) दृष्टिगोचर होता है, वहाँ पार्थिव तत्त्व का आधार स्पष्ट दिखाई देता है। यद्यपि मानव शरीर से लेकर अन्य शरीरों, वृक्ष-वनस्पतियों में भी जलीय तत्त्व की मात्रा अधिक दिखाई देती है। किन्तु उन सभी तत्त्वों का आधार होता है- पृथिवी तत्त्व। पृथिवी तत्त्व के बिना किसी जीव-जन्तु, यहाँ तक कि वनस्पति के रूप का भी अभिव्यक्तीकरण नहीं हो पाता। इसलिए पृथिवी तत्त्व उपादान कारणों में मुख्य है। मनुष्य का कार्य भी सुगमतापूर्वक चलता रहे और उसका आधारभूत पृथिवी तत्त्व भी सुरक्षित रहे इसका ध्यान रखने के लिए अथर्ववेद के द्वादश काण्ड के प्रथम सूक्त में भूमि के महत्त्व को तथा उसकी सुरक्षा से सम्बन्धित विभिन्न रूपों को बताया गया है। जब ईश्वरीय शक्ति ने भूमि के रूप में हमें आधार दिया तो उसके साथ ही उपयोगविधा का भी निर्देश किया गया। उन निर्देशों में चार विधाएँ हैं- देवविधा, ऋषिविधा, मनुष्यविधा तथा असुरविधा। जिन्हें हम देवकृषि, ऋषिकृषि, मनुष्यकृषि एवं असुरकृषि के रूप में भी समझ सकते हैं।

देवकृषि का स्वरूप यह है कि प्रकृतिप्रदत्त वस्तुओं का दैवी साधनों द्वारा ही, बिना प्रकृति को हानि पहुँचाए, उपभोग करना। ऋषिकृषि में हम दैवी सम्पदा का उपयोग तो करें किन्तु उसकी पूर्त्ति का भी ध्यान रखें। मनुष्यकृषि में अपना ध्यान रखते हुए भूमि के सहयोगी कारणों सहित उसकी सुरक्षा का भी विशेष ध्यान रखें। आसुरी कृषि में असुरों की भाँति प्रत्यक्ष तात्कालिक लाभ को ध्यान में रखकर प्राकृतिक सम्पदा का अँधाधुन्ध दोहन करना। इस विधा के कारण से केवल भूमि का ही नहीं अपितु

प्रकृति के अन्य साधनों का भी, उनके दूरगामी परिणामों को दृष्टि में न रखकर केवल प्रत्यक्ष में जो लाभ दिखाई देता है, उसी के माध्यम से उनका उपयोग करना। वेद के अनुसार प्राकृतिक तत्त्वों में देवत्त्वदर्शन की दृष्टि निहित है।

आज का मानव आसुरी विधा के द्वारा ही समस्त प्राकृतिक सम्पदाओं का दोहन कर रहा है, बिना यह विचारे कि इसका कुपरिणाम क्या होगा? उदाहरणार्थ गमनागमन की सुविधा के लिए पर्वतों पर या समतल भूमि पर जो वृक्ष हैं उनको अँधाधुन्ध काटा जाता है, बिना यह विचारे कि वृक्ष कटेंगे तो भूमि की सुरक्षा, जो वृक्षों के द्वारा अनायास ही होती रहती थी समाप्त हो जायेगी। बाँध बँधते हैं तो नदी के जल का संग्रह होता है और उसके द्वारा कुछ छोटे-मोटे लाभ भी प्राप्त होते हैं किन्तु विशाल बाँधों के द्वारा जितनी भूमि तथा वृक्ष-वनस्पति नष्ट होते हैं, उनकी तुलना में बड़े बाँधों का निर्माण अति तुच्छ लाभकारी है। जो कार्य छोटे बाँधों के द्वारा सम्पन्न हो सकता है और प्रकृति को भी सामान्य रूप से ही प्रभावित करता है, उसी विधा को अपनाना चाहिए। आज अनावश्यक रूप से प्रकृति के दोहन से जो विश्व का वातावरण असन्तुलित हो गया है, उसकी पूर्त्ति का एकमात्र साधन 'वैदिक कृषि' है। जिसमें प्रकृतिप्रदत्त साधनों का ही उपयोग होता है और मनुष्य के समय एवं स्वास्थ्य का भी सदुपयोग होता है। जैसे कृषि करने के लिए और हल चलाने के लिए बैल तथा हल की आवश्यकता होती है। बैल प्रकृति द्वारा प्रदत्त साधन गौमाता से प्राप्त होते हैं और लकड़ी वृक्षों से तथा मनुष्यों का स्वपुरुषार्थ उसके कृषि के योग्य भूमि के निर्माण में सहायक होता है। इसके लिए किसी अन्य बाह्य साधन की आवश्कता नहीं होती। भूमि माता को स्वस्थ, उर्वरा युक्त बनाने के लिए हमें गोवंशों के गोमय के माध्यम से ही इतने उर्वरकों की प्राप्ति हो जाती है कि हम उसका भरण-पोषण कर सकते हैं। यदि इसमें किसी प्रकार की न्यूनता होती है तो प्राकृतिक हरित उर्वरकों से उसकी आपूर्त्ति सुगमता से हो जाती है। पतझड़ के समय में अवश्यम्भावी पत्तों के गिरने की प्रक्रिया से ही उन गिरे हुए पत्तों के माध्यम से भूमि माता को स्वस्थ बनाने के लिए अनेक उर्वरक प्राप्त हो जाते हैं। जिन उर्वरकों के प्रयोग से भूमि में उत्पन्न होने वाले अन्नादि पदार्थ भी जिस स्वास्थ्य आदि के लिए उत्पन्न किये जाते हैं उनकी सुरक्षा भी स्वतः ही होती रहती है। इस प्रकार की कृषि की विधा को दैवीचक्र के नाम से भी जाना जा सकता है और इस प्रकार का चक्र हमारी सभी प्राकृतिक सम्पदाओं की रक्षा करते हुए प्राणि-मात्र की रक्षा करता है।

विज्ञान का वास्तविक लाभ या उपयोग तो यही है कि अपने सभी संसाधनों का संरक्षण करते हुए हम उनसे लाभ प्राप्त करें। प्राचीन काल में ऋषियों ने जो भी आविष्कार किया उनके मूल में यही भावना कार्य करती रही कि प्रकृति का विनाश नहीं अपितु उसका सहयोगात्मक उपयोग। विज्ञान के विकासों में यदि यह मूल भावना सन्निहित हो जाए तो चतुर्दिक् सुरक्षा ही हमें दृष्टिगोचर होगी। सामान्य रूप से हम जिसे कृषि कहते हैं अर्थात् जिससे विविध प्रकार से अन्नादि का उत्पादन करते हैं यदि वह अविनाशकारी हो तो प्रकृति का अक्षय भण्डार जहाँ सुरक्षित रहेगा वहीं संकटापन्न मानवता भी सुरक्षित रहेगी। अथर्ववेद के बारहवें काण्ड का प्रथम सूक्त इस विषय में हमें यही संकेत दे रहा है।

*-**कुलाधिपति***
गुरुकुल प्रभात आश्रम,
टीकरी (भोला झाल), मेरठ

सविता देवः मा यशसं कृणोतु (अथर्ववेद-१.५८.१)

सविता देव परमात्मा! मुझे यशस्वी करे ।

कृषि-कृषक विश्लेषण

❑ **डॉ. रघुवीर वेदालंकार.....**

वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्थानुसार वाणिज्य तथा कृषि को वैश्यों का कर्म कहा गया है। (१) वैश्यवर्ग इतना बुद्धिमान् निकला कि कृषि कर्म तो क्षत्रियों को दे दिया तथा वाणिज्य अपने हाथ में रख लिया। वाणिज्य में धनागम अधिक है तथा कृषि में परिश्रम अधिक एवं धनागम कम। सम्भवतः इसीलिए वैश्यों ने यह बुद्धिमानी की होगी जो आज भी यथावत् जारी है। स्वतन्त्रतापूर्व भी यही स्थिति थी तथा अब भी यही है। इतना अन्तर अवश्य आया है कि आज किसान अपनी भूमि का स्वामी है, जबकि स्वतन्त्रता से पूर्व भूस्वामी भी वैश्य ही होते थे तथा क्षत्रिय जातियाँ उनकी भूमि को पट्टे पर जोतती थी। हमें उनकी तरङ्ग स्मरण हैं कि स्वतन्त्रता के पश्चात् दशगुणा लेकर सरकार ने वैश्यों के स्थान पर किसानों को ही भूस्वामी बनाया था।

ऋग्वेद के अक्षसूक्त में कितना सुन्दर कहा है-**'अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः'** इसका अभिधेयार्थ तो केवल इतना ही है कि जुआ मत खेल, यहीं खेती ही कर। धन को बहुत समझ कर आनन्दित रह। इसका व्यङ्ग्यार्थ गम्भीर है। वह यह है कि जुआ आदि बेईमानी के साधनों से धन मत कमा, चाहे खेती के समान कठोर परिश्रम ही क्यों न करना पडे तथापि ऐसी जीविका अपनाओं, जिसमें ईमानदारी हो। प्रश्न है कि इस प्रकार धन प्राप्ति तो स्वल्प ही होगी तो जीविका कैसे चलेगी ? वेद कहता है कि जितना भी मिले उसी में प्रसन्नता पूर्वक जीविका चलाओं। यह परिश्रम एवं ईमानदारी का मार्ग है जबकि व्यापार बेईमानी तथा आराम का मार्ग है। आज भी ऐसा ही है। व्यापारी वर्ग चाहे वह वैश्य है या अन्य जातीय है, वह क्या रहा है? जबकि किसान महाराष्ट्र आदि में आत्महत्या कर रहे हैं। हमें स्मरण है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् किसान जितना बीज खेत में बोता था, उसे फसल पकने पर कभी-कभी वह भी वापस नहीं मिलता था, क्योंकि सिंचाई का पानी नहीं था। धीरे-धीरे सरकारी स्तर पर तथा व्यक्तिगत रूप में ट्यूबबैल लगाये गये। अतः जल की समस्या हल होने से अब अच्छी खेती हो रही है। स्वतन्त्रता के पश्चात् उद्योगों पर तो अधिक ध्यान दिया गया किन्तु कृषि पर उतना नहीं, जितना कि दिया जाना चाहिए था। पुनरपि नये-नये बीजों तथा खाद के द्वारा पैदावार को बढाया गया। आज किसान पूर्वापेक्षया सम्पन्न हैं किन्तु अति विपन्न भी है तथा एक प्रकार से वह बन्धक बन गया है। बन्धक किनका ? उन पूंजीपतियों का जिनका रासायनिक खाद द्रव्य प्रयोग कर रहा है। आज किसान की स्थिति साँप के मुख में छछूंदर जैसी हो गयी है, जो उसे न तो निगल सकता है तथा न ही छोड सकता। छछूंदर सर्प के गले की फांस बन गयी। इसी प्रकार रासायनिक खाद भी किसानों के गले की फांस बन गयी, क्योंकि उसे कई-कई बार खाद डालना पडता है। इसके दो दुष्परिणाम हैं। पहला यह कि खाद बहुत मंहगा है। अतः किसान का पर्याप्त धन इसमें चला जाता है। इसका दूसरा दुष्परिणाम तो राष्ट्र व्यापार तथा सभी राष्ट्रवासियों के लिए अत्यन्त घातक है, जिसे जानते हुए भी हम उससे निपटने की स्थिति में नहीं है। उसका परिणाम है कि रासायनिक खाद ने सभी फसलों को विषैली बना दिया । ये सभी खाद कीटाणु नाशक है, विषगर्भित है। विष फसल में प्रविष्ट हो रहा है तथा वही विष अनाज के रूप में हम सभी खा रहे हैं। परिणाम स्पष्ट है कि देश नाना रोगों का घर बनता जा रहा है। जिनका नाम भी नहीं सुना था, ऐसे नये-नये रोग विभिन्न रूपों में उत्पन्न होते जा रहे हैं। व्यक्ति की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होती जा रही है। फलतः जनता की गाढी कमाई का एक बडा प्रतिशत असफलताओं की भेंट चढ

जाता है। इसका स्पष्ट उदाहरण हम देख सकते हैं कि आज पंजाब कैंसर की चपेट में ही चला गया है। भारत भर में यह कैंसर आकार में बादल की भाँति छाता जा रहा है। यदि यही अवस्था रही तो कैंसर एक सर्वसामान्य बीमारी बन जायेगी। दिल्ली एग्री कल्चर की रिपोर्ट के अनुसार आज सब्जियों में १०० प्रतिशत जहर है। रासायनिक खाद से पशुओं का चारा भी दूषित हो गया है, जिसके अनुसार उनका मांस भी दूषित हो गया है। गिद्ध उस मांस को नहीं खाते। अत: गिद्धों की संख्या कम हो गयी है।

जब तक रासायनिक खाद का प्रयोग नहीं होता था, तब ये रोग नही थे, क्योंकि फसल शुद्ध थी। तब तथा जब हम खाद से रहित गेहूँ को देशी गेहूँ तथा गन्ने को देशी गन्ना कहते थे। शीतकाल में देशी गन्ने का रस पीकर किसान-मजदूर सभी के चेहरे लाल हो जाते थे। यही हाल गुड का था। आज रस तथा गुड दोनों ही विषाक्त होने से नाना रोगों को जन्म दे रहे हैं। बैलों के द्वारा खेती होती थी। अत: किसानों के पास पर्याप्त बैल होते थे। उनका गोबर खाद के रूप में प्रयोग किया जाता था। वह खाद इतना गुणकारी था कि एकबार डालने पर तीन वर्ष तक काम करता था। अब घर-घर में ट्रेक्टर होने से किसानों के घर से बैल विदा हो गये । कहाँ गये? कसाईयों के घरों में या करोड़ों की लागत से बनने वाले कत्ल खानों में जिनके मांस-रक्त-हड्डी आदि का निर्यात करके अर्थव्यवस्था विदेशों के कर्ज पर निर्भर रहती है। यह ठीक है कि मशीनों के द्वारा खेती कम समय में हो जाती है तथा रासायनिक खाद से फसल भी पर्याप्त मिलती है, किन्तु इनका जो राष्ट्रव्यापी विघातक परिणाम देखने मे आ रहा है - वह अवश्य ही चिन्तनीय है।

खेती के लिए एक बड़ी समस्या उद्योगीकरण तथा अवनीकरण है। बड़े-बड़े उद्योगों के लिए कृषियोग्य भूमि का अधिग्रहण कर लिया जाता तथा नयी-नयी कालोनियाँ, नये-नये नगर बसाने के लिए भी भूमि अधिगृहीत की जाती है। परिणाम स्वरूप खेती की भूमि कम होती जा रही है। ग्रामों में किसानों के युवा जो कि अच्छे पढ-लिखकर न तो नौकरी कर सकते हैं तथा न ही उनके घर पर्याप्त भूमि रह गयी, बेरोजगारी की ओर बढ रहे हैं। पूर्वोक्त मशीनीकरण का एक अत्यन्त दूषित प्रभाव यह पडा कि ट्रेक्टरों के द्वारा गोचर भूमि को भी समाप्त कर दिया गया। परिणाम अति भयानक यह हुआ कि पहले एक-एक घर में १००-५० गउएँ होना साधारण बात थी। प्रत्येक किसान गाय या भैंस पालता था। इसके दो लाभ थे। घर का दूध-घी-छाछ मिलता था तो इससे स्वस्थ्य तो उत्तम होता ही था। रोग भी नहीं होते थे। **'भोजनान्ते च पेयम्-तक्रम्'** यह आयुर्वेदीय सिद्धान्त ग्रामों में स्वभावत: प्रचलित था। छाछ भी इतनी गाढी होती थी कि जिसे पीकर मजदूर भी सुखी हो जाता था। दूध-घी के कारण अनाज कम खाया जाता था। हमारे दादा जी कहते थे कि बचपन में उन्हें कान पकड कर रोटी खिलाई जाती थी क्योंकि घी-दूध खाने का ही अभ्यास था। उनकी लम्बाई ६ फिट होती थी। गोहत्यारी सरकारों ने गोवंश को ही समाप्त कर दिया। जो बचा है, वह भी समाप्त हो जायेगा। परिणाम ६०-६४ में चार रूपये का एक सेर घी तथा छ: आने का एक सेर शुद्ध घी मिलता था। आज ४००-५०० रुपये किलो घी तथा ५० रुपये किलो तक दूध है तो भारतवासी चाय पीने को ही विवश होंगे या नहीं? वह भी १० रुपये का एक प्याला। गोवंश खेती से जुडा हुआ था। खेती उसी पर निर्भर थी। किसान खाद से अपनी फसल को उर्वरा बनाता था। आज सब समाप्त हो गया। किसान पूंजीपतियों का बन्धक बन गया तथा देश नाना रोगों की चपेट में आ गया। इसे कृषि की उन्नति, देश की उन्नति कहें या ह्रास कहें। आज ही निर्णय कीजिए। यजुर्वेद-४/१० में कहा गया है कि-**सुसस्या: कृषीस्कृधि।** अर्थात् खेती को उत्तम अन्न वाली बनाओ। आज पैदावार बढने के साथ-साथ अन्न विषयुक्त होते जा रहे हैं।

सरकार की ओर से नये-नये बीज तथा उर्वरक खाद प्रदान करके तो कृषि की ओर ध्यान दिया गया है, किन्तु किसान आज भी स्वावलम्बी नहीं है। किसान ही एक ऐसा निरीह विवश प्राणी है जिसे अपनी फसल स्वयं बाजार में जाकर दूसरों के द्वारा नियन्त्रित भाव में ही बेचकर आना पडता है क्योंकि उसके पास अपनी फसल को संचित एवं सुरक्षित रखने के साधन नहीं है। इसके अतिरिक्त फसल बेचकर ही वह अपना दैनिक निर्वाह करता है। ऐसा प्रयत्न किया जाना चाहिए कि किसान सम्मिलित रूप में सहकारी गोदामों में अपेक्षित समय तक अपनी फसल को रोक सकें। सहकारी स्तर पर गन्ने से गुड-खांड, चीनी आदि बनाने के साधन भी किसान के पास हो तो उसे इस समस्या का समस्या का सामना नहीं करना पडेगा कि मिल मालिक वर्षों तक किसानों का पैसा नहीं देते, जबकि सरकार से सब्सिडी लेते रहते हैं। किसान की फसल का बीमा भी होना चाहिए जिससे कि अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि से उसे आर्थिक हानि न उठानी पडे। किसान की फसल को भरपूर पानी देने का दायित्व भी सरकार का है। बदले में किसान पानी का मूल्य तो देंगे ही किन्तु जो सरकार पीने के पानी की समस्या को भी नहीं सुलझा सकती, उससे फसल के पानी की बात करना तो दिवास्पप्न ही है। महर्षि दयानन्द ने किसान को राजाओं का राजा कहा है। वह घोर परिश्रम करता है, किन्तु उसे इसका उचित पारिश्रमिक नहीं मिलता। एक कहावत है कि -'झकत विद्या पचत खेती'। अर्थात् झक-झक करते रहने से ही विद्या आती है तथा पचते रहने परिश्रम करने से ही खेती होती है। पुनरपि यह कहावत सुप्रसिद्ध है-

उत्तम खेती मध्यम बान। (व्यापार)
कठिन चाकती भीख निदान।।

आज उत्तम खेती तथा राजाओं के राजा किसान की स्थिति समयानुकूल उन्नति पर नहीं है।

यज्ञ तथा कृषि - कृषि के लिए एक अन्य प्रयोग भी करना चाहिए। ऐसे प्रयोग हो रहे हैं कि संगीत ध्वनि का खेती की वृद्धि पर अच्छा प्रभाव पडता है। यज्ञ का प्रभाव तो परीक्षणों से सिद्ध है। महाविद्यालय गुरुकुल ज्वालापुर में एक आम का वृक्ष फलहीन रहता था। एक बार एक स्वामी जी वहाँ आये तथा कहा कि इसके नीचे यज्ञ करके वही राख इसकी जड़ में डाली जाए। कुछ महीने ऐसा किया गया तो उसी ऋतु में उस आम पर इतने स्वादिष्ट तथा मोटे आम आये कि पंचपुरी में प्रसिद्ध हो गये। दो प्रकार के कीटाणु वैज्ञानिक मानते हैं। (१) जो भूमि की उर्वरा शक्ति को बढाते है। (२) जो भूमि की उर्वराशक्ति को कम करते हैं। कीटनाशक दवाइयों के प्रयोग से कीडों के साथ-साथ भूमि की उर्वरा शक्ति भी घट जाती है। यज्ञ ही एक मात्र ऐसा साधन है कि यज्ञिय गैसों से उर्वरा शक्ति के नाशक कीटाणु तो मरे ही साथ ही भूमि की उर्वरा शक्ति में भी वृद्धि हो गयी। ऐसे प्रयोग व्यापक स्तर पर किये जाने से जहाँ एक ओर पर्यावरण शोधन होगा, वहीं दूसरी ओर भूमि की उर्वरा शक्ति भी बढेगी, ऐसे प्रयोग सरकार ही कर सकती है किन्तु कोई भी सरकार किसानों के लिए उतनी सचेष्ट नहीं रही जितनी कि रहनी चाहिए थी। यदि सरकार अभी भी साफ नीयत से प्रयत्न करे तो कृषि तथा किसान की हालात उन्नत हो सकती है। सूखे की बहुत बडी समस्या किसानों के सामने है। ट्यूवबेलों का जलस्तर भी नीचे चला गया। वर्षाकाल में बाढ़ आती है तथा फसल चौपट होती है। वर्षाकालीन पानी को यदि बडे-बडे जलाशयों में या अन्य विधि से एकत्रित करके सींचने के काम में लिया जाए तो समस्या पर पर्याप्त काबू पाया जा सकता है। यह कार्य व्ययसाध्य है। महाराष्ट्र में किसानों ने स्वयं मिलकर जलसंचय क्षेत्र बनाए हैं, ऐसा अन्य प्रदेशों में भी किया जा सकता है। यह सरकार ही कर सकती है। दूसरे जल का असमान वितरण भी रोकना पडेगा। देश में बडे फार्म सिंचाई के १५ प्रतिशत से भी अधिक जल का उपयोग कर लेते हैं जबकि छोटे किसान उससे वञ्चित

रहते हैं। ग्रामों में सिचाई के लिए बिजली तो है किन्तु वह निरन्तर नहीं आती, जिस कारण किसान का समय भी व्यर्थ जाता है तथा समय पर सिंचाई भी नहीं हो पाती। अत: किसानों को आवश्यकतानुसार बिजली दी जानी चाहिए। यदि उत्पादन कम है तो विद्युत् उत्पादन बढाना सरकार का दायित्व है।

मुम्बई विश्वविद्यालय के कुलपति राज्य सभा सदस्य तथा कृषि लागत तथा मूल्य आयोग आदि कई आयोगों के अध्यक्ष के रूप में कार्य करने वाले श्री मातचन्द्र मुंगेकर का कहना है कि इस समय भारत की जी.डी.पी. में कृषि का हिस्सा १२ प्रतिशत है। जी.डी.पी. में कृषि का योगदान दोगुना होते ही देश की अर्थव्यवस्था में अकल्पनीय वृद्धि हो जायेगी। एक अर्थशास्त्री के ऐसे परामर्शों को गम्भीरता से लेना चाहिए। आज किसान खेती में बीजकीटनाशक तथा रासायनिकखादों के बोझ तले दबा हुआ है। मुंगेकर जी का कथन है कि कृषि में किसानों तथा काँरपोरेशन् की भागीदारी कर दी जाए। यथा-भूमि तथा श्रम तो किसानों का रहे किन्तु खेती की लागत, तकनीकी, बीज, उर्वरक, मार्केटिंग काँरपोरेशन् के रहें। इससे दोनों को लाभ होगा। ऐसे परीक्षण किये जाने चाहिए। आपके अनुसार भारत में सहकारिता का भविष्य उज्ज्वल है। महाराष्ट्र में गन्ने की खेती सहकारी आधार पर होती है। भूमि, परिश्रम तथा धन का सही समन्वय करके सहकारिता का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

देश की १५ प्रतिशत जनता कृषि पर निर्भर है। यदि सरकार कृषि पर समुचित ध्यान देकर किसानों की बिजली, पानी, रास्ते, कृषिमूल्य, सूखा आदि समस्याओं पर ध्यान दे तो निश्चय ही कृषि में अद्भुत प्रगति होगी, जिससे भारत की अर्थव्यवस्था भी सुधरेगी तथा कृषि संलग्न भारत की अधिकांश जनसंख्या भी समृद्ध होगी। फलों तथा सब्जियों का उत्पादन भी कृषि के अन्तर्गत ही है।

-सरस्वती विहार, दिल्ली

वैदिक-ग्रन्थावली

वेद	:	ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद
उपवेद	:	आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, अर्थवेद/शिल्पवेद
ब्राह्मण-ग्रन्थ	:	ऐतरेय, शतपथ, साम, गोपथ
आरण्यक-ग्रन्थ	:	ऐतरेय, सांख्यायन, बृहदारण्यक (माध्यन्दिनी, काण्व), तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कौषीतकि, तवलकार, जैमिनीय आदि
वेदाङ्ग	:	शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द:, ज्योतिष्
उपाङ्ग/दर्शन	:	न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त
उपनिषद्	:	ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ यजु.-१७/८

जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सब जगत् को प्रसन्न करता है वैसे आप्त उपदेशक विद्वान् सब प्राणियों को प्रसन्न करें॥

वैदिक संहिताओं में कृषि साधन

❑ डॉ. जयदत्त उप्रेती.....✍

मनु आदि ऋषियों से लेकर ऋषि दयानन्द पर्यन्त सभी वेदविद् प्राचीन-अर्वाचीन विद्वान् वेदों को सब सत्य विद्याओं का आधार ग्रन्थ मानते हैं। सत्यविद्या से तात्पर्य है वह विद्या जो शब्दों द्वारा जिस प्रकार से वर्णित की गई है, उसे ठीक विधि से प्रयोग में लाकर अभिष्ट वस्तु को प्राप्त किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चार पदार्थों को प्राप्त करने के लिये विभिन्न विद्यायें वेदों में वर्णित हैं, ऐसा हम कह सकते हैं। संसार के प्राप्त अथवा काम्य वस्तुओं के चाहें जितने भी प्रकार वा भेदोपभेद हो, वे इन धर्मादि चारों पदार्थों अथवा पुरुषार्थों में अन्तर्निहित है, यह एक मान्य सिद्धान्त है। उन्हीं में से कृषि विद्या भी अन्यतम विद्या है, जिसका वेदों में अनेक स्थानों पर संकेत है। जब कृषि विद्या का वर्णन है, तो उसको सिद्ध करने के लिए साधनों और उपकरणों का भी वर्णन वेदों में होना चाहिये। तो आइये! इस विषय पर विचार किया जाये।

ऋग्वेद का (१०-१४-१३) मन्त्र कहता है **'अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः'** अर्थात् हे जुआरी मनुष्य तू जुए के पाशों से मत खेल प्रत्युत कृषि ही किया कर और उस कृषि से जो अन्नादि प्राप्त हो उसमें ही आनन्द से रहा कर और उसे ही बहुत समझा कर। अभिधावृत्ति से जहाँ कृषि का अर्थ खेती मात्र माना जा सकता है, वहाँ लक्षणा और व्यंजना का आश्रय लें तो लगता है कि यह शब्द अन्य अनेक प्रकार के जीवनोपयोगी शिल्पों एवं उद्योगधन्धों का उपलक्षण भी है। अतः इस कृष्यादि कर्म से **तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः**। गौ आदि पशु, सम्पत्ति, स्वास्थ्य शरीर और वाणी आदि इन्द्रियों एवं विपुल भूमिभाग तथा स्त्री को तू प्राप्त करेगा : तुम्हें अच्छे गृहस्थ का पूर्ण सुख मिलेगा - ऐसा जगत् के स्वामी और प्रेरक परमेश्वर का निर्देश है।

इसी प्रकार यजुर्वेद ४-१० में कहा गया है - **इन्द्रस्य योनिरसि सुसस्याः कृषीष्कृधि** अर्थात् परम ऐश्वर्यरूप सुख के कारण, हे मनुष्य तू सुन्दर धान्यों को उत्पन्न करने वाली कृषि को किया कर।

ये दो उदाहरण ही पर्याप्त है, यह दर्शाने के लिये कि वेद में कृषि कर्म को कितना महत्वोपेत तथा मूल्यवत् प्रतिपादित किया गया है। अब कृषि करो - यह तो कह दिया परन्तु उसके प्रकार और साधनों का वर्णन न करें तो यह विषय अधूरा ही रह जाये और उसे कोई कर ही न पाये। अतः तत्प्रकार और तत्साधनों का भी निर्देश वेदों में दिया गया है। हम देखते हैं कि ऋग्वेद सूक्त-४-५७, १०-१०१-३,४ यजुर्वेद १२-६७,६८, ७०, ७१ तथा अथर्ववेद के तृतीय काण्ड के नवमन्त्रात्मक १७ वें सूक्त में कृषि साधनों का वर्णन दिया गया है। तीनों वेद-संहिताओं में इन मन्त्रों की वर्णानुपूर्वी प्रायः समान है, भले ही उनके क्रम में अन्तर और व्यत्यय देखने को मिलता है। तीनों संहिताओं में इन मन्त्रों के ऋषि सर्वथा भिन्न हैं। जैसे ऋग्वेद ४-५७ के ऋषि वामदेव तथा १०-१०१ के बुध (सौम्य) है। यजुर्वेद १२ वें अध्याय के ६६-७४ मन्त्रों के ऋषि विश्वावसु तथा कुमारहारीत है। अथर्ववेद ३-१७ के ऋषि विश्वामित्र हैं। परन्तु सूक्त या मन्त्रों के प्रतिपाद्य विषय (देवता) में लगभग समानता है। जैसे ऋग्वेद ४-५७ के देवता क्षेत्रपति, पुनः शुनासीर और सीता हैं, ऋग्वेद १०-१०१ के विश्वेदेव या ऋत्विज, यजुर्वेद १२-६७-७१ के कृषीवल (किसान) वा कवि तथा अथर्ववेद १०-१७ का देवता सीता (हल की फाल) है। सारांश यह हुआ कि सन्दर्भित मन्त्रों में दृष्टा ऋषिनामों में भेद होते हुए भी उन के प्रतिपाद्य समान हैं और वे कृषि और कृषिसम्बन्धी उपकरण आदि

का वर्णन करते है।

अब ये कृषि के साधन और उपकरण क्या-क्या हैं, यह जानने योग्य है। यथा-

१. सीर - यह शब्द बहुवचन में ऋग्वेद १०/१०/१-३,४ यजुर्वेद १२-६७,६८ तथा अथर्ववेद-३-१७-१, २ में प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त द्विवचनान्त शुनासीरौ तथा शुनासीरा पदों का प्रयोग ऋग्वेद-४/५७/५,८, यजु. -१२-६९ तथा अथर्व.-३/१७/५,७ में किया गया है। इस सीर शब्द का अर्थ है हल। कृषि के प्रसंग में इस शब्द का अर्थ हल ही है। अमरकोश २/१९/१३,१४ के अनुसार लांगल, हल, गौदारण और सीर ये पर्यायवाची शब्द हैं। यद्यपि ऋग्-१/१७४/९ तथा ६/२०/१२ में सीराः पद का अर्थ दयानन्दभाष्य में नाड़ियाँ तथा ४/१९/८ के भाष्य में बहने वाली नदियाँ दिया गया है और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में भी यजु.-१२/६७,६८ मन्त्रों में प्रयुक्त इस पद का अर्थ शरीरस्थ नाड़ियाँ ही किया है तथापि कृषीवल से सम्बद्ध मन्त्र में हल अर्थ करना ही युक्त है। अब हल की उपयोगिता पर कुछ विचार करें।

समतल भूमि को जब लम्बे, चौड़े खेतों के रूप में ढ़ालकर, उसकी मिट्टी को खोदकर हलका बनाकर उसमें बीज बोने की रीति मनुष्य को उसके आविर्भावकाल में ही वेदद्रष्टा ऋषियों के द्वारा बता दी गई जो उसके लिए आवश्यक था। हल का निर्माण और वह है तीक्ष्ण मुखवाले लोहे के फाल का संयोग होना। इस कार्य में दृढ़तम धातु और सरलता से प्राप्य धातु लोहे के अतिरिक्त और हो भी क्या सकता है। लगता है कि सृष्टि के आरम्भ में ही कृषिकर्म के लिए हल बनाने और हल जोतने की रीति विद्वान् ऋषियों के द्वारा मनुष्यों को बतला दी गई थी। तब से यह परम्परा मनुष्य की बौद्धिक उन्नति कितनी ही क्यों न बढ़ी हो, आज तक यथावत् चली आ रही है। अतः कृषिकर्म के लिये सीर (हल) यदि प्रथम और अत्यावश्यक साधन व उपकरण कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। इस हल से जुड़े हैं जुआ, बैल तथा किसान व सूक्ष्म अन्न के बीज।

२. युग - वेद मन्त्रों में युग अर्थात् युवा और वाह अर्थात् बैल आदि से जोती गई भूमि में बीज के वपन करने तथा हल चलाने वाले किसान का साथ-साथ वर्णन किया गया है। इनमें युग लकड़ी और उसके गले में लटकाये जाने वाले दो-दो डण्डों में बन्धी हुई ढोरियों वालें उस जुए की ओर संकेत करता है, जो हल को खींचने वाले बैलों के कंघों में इस प्रकार से रखा जाता है, जिससे उन्हें सख्त भूमि को हल के फाल से विदीर्ण करते हुए आगे बढ़ने में कोई कठिनाई न हो। वेदों में **'सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते....', 'युनक्त सीता वि युगा तनोत...'** इन मन्त्रों में युगाशब्द द्वितीया बहुवचन नपुंसकलिङ्ग 'युगानि' का ही वैदिक संक्षिप्त रूप है और वह हल आदि को खींचने के अवसर पर बैलों के कन्धों पर रखे जाने वाले जुऐं का ही बोधक है। अतः युग (जुवा) भी कृषि का अन्यतम साधन है, क्योंकि उसके विना हल जोतने का कार्य हो ही नहीं सकता।

३. वाह - यह शब्द हल में जोते वाले बैल आदि पशुओं के लिए प्रयुक्त है। **वहन्ति हलादि भारं ये ते वाहाः।** इस व्युत्पत्ति के अनुसार हल या रथ आदि के भार को खींचने वाले पशु को वाह कहा गया है। उनके विना खेती नहीं हो सकती। विषम भूमि में जितनी आसानी से हल में जोते गये बैल चल सकते है, उस आसानी और उस प्रकार से आधुनिक पैट्रोल के इंजन से युक्त ट्रैक्टर भी नहीं चल सकता। पहाडों की ऊँची नीची विषम भूमि में आज भी खेती बैलों से ही होती है न कि ट्रैक्टर से। अतः कृषिकर्म के लिये बैलों की आवश्यकता आज भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, जितनी कि आज से लाखों वर्ष पूर्व थी। अतः वाहों के रूप में पशु सम्पत्ति का होना कृषक के लिए नितान्त आवश्यक है।

४. कीनाश - **'शुनं सुफाला वितुदन्तु भूमिं शुनं कीनाश अनुयन्तु वाहान्'** इस ऋग्, यजु., अथर्व. वेद के मन्त्र में हल जोतने वाले किसान का स्पष्ट वर्णन है। लगता है आज लोकभाषा में प्रयुक्त किसान शब्द वैदिक 'कीनाश' शब्द का ही आद्यन्तविपर्यास से, अपभ्रंस रूप है। अथवा

कृषाण शब्द का भी अपभ्रंस किसान शब्द को माना जा सकता है। वस्तुत: कृषिकर्म का मुख्य कर्त्ता कृषक या किसान ही तो है, जिसका महत्त्व दर्शाते हुये महर्षि दयानन्द ने एक स्थान पर उसे राजाओं का भी राजा कहा है।

५. सीता – सीता शब्द वेद में किसी स्त्री के नाम विशेष या जनकपुत्री सीता के लिये न प्रयुक्त होकर हल की फाली और उससे विदीर्ण की हुई भूमि की रेखा के लिये प्रयुक्त है। द्रष्टव्य– '**ईषा लांगलदण्डः स्यात् सीता लांगलपद्धतिः**' (अमरकोष–२/१९/१४)। ऋग्वेद ४/५७/६,७, यजुर्वेद १२/७० तथा अथर्ववेद ३/१७/४,८,९ मन्त्रों में सीता शब्द इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त है। हल की रेखा का उपयोग बीजों को उसमें बोने के लिये होता है, यह सर्वविदित है। स्वामी दयानन्द ने यजु.–१२/७० के भाष्य में सीता का अर्थ काष्ठपट्टिका अर्थात् पटेला भी किया है।

६. लांगल – 'लांगल' शब्द हल का वाचक है। ऋग्वेद में मात्र एक मन्त्र में लांगल शब्द का प्रयोग है – '**शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लांगलम्। शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिंगया।।**' (ऋग्.–४/५७/४) यही मन्त्र अथर्ववेद ३/१७/६ में भी समानानुपूर्वी से आया है। इसी प्रकार '**लांगलं पवीरवत्...**' इत्यादि मन्त्र यजुर्वेद १२/७१ तथा अथर्ववेद ३/१७/३ में समान रूप से उपलब्ध होता है। और इन मन्त्रों में सर्वत्र ही लांगल शब्द फसल से संयुक्त दृढ़ काष्ठदण्ड, जो हल नाम से जाना जाता है, उसका ही बोधक है। यह हल कृषि के लिये कितना उपयोगी है और कितना बड़ा साधन है, इस पर अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह सर्वविदित है।

७. सृण्य – सृणि शब्द का प्रथमा बहुवचन सृण्य है। उसका भाष्यकारों ने विभिन्न विभक्तिओं में प्रयोग माना है। जैसे उव्वट ने द्वितीयान्त पद मानकर उसका अर्थ 'दात्रान्' किया है, महीधर ने इसे तृतीयाविभक्ति के अर्थ में लिया है – '**सृणिशब्दोऽत्र दात्रार्थः। सृण्या लवनसाधनेन दात्रेण लूनमिति शेषः।**' (यजु.–१२/९८, महीधर भाष्य से) और स्वामी दयानन्द ने इसे प्रथमावबहुवचन का ही रूप मानकर तदनुसार ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपासनाप्रकरण में **उपासनायुक्तास्ता योगवृत्तयः सृण्यः सर्वक्लेशहन्त्र्य एव भवन्ति**, यह अर्थ तथा यजुर्वेद १२/९८ के भाष्य में **याः क्षेत्रयोगा गता यवादिजातयः** यह अर्थ किया है। इस सब को उद्धत करने का हमारा अभिप्राय यह है कि कृषि कर्म में वैदिक सृणिशब्द अंकुश के आकार की बनी दराती का वाचक है, जो पकी हुई फसल को काटने का एकमात्र साधन है, आधुनिक यन्त्रों की बात को छोडकर। अत: खेती के लिये हल, फ़ाल, जुआ आदि की भांति दराती नामक औजार को बनाकर उसका प्रयोग करने का निर्देश भी ऋग्वेद १०/१०/१–३, यजुर्वेद १२/९८ तथा अथर्ववेद ३/१७/२ में किया गया है, यह स्पष्ट है।

८. खनित्र – उक्त लांगलादि विविध कृषि साधनों के साथ खनित्र का भी वेद में वर्णन मिलता है। ऋग्वेद १/१७६/६ में खनित्र शब्द का प्रयोग दर्शनीय है। यथा–

अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं
बलमिच्छमानः। उभौ वर्षावृषिरुग्रः पुषाण सत्या
देवेष्वाशिषो जगाम।।

इस मन्त्र में खनमान: खनित्रै: पदों से खनन अर्थात् खोदने के साधनभूत कुदाल, फावडा आदि का प्रयोग खोदने वाले मनुष्य के द्वारा किये जाने का अति स्पष्ट संकेत है। जहाँ हल की जोताई बड़े–बड़े खेतों के लिए आवश्यक है, वैसे ही जहाँ पर कम खोदना हो अथवा बैलों और हल या हलवाह के अभाव में खोदाई का कर्म करना आवश्यक हो, वहाँ पर कुदाल, कुटेला, फावड़ा, सब्बल आदि कक नाम के कृषि उपकराणों का प्रयोग पुरातन काल से आज तक होता जा रहा है। अत: सिद्ध हुआ कि कृषि के उपयोग में आने वाले अनेक प्रकार के साधनों का नाम निर्देश वेदों के आविर्भाव काल में ही (अति प्राचीन युग में) होना इस बात का द्योतक है कि मनुष्यों को उनके निर्माण की रीति नीति आदिम काल में ही विदित हो गयी थी।

९. बीज – ऋग्वेद में बीजशब्द का प्रयोग चार स्थानों पर हुआ है, यथा–

१. येन तोकाय तनयाय धान्यं बीजं वहघ्ने अक्षितम्।
–ऋग्वेद–५/५३/१३

२.तां पूषञ्छिवतमामरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति।
–ऋग्वेद–१०/८५/३७

३.युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते यौनौ वपतेह बीजम्।
–ऋग्वेद–१०/१०१/३

४. वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः पृचन्ति सोमं न मिनन्ति वप्सतः। –ऋग्वेद–१०/६४/१३

इनमें से प्रथम, तृतीय और चतुर्थ मन्त्रों में प्रयुक्त बीज शब्द अनाज के बीजों का वाचक है और द्वितीय का प्रयोग मन्त्र में मनुष्य शरीर का उपादान कारण शुक्ररूप बीज का वाचक है। अन्य वेदों में भी बीजशब्द का प्रयोग मिलता है। यथा–यजुर्वेद–१२/६८, अथर्ववेद–३/१७/२ इत्यादि। तात्पर्य यह है कि कृषि के लिये अपेक्षित धान्यबीज सहित प्रत्येक वस्तु और साधन का वर्णन वेदों ने किया है। और यदि अनाजों के नाम गिनाने हैं तो यजुर्वेद १८/१२ मन्त्र देख लीजिए, जहाँ धान, जौ, गेहूँ, मूंग, मसूर, तिल आदि १३ प्रकार के अनाजों और दालों एवं तिलहनों का यज्ञ द्वारा (कृषिकर्म द्वारा) एक साथ वर्णन किया गया है। इतना ही नहीं उसी वेद में १८/१४ मन्त्र में खेती द्वारा खेत जोतकर बोई गई फसल 'कृष्टपच्य' तथा बिना बोये स्वतः उगे हुए 'अकृष्टपच्य' औषधियों का यज्ञ द्वारा प्राप्त करने का वर्णन मिलता है। अन्य वेदों में भी जौ, धान आदि का वर्णन मिलता है।

१०. खाद – यद्यपि खाद शब्द संस्कृतभाषा का है। कर्ता, कर्म या भाव आदि में प्रसंगानुसार जो अर्थ युक्तिसंगत हो, उसमें इस शब्द को सम्बद्ध किया जा सकता है। कृषि के लिये परम्परा से चल रही गोबर की सड़ी खाद का प्रयोग हो रहा है। परन्तु देखा यह जा रहा है कि कृषि की आधुनिक खाद की उपज में तो वह स्वाद या पौष्टिक तत्व है ही नहीं जो गोबर की खाद के प्रयोग वाली खेती में हुआ करते थे। वेदों में तो '**घृतेन सीता मधुना समक्ता**' ये घृत और मधुशब्द उत्तम प्रकार की खाद के ही उपलक्षण हैं। यह वर्णन इस बात का भी निर्देश करता है कि मनुष्यों को प्रभूतमात्रा में घी और मधु का उत्पादन करना चाहिए, जो कि खाने और हवन करने के अतिरिक्त कृषि के उपकरण पटेला आदि में लगाने के काम में भी आ सके, जैसा कि महर्षि दयानन्द ने यजुर्वेद १२/७० के भाष्य में लिखा है।

– स्वस्त्ययन, तल्ला, थपलिया,
अल्मोडा–२६३६०१

होम क्यों करे ?

प्रश्न—क्या इस होम करने के विना पाप होता है ?

उत्तर—हाँ! क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न हो के वायु और जल को बिगाड़ कर, रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से, प्राणियों को दुःख प्राप्त कराता है, उतना ही पाप उसी मनुष्य को होता है। इसलिए उस पाप के निवारणार्थ, उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु वा जल में फैलाना चाहिए। और खिलाने–पिलाने से उसी एक व्यक्ति को सुखविशेष होता है। जितना घृत और सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है, उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है। परन्तु जो मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावें, तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके। इससे अच्छे पदार्थ खिलाना–पिलाना भी चाहिए, परन्तु उससे होम अधिक करना उचित है, इसलिए होम का करना अत्यावश्यक है।

– सत्यार्थ-प्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती

कृषि विषयक वैदिक चिन्तन

❑ आचार्य यज्ञवीर शास्त्री.....✍

सर्गारम्भ में जब मानव इस धरा पर आया तभी उसके साथ बुभुक्षा ने भी जन्म ने ले लिया तभी से मनुष्य भूख को मिटाने के लिए प्रयत्नशील है। क्योंकि नीतिकार कहते हैं ।''**बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्**'' अतः वैदिक साहित्य में **अन्नं बहुकुर्वीत...**[१] **अन्नं न निन्द्यात् तद् व्रतम् ...**[२] आदि वाक्य उपलब्ध हैं। अतः मानव का प्रयास भूमि का कर्षण करके अन्न की उत्पत्ति का सदा से रहा है और रहेगा भी। अन्नदाता का सदा ही उत्तम माना गया है इसीलिए यह शब्द किसान के लिए भी प्रचलित हो गया है तथा वैदिक ऋषि भी- **अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व....**[३] कृषि करने का सन्देश इस ऋचा द्वारा दे रहा है। इसी भाव से शायद लोक में भी कहावत प्रचलित हो गयी-

उत्तम खेती मध्यम व्यापार। नीच नौकरी करे गंवार।।

और इस युग के क्रान्तदर्शी महर्षि दयानन्द सरस्वती भी सत्यार्थ प्रकाश में ''राजाओं का राजा किसान'' कहकर अन्नोत्पादक को गौरवान्वित कर रहे हैं, और ''आर्ष ज्योति'' पत्रिका ने भी शास्त्र सम्मत इस पवित्र भावना को ध्यान में रखते हुए अपने शोध अंक में इस विषय पर विद्वानों से शोध लेखों को मंगाकर परमपुण्य का कार्य किया है जो कि अत्यन्त श्लाघनीय है। सम्पादक मण्डल एवं स्वामी जी का मैं अत्यन्त आभारी हूँ कि मुझ जैसे अकिञ्चन को भी लेख भेजने का प्रेरणा पत्र प्रेषित किया।

कृषि विषयक वैदिक चिन्तन विषय के अन्तर्गत कृषि, अन्न, कृषि के साधन भूत प्राणी द्रव्य आदि सभी पर वैदिक साहित्य में विस्तृत विवेचन किया गया है। वेद रत्नागार तो अनेक रत्नों से भरा पड़ा है गोता लगाओं और रत्न प्राप्त करो परन्तु यहाँ स्थालीपुलाकन्याय से कुछ मन्त्रों पर स्वामी दयानन्द भाष्यानुसार ही विचार किया जा रहा हैं। उपनिषद् ने कथनानुसार '' **स वा एष पुरुषोऽन्नं रसमयः...**''[४] तथा ''**अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्. ..**''[५] कथन पुरुष और ब्रह्म अन्न को कहा जाना अन्न के महत्त्व का प्रदर्शक है अतः सर्व प्रथम अन्न पर विचार करते हैं- अन्नम् के निर्वचन अनुसार ''**अद्यते यत् तत् अन्नम्**'' जो खाया जाए अर्थात् जो खाने योग्य हो वह अन्न कहलाता है। ऋषि दयानन्दानुसार-अन्नम् ''उत्तम चावलादि अन्न उसका उत्तम संस्कार..''[६] अन्न को ''**सुशोधितं भोक्तुमर्हं** (अस्य...[७]) अर्थात्-अच्छा शोधा हुआ खाने योग्य अन्न'' कहकर स्वामी जी का अभिप्राय स्पष्ट है कि कृषक शोधित संस्कारित उत्तम बीज बोकर शुद्ध जल देकर शोधित अन्न उपलब्ध करते थे। अन्न का अर्थ केवल अनाज मात्र नहीं हैं अन्य शुद्ध खाद्य पदार्थ भी अन्न से ग्रहण किये है- यथा- ''**अन्नम्-अत्तव्यम्**'' अर्थात् भोजन करने योग्य पदार्थ.. .[८] अन्यत्र भी खाने योग्य पदार्थ को ही प्रकट करते हुए मन्त्र अर्थ किया गया है-यथा अन्नम् ''**अत्तुं योग्यम्**'' अर्थात् खाने योग्य पदार्थ.....[९] की प्रशंसा करे। यहाँ भाष्यकार ने निर्देश दिया गर्भस्थ सन्तान से बड़ी सन्तान तक माता पिता और चिकित्सक तथा राजा प्रजा को खाने योग्य पदार्थो की ही संस्तुति किया करें।

एक अन्य मन्त्र के अर्थ में अन्न का अर्थ ''**अत्तुमर्हस्यौदनादेः रसः=मधुरादि...**''[१०] किया है। अर्थात् खाने योग्य ओदन आदि का रस मधुरादि आश्रय करें। इसी प्रकार का अर्थ यजुर्वेद भाष्य में दूसरे मन्त्रार्थ में भी प्रस्तुत किया हैं-यथा ''**अन्नम् तण्डुलादिकमत्तव्यमिव**'' अर्थात् खाने योग्य तण्डुलादि इसी मन्त्र का भावार्थ-''**ये पृथिव्याम् अन्नार्थिनस्तान् सम्पोष्य वर्द्धनीयाः**'' इसी भाँति अन्य मन्त्र में **(सुभूयत् सुष्टु संस्कारैर्भाव्यते) अन्नम् अत्तुमर्हम् (अत्ति)**

भुङ्क्ते...[१२] अर्थात् सुन्दर संस्कारों की जिसमें भावना दी जाती उस (अन्न)भोजन करने योग्य अन्न को खाता है। संस्कार अन्य में अन्य पदार्थ के गुणों को संक्रमित करना कहलाता है। अन्य पदार्थ को भावना देकर वैद्य अच्छी औषधी बनाता है इसीप्रकार तड़का लगाकर अन्य पदार्थ की सुगन्धादि वात दोषादि नाशक गुणों को संक्रमित किया जाता है। इसी भाव में अन्य मन्त्र में कीलालम् शब्द का अर्थ भी इसी से मेल खाता है यथा ''(घृत)आज्यम् (पयः) दुग्धं'' (कीलालम्) **सुसंस्कृतमन्नम् कीलालमित्यन्ननामसु पठितम्** (निघण्टु २.२७) अर्थात् (पयः) दूध (घृतं) घी (कीलालम्) उत्तम रीति से पकाया हुआ अन्न पूर्वोक्त गुणवाले पितरों को देके तृप्त करो....[१३] जैसे पूर्व के मन्त्र में शोधित अन्न की चर्चा की और उस में शुद्ध जल से सींचने के लिए कहा गया है वर्षा का जल शुद्ध होता है। उसे और अधिक शुद्धिमत्तर बनाने हेतु यज्ञ, याग रचकर उसमें शुद्ध सुगन्धित सामग्री घृत शाकल्य प्रदान करके यज्ञ करें। गीता में कहा है ''**यज्ञाद् भवति पर्जन्यः पर्जन्यादन्नसंभवः**'' इस प्रकार शोधित कृषि बिना कीटनाशक विषयुक्त छिड़काव के न प्रयोग का स्पष्ट संकेत मिल रहा है। इसी जल को एकत्रित करके या नदी के पानी से कुल्या निर्माण का भी वैदिककाल में उल्लेख है। अब कुछ विचार उस पर भी किया जाना उपयुक्त होगा।

कुल्या-कुल्या का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है **'कुल्या इव वाटिकासुजलचालन् मार्गा इव (आशत) व्याप्नुत'** अर्थात् जैसे वाटिका आदि में जल चलाने के मार्गों के तुल्य जो प्राप्त हो।[१४] इस मन्त्र से स्पष्ट हो रहा है कि वैदिककाल से सिंचाई के लिए जलमार्ग कुल्या का निर्माण होता रहा है। एक अन्य मन्त्र में भी उल्लेख देखिए- **स्यन्दतां कुल्याः-निर्मिता जलगमनर्मागाः** अर्थात् रचे गये जल के निकलने के मार्ग बहें।[१५]

इस भांति यजुर्वेद में भी कुल्या शब्द का वर्णन देखिए 'घृतस्य धारा' मन्त्र भाग का अर्थ ऋषिवर करते हैं (घृतस्य) उदकस्य (कुल्या) घृतधारा अर्थात् घृत जलनाम है उसकी धारा बड़ी धाराओं को प्राप्त हो। वैसे सत्य के मार्गों को प्राप्त हों।[१६] दूसरे मन्त्र में 'कुल्या उप तान् स्रवन्तु का अर्थ करते हुए महर्षि लिखते हैं - (कुल्याः) जलप्रवाहा धारा (उप) (तान्) जनान् (स्रवन्तु) प्राप्नुवन्तु अर्थात् जैसे जल के प्रवाह से युक्त नदी या नहरें उन सुजनों को निकट प्राप्त हो।[१७] स्वामी जी ने नदी और नहरें दोनों अर्थ किए। कोषकार लिखते हैं - **'कुल्या कृत्रिमा नदी'** निघण्टुकार का कथन है कि कुल्या नदी का है। नाम[१८] इसी प्रकार ''कुल्याय'' शब्द भी वैदिक साहित्य में उपलब्ध है, उस मन्त्र का अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते है-''**मनुष्यैरुदकेन कथमुप-कर्तव्यमित्याह**'' (नमः) अन्नदानम् (सुत्याय)सुतौ प्रस्रवणे भवाय (पथ्याय) पथि भवाय गन्तुकाय च मार्गादिशोधकाय(नमः)सत्करणम् (काट्याय)काटेषु कूपेषु भवाय। काट इति कूप नामसु पठितम् (निघण्टु... .३.२३) (च) नीप्याय नितरामापो यस्मिन् स नीप्य तत्र भवाय (च) तत्सहायिने(नमः) सत्करणं (कुल्याय) कुल्यासु नदीषु भवाय कुल्या इति नदीनामसु पठितम् (निघण्टु. १-१३) (च)(सारस्याय) सरसि तडागे भवाय (च)(नमः) अन्नादिदानम् (नादेयाय)नदीषु भवाय (च)(वैशन्ताय) वेशन्तेषु क्षुद्रेषु जलाशयेषु भवाय।अत्र सर्वत्र कुल्या आदि प्राति. भवार्थे यत् प्रत्ययः।

भावार्थ-मनुष्यैः स्रोतसां मार्गाणां कूपानां जलप्रायदेशानां महदल्पसरसां च जलं चालयित्वा यत्र कुत्र बद्ध्वा क्षेत्रादिषु पुष्कलान्यन्नफलवृक्षलतागुल्मादीनि सम्वर्ध-नीयानि। अर्थात् मनुष्यों को चाहिए कि नदियों के मार्गों, बंबों, कूपों, जल प्राय देशों बड़े और छोटे तालाबों के जलों को चला जहाँ कहीं बांध और खेत आदि में छोड़के पुष्कल अन्न फल वृक्ष लता गुल्म आदि को अच्छे प्रकार बढ़ावे यहाँ तो सघन खेती का सम्पूर्ण....[१९] विवरण प्रस्तुत कर दिये है।

कुल्या के अनन्तर कृषि शब्द पर ऋषियों के चिन्तन को देखते है-

कृषि–यजुर्वेद में ''कृषिच्छन्दः'' मन्त्रांश का अर्थ स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखते है– (कृषि)भूमिविलेखनम् (छन्दः) भावार्थ– अत्र वाचकलुप्तोपमालंकारः स्त्रीपुरुषैः स्वच्छविद्याक्रियाभ्याम् स्वातन्त्र्येण पृथिव्यादिपदार्थानां गुणादीन् विज्ञाय कृष्यादिकर्मभिः सुवर्णादिं प्राप्य गवादीन् संरक्ष्यैश्वर्यमुन्नेयम्। यहाँ पर स्त्री पुरुष का स्वतन्त्रतापूर्वक..[२०] कर्तव्य बतलाया कि वे शुद्ध विद्या और क्रिया पृथिव्यादि पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों को जान खेती आदि कर्मों से सुवर्ण आदि रत्नों को प्राप्त हो और गौ आदि पशुओं की रक्षा करके ऐश्वर्य बढ़ावे।

एक अन्य मन्त्र में और देखें ''**कृषिश्च मे यज्ञेन कल्पताम्.**'' इस मन्त्रांश का ऋषि कृत अर्थ देखें. .[२१] कृषि भूमि कर्षणम् (यज्ञेन) सर्वरसपदार्थवर्द्धकेन कर्मणा (कल्पताम्) अर्थात् कृषि भूमि की जुताई (च) और गेंहू आदि अन्न (यज्ञेन) समस्त समस्त रस और पदार्थों की बढ़ती करने वाले कर्म से (कल्पताम्) समर्थ हों। इस मन्त्र में सभी कृषि उत्पादों को भी यज्ञ में लगाने का निर्देश है। समस्त व्यंजन औषधियों का सार रस दूध, घृत, मधू, खांड, गुण, खाद्य लेह्य चौष्य आदि फल फूल सभी पदार्थ और रस यज्ञीय बनाने का उपदेश है। कृषि के साथ ही साधन भूत हल और बैल भी इसी अध्याय के सातवें मन्त्र में जोड़े है। ''**सीरं च मे...यज्ञेन कल्पताम्. ....**[२३]''। अर्थ–(सीरम्) कृषिसाधकं हलादिकम् (च) कृषीवलाः (मे)(यज्ञेन)सुनियमानुष्ठानाख्येन (कल्पताम्) अर्थात्–मेरे(सीरं)खेती की सिद्धि करानेवाले हल आदि (च) और खेती करने वाले (यज्ञेन) अच्छे नियमों के आचरण से (कल्पताम्) समर्थ हो। एक अन्य मन्त्र में भी ''**कृष्यै त्वा...**[२३]'' यह अंश उपलब्ध है। (कृष्यै) कृषिकर्मणे (त्वा) त्वाम् अर्थात् तुझे (कृष्यै) खेती होने के लिए में सब ओर से ग्रहण करता हूँ। सुन्दर कृषि के लिए विद्वानों से शिल्प विद्यादि सीखकर समृद्धि युक्त करना चाहिए इस चिन्तन से मन्त्र के दर्शन करते हुए ऋषि कहते हैं–''**सुसस्याः कृषीस्कृधि....**[२४]'' (सुसस्याः) शोभनानि सस्यानि धान्यादीनि याभ्यस्ताः (कृषीः) कर्षन्ति विलिखन्ति याभिः क्रियाभिस्ताः। अत्र ककरत्करति. (अष्टाध्यायी ८.३.५०.) इति विसर्जनीयस्यसत्वम् (कृधि) कुरु कारय वा।

अर्थात्–उत्तम धन धान्य उत्पन्न करने वा खेती को सींचने वाली क्रियाओं को (कृधि) सिद्ध कर।

एक अन्य मन्त्र में ईश्वर आज्ञा देता है–**कृष्यै त्वा....**[२५]। (कृष्यै)कृषन्ति विलिखन्ति भूमिं यदा तस्यै (त्वा)त्वाम् अर्थात्– मैं ईश्वर तुम्हें खेती के लिए नियुक्त करता हूँ।

एक और शब्द वेद में प्रयुक्त हुआ हैं जिसका सम्बन्ध भी कृषि से है वह है ''**कृष्टपच्याश्च मे..... यज्ञेन कल्पताम्..**''[२६] इस का भाष्य करते हुए ऋषि लिखते हैं–(कृष्टपच्याः)या कृष्टेषु क्षेत्रेषु पच्यन्ते ताः (च) उत्तमानि शस्यादीनि अर्थात्–खेतों में पकते हुए अन्न आदि (च)और उत्तम अन्न मेरे (यज्ञेन) मेल करने योग्य शिल्प विद्या से समर्थ हो यह शब्द वैयाकरण दृष्टि से –''**राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्या**'' (अष्टाध्यायी ३.१.१४४)से क्यप् प्रत्यय होने पर निष्पन्न है। उत्तम खेती के लिए वेद भगवान् मन्त्र प्रस्तुत करते है– **शूनं वाहाः शूनं नरः शूनं कृषतु लाङ्गलम् शूनं वस्त्राः बध्यन्तां शूनमुष्ट्रामुदिङ्गय.**[२७]।

(शूनं) सुखं (वाहाः) वृषमादयः शूनं (नरः) नेतारः कृषीवलाः (शूनं कृषतु) (लाङ्गलम्)हलावयवः (वरत्रा) रश्मयः (उष्ट्राम्) कृषि साधनावयवम् (उदिङ्गय) गमय।

भावार्थ– कृषीवला उत्तमानिहलादिसामग्रीवृषभबीजानि सम्पाद्य क्षेत्राणि सुष्ठु निष्पाद्य तत्रोत्तमानि अन्नानि निष्पादयन्तु। अर्थात्–हे खेती करने वाले जन जैसे–बैल आदि पशु सुख को प्राप्त हों मुखिया कृषीवल सुख को करें हल का अवयव सुख जैसे हो वैसे पृथिवी में प्रविष्ट हों और बैल की रस्सी सुखपूर्वक बांधी जाएं वैसे खेती के साधन के अवयव को सुखपूर्वक उपर चलाओ।

भावार्थ– खेती करने वाले जन उत्तम हल आदि सामग्री वृषभ और बीजों को इकट्ठे करके खेतों को उत्तम प्रकार

जोतकर उनमें अन्नों को उत्पन्न करें।

इस प्रकार कुछ मन्त्रों के अर्थों का चिन्तन करने से सुविदित है कि शुद्ध पवित्र हिंसा रहित खेती करने का वैदिक काल का शुभ चिन्तन है। यह पक्वोदने न्याय से कुछ कहा है अन्य विद्वज्जन शोध करते रहेंगे इत्यलमति विस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु।

सन्दर्भ-सूचीः-

१. तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली नवम अनुवाक।
२. तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली सप्तम अनुवाक।
३. ऋग्वेदसंहिता-१०/३४/१३
४. तैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मवल्ली प्रथम अनुवाक।
५. तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली द्वितीय अनुवाक।
६. संस्कारविधि पृ.-१४५
७. ऋग्वेदभाष्य-२/३५/११
८. ऋग्वेदभाष्य-३/११/१
९. ऋग्वेदभाष्य-३/४८/३
१०. यजुर्वेदभाष्य-३९/४
११. यजुर्वेदभाष्य-१६/६६
१२. ऋग्वेदभाष्य-२/३५/७
१३. यजुर्वेदभाष्य-२/३४
१४. ऋग्वेदभाष्य-३/४५/३
१५. ऋग्वेदभाष्य-५/८३/८
१६. यजुर्वेदभाष्य-६/१२
१७. यजुर्वेदभाष्य-३५/२०
१८. निघण्टु-१/३
१९. यजुर्वेदभाष्य-१६/३७
२०. यजुर्वेदभाष्य-१४/१९
२१. यजुर्वेदभाष्य-१८/९
२२. यजुर्वेदभाष्य-१८/७
२३. यजुर्वेदभाष्य-१४/२१
२४. यजुर्वेदभाष्य-४/१०
२५. यजुर्वेदभाष्य-९/१४
२६. यजुर्वेदभाष्य-१८/१४
२७. ऋग्वेदभाष्य-४/५७/४

गुरुकुल पौन्धा,
दूनवाटिका देहरादून (उत्तराखण्ड)

पढ़ाने में अयोग्य और मूर्ख के लक्षण

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।
अर्थांश्चाऽकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः॥ १॥
अनाहूतः प्रविशति ह्यपृष्टो बहु भाषते।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः॥ २॥

अर्थ—जिसने कोई शास्त्र न पढ़ा, न सुना; और अतीव घमण्डी, दरिद्र होकर बड़े-बड़े मनोरथ करनेहारा; विना कर्म से पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा करने वाला हो; उसी को बुद्धिमान् लोग 'मूढ़' कहते हैं॥ 1॥

जो विना बुलाये सभा वा किसी के घर में प्रविष्ट हो, उच्च आसन पर बैठना चाहे, विना पूछे सभा में बहुत-सा बके; विश्वास के अयोग्य वस्तु वा मनुष्य में विश्वास करे, वही 'मूढ़' और सब मनुष्यों में 'नीच मनुष्य' कहाता है॥ 2॥

जहां ऐसे पुरुष अध्यापक, उपदेशक, गुरु और माननीय होते हैं, वहां अविद्या, अधर्म, असभ्यता, कलह, विरोध और फूट बढ़के दुःख ही बढ़ता जाता है।

- सत्यार्थ-प्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती

वेदों में कृषि कार्य की श्रेष्ठता

❑ डॉ० विनय विद्यालङ्कार.....✍

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में 'वेदविषय विचार' में लिखा है कि 'वेदों में दो विद्याएँ हैं-अपरा और परा। इनमें से अपरा यह है कि जिससे पृथिवी और तृण से लेकर प्रकृतिपर्यन्त पदार्थों के गुणों के ज्ञान से ठीक-ठीक कार्य करना होता है और दूसरी परा कि जिससे सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की यथावत् प्राप्ति होती है। यह पराविद्या अपरा विद्या से अत्यन्त उत्तम है, क्योंकि अपरा का ही उत्तम फल परा विद्या है। 'इस उद्धरण में दो बिन्दु ध्यातव्य हैं कि अपरा विद्या में पृथिवी और तृण से लेकर....।' अर्थात् पृथिवी जिसे 'गौ' 'क्षिति' 'वसुन्धरा' आदि शब्दों से व्यक्त किया जाता है। उससे प्राप्त होने वाले अन्नादि का ज्ञान उसकी उत्पत्ति का विज्ञान कृषिविज्ञान है जो वेदों में वर्णित है। दूसरा बिन्दु पराविद्या अपरा से उत्तम है परन्तु परा भी 'अपरा' का ही उत्तम फल है। 'अपरा' विद्या के ज्ञान की महती आवश्यकता है।

संसार में यह बड़ी विडम्बना है कि धर्मक्षेत्र में कार्य करने वाले तथाकथित चिन्तक, मनीषी बुद्धजीवी जगत् के पदार्थों का उपयोग तो अवश्य करते है परन्तु उनके सूक्ष्म तत्त्वबिन्दुओं पर विचार करना हेय समझते हैं। महर्षि दयानन्द से पूर्ण हजारों वर्षों तक वेदों को यज्ञीय वाणिज्य, भौतिकविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, पदार्थविज्ञान की चर्चा ऋषि दयानन्द जी ने की तो उन तथाकथित धर्मकार्यों को सहन नहीं हुआ। अस्तु

वेद में अनेक स्थलों पर संसार का श्रेष्ठ कार्य-पृथिवी में अन्नादि का उत्पन्न करना बताया है। यजुर्वेद में कहा है-'**भूमिरावपनं महत्**'[१]

बीज बोने का महान् स्थान भूमि का ही है। इसी भूमि पर कृषि करने के साथ सामग्री प्राप्त होती है। इस सूक्ति का भाव यह भी है - इस भूमि के अपने पुरुषार्थ का वचन करें। पूर्ण पुरुषार्थ इस कृषि कार्य में करें। वेद माता कहती है - 'हे भूमि माता तुझे प्रणाम! तुम्हें प्रणाम हो, हे भूमिमाता! तुम्हें कृषि के लिए हम स्वीकार करते हैं। तुम्हें अपनी रक्षा के लिए ग्रहण करते हैं। तुम्हें हम ऐश्वर्य के लिए चाहते हैं।[२] और तुझे अपने पोषण के लिए माता के तुल्य वन्दनीय समझते हैं। संसार के लोग कृषिकार्य को हीन न समझें एतदर्थ वेद माता ने यहाँ तक कह दिया कि परमात्मा ने हमें कृषि के लिए उत्पन्न किया है, अत: 'हम सब पृथिवी पर उत्तम अन्नों की कृषि करें एवं करावें'। अन्न की उत्तमता पर बल दिया गया है - '**सुसस्याः कृषीस्कृधि:**'[३]

वर्तमान में जो अधिक लाभ (धनधान्य) को दृष्टिगत रखकर अन्न उत्पादन किया जा रहा है, जिसमें अधिक रासायनिक खादों का प्रयोग किया जाता है, परिणाम स्वरूप अनेक रोगों का प्रकोप मनुष्य को हानि पहुँचा रहा है। उसका समाधान भी वेद में ही है, खराब अन्न की उत्पत्ति का समाज के जीवन पर खराब प्रभाव पडता है। '**अन्नं वै प्राणिनां प्राणा:**' अन्न प्राणियों का जीवन है, प्राण है। '**अन्नं प्राणस्य षड्विंश:**' अन्न हमारे प्राण का २६ वाँ भाग बनता है।

सुसंस्कृत कृषि के लिए कृषि के साथ यज्ञ का उपयोग बताया - '**...कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च मऽऔद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्**'[४]

वेद की मान्यता है संस्कार का श्रेष्ठतम कार्य यज्ञ है तो वही यज्ञीय अनुष्ठान कृषि कार्य को भी यज्ञ बना दें। भूमि को उपयोगी बनाते समय यज्ञ का प्रयोग करें। पृथिवी समर्थ एवं शक्तिशाली बनेगी।

'**...पृथिवी च मे....यज्ञेन कल्पन्ताम्**'[५]

मेरा अन्न और मेरी पृ थवी से उत्पन्न होने वाला ऐश्वर्य यज्ञ के द्वारा सम्पन्न एवं समर्थ हों।

'वाजश्च में प्रसवश्च मे...यज्ञेन कल्पन्ताम्'[५क]

परमात्मा का आदेश है – उत्तम सुगन्धित, पौष्टिक, रोगनाशक द्रव्यों के द्वारा कृषि कार्य किया जाय। महाभारत का वाक्य प्रायः स्मृति पटल पर आता है – '**आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः**' इसका मूल वेद की उस प्रेरणा से पुष्ट होता है कि जो भोजन मनुष्य को प्राप्त होता है, उसकी उत्पत्ति के समय से ही शुद्धता का ध्यान रखा जाय। वैदिक शिक्षा दीक्षा से अनभिज्ञ वर्तमान विज्ञान मलजन्य अन्नरस को खाने को बाध्यकर रहा है, जिसका दुष्प्रभाव न केवल शरीर पर अपितु मन–मस्तिष्क एवं विचार शक्ति पर भी पड रहा है। आन्तरिक एवं बाह्य पर्यावरण परस्पर पूरक होता है यदि मनुष्य का आन्तरिक पर्यावरण (विचार) शुद्ध रहेगा तभी वह पृथिवी को स्वर्ग बनाने की क्रियाएँ करेगा। वैदिक कृषि का उद्देश्य सुगन्धित, स्वास्थ्यवर्धक, सात्विक अन्न उत्पन्न करना है, जिसका सेवन करने वाले मनुष्य उत्तम कार्य करने वाले हों। जिस उत्साह एवं हर्ष के साथ जीवन जिया जाना चाहिए, उसके लिए उसी प्रकार के हर्षित वातावरण में फसलें उत्पन्न होनी चाहिए। जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में शीतल पवन के झकोरों से वृक्ष वनस्पतियों को आनन्द एवं जीवनसंचार होने लगता है और उनकी वृद्धि तथा फलादि की अधिकता होने लगती है। वेद कहता है कि –'**फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्**'[६]

ओषधि, अन्न, वृक्ष, वनस्पति, लतादि अपने पाक को प्राप्त हो साथ ही फलवती हों। अर्थात् हमारी कृषि फलवती हो – निष्फल न हो। सफल खेती के लिए संगीत का प्रयोग अत्यन्त लाभकारी होता है, यज्ञ की प्रक्रिया में किये जाने वाले मन्त्रपाठ, सामगान का लाभ कृषि के लिए लेना चाहिए '**कृषिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्**'। वर्तमान में जो कृषि विज्ञान का पाठ्यक्रम है वह मृदा, जल उर्वरक, बीज, खरपतवार नाश व अन्न उत्पादन की वृद्धि तक सीमित हैं, जबकि वैदिक कृषि विज्ञान इन सभी के साथ–साथ यज्ञ के प्रकार सिखाने पर भी बल देता है। प्राचीन समय में बीजवपन के लिए कृषिभूमि का संस्कार करने के लिए फसल के आने व पकने पर बड़े–बड़े यज्ञादि होते थे। इसी कड़ी में शारदीय नवसस्येष्टि (दीपावली) व वासन्तीय नवसस्येष्टि (होली) का पर्व मनाया जाता था। वर्तमान में इन पर्वों की मूलभावना जो कृषि से जुडी हुई थी समाप्तप्राय हो चुकी है।

कृषि का कृषक की वाणी के साथ गहन सम्बन्ध है इसका भी उल्लेख वेद में प्राप्त होता है–

'वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे।[७]

अर्थात् विविध प्रकार के उत्तम अन्न के उत्पन्न करने के लिए प्रसिद्ध उत्पत्ति के कारणभूत पृथिवी माता को '**वचसा करामहे**' वाणी से युक्त करें। इसका स्पष्ट अर्थ है – अन्न उत्पत्ति के लिए कृषि भूमि एवं कृषि के पौधों पर संगीतमय अनुकूल ध्वनियों के साथ प्रयोग अवश्य करना चाहिए। जहाँ एक भेद फसल के लिए उत्तम खाद की आवश्यकता है, वहीं संगीत का खाद भी अत्यन्त उपयोगी है। संगीत वातावरण में उत्साह हर्ष एवं आशावादिता को जन्म देता है, कृषक को आशावादी होना ही होता है तभी तो वेद माता ने कहा – '**सर्वाऽआशा वाजपतिर्भवेयम्**'[८]

मैं सब दिशाओं में कृषि करके अन्नपति होऊँ, कृषिकर्म से ही व्यापार क्षेत्र को विकसित करुँ, यह भावना प्रत्येक कृषक में होनी चाहिए। यह कब होगी जब राज्यव्यवस्था प्रशासन कृषिकर्म करने वालों को निरन्तर प्रोत्साहित करेगा, यह ही कहा जाता है कि भारत कृषि प्रधान देश है, परन्तु कृषक दुःखी है, सबको अन्न उपलब्ध कराने वाला भूखा है, निराशा में है, आत्महत्या कर रहा है, यह दायित्व किसका है? कृषि उपेक्षित है, कारण वैदिक राजधर्म के विपरीत नैतिकता रहित राजनीति का बोल बाला है। वेद माता कहती है प्रत्येक कृषक कहे–'**सर्वाऽआशा वाजपतिर्भवेयम्**'[९]

'मैं अन्नपति होकर सब दिशाओं में चारों ओर दूर-दूर तक देश-देशान्तर तक व्यापार करके व्यापार क्षेत्रों को जीतूँ।'

इसप्रकार कृषि कार्य को श्रेष्ठ, हर्षित करने वाला, विजयी बनने वाला, धन धान्य से समृद्ध बनने वाला बताया गया है, वेदों के अनुसार कृषि व व्यापार एक ही वर्ग का लाभ होना चाहिए, जो उत्पादक हैं, वही उसका व्यापार करेगा तभी न्याय भी होगा। वर्तमान में अन्य उत्पादक ही अपनी वस्तुओं का मूल्य निधारण व व्यापार अपनी शक्ति पर करते हैं जबकि कृषक अपने अन्न-धान्य, फल, वनस्पति आदि का मूल्य निर्धारण नहीं कर सकता, यह विडम्बना है। वैदिक कृषि कार्य ही सच्ची समृद्धि का आधार है। इसीलिए वेद ने कहा है-

'अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व'[१०]

-एम.बी. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी

सन्दर्भ-सूची:-

१. यजुर्वेद-२३/४६
२. अस्मे वोऽअस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्रतुरस्मे सन्तु वः। नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्याऽइयं ते राडयन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि धरुणः।कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा॥ (यजु.-९/२२)
३. यजुर्वेद-४/१०
४. यजुर्वेद-१८/९
५. यजुर्वेद-१८/२२
५क. यजुर्वेद-१८/२२
६. यजुर्वेद-२२/२२
७. यजुर्वेद-१८/३०
८. यजुर्वेद-१८/३४
९. यजुर्वेद-१८/३४
१०. ऋग्वेद-अक्षसूक्त।

श्रीमद्दयानन्द वेदार्ष महाविद्यालय न्यास ११९ गौतमनगर, नई दिल्ली-४९ द्वारा संचालित शाखा संस्थायें

१. श्रीमद्दयानन्द वेदार्ष महाविद्यालय, ११९ गौतमनगर, नई दिल्ली-४९,मो.-०९८६८८५५१५५
२. गुरुकुल यमुनातट मंझावली, जिला फरीदाबाद (हरियाणा), मो.-०९७१८५७९३३३
३. श्रीमद्दयानन्द आर्ष ज्योतिर्मठ गुरुकुल दूनवाटिका-२ पौन्धा, जिला-देहरादून (उत्तराखण्ड), मो.-०९४११११०६१०४
४. गुरुकुल नरसिंहनाथ पाईकमाल, जिला-बरगढ़ (उड़ीसा), मो.-०९३३८५५२१५१
५. आर्ष कन्या गुरुकुल, देवनगर (घुचापाली), जिला-बरगढ़ (उडीसा), मो.-०९९३७६४९३१३
६. गुरुकुल योगाश्रम, पतरकोनी, पैण्ड्रा रोड़, जिला-बिलासपुर (छत्तीसगढ़),मो.-०९४०६११४३६६
७. श्रीकृष्ण आर्ष गुरुकुल, देवालय गौमत, वाया खैर, जिला-अलीगढ (उत्तरप्रदेश), मो.-०९४१६२६७४८२
८. पं. लेखराम आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय, पं. लेखराम मार्ग, वैल्लीनेषि, जिला पालक्काट (केरल)-६७९५४, मो.-०९५६२५२०९९५

उत्तम खेती (कृषि)

❑ आचार्य योगेन्द्र याज्ञिक.....✍

कृषि शब्द **d"k foy[ku** धातु से **bd d";kfnH;%** (अष्टा.वा. ३.३.१०८) से इक् प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है हल चलाना, खेती करना। कृषि शब्द की ऋषि दयानन्द अपने ग्रन्थों में निम्न व्युत्पत्तियां करते हैं–

f- d";r fofy[;r ;k lk df"k% ^[krh* bfr iftl)kA (उणादिकोष ४–२१)

„-d"kfUr fofy[kfUr ;kfHkLrk%A (यजु. ४–१०)

…-d"kfUr fofy[kfUr Hkfe ;;k rL;kA (यजु.६–२२)

मेगस्थनीज के अनुसार भारत के लोगों को निम्न सात भागों में विभक्त कर सकते हैं– दार्शनिक, कृषक, गोपाल, शिल्पकार, सैनिक, अवेक्षक, सभासद (करग्राही)।

कृषि भारत के प्रमुख कार्यों में से एक कार्य है। इसलिए पुराने समय में हमारे यहां एक कहावत प्रसिद्ध थी कि **mRre [krh e/;e okuA v/ke pkdjh Hkh[k funkuAA** ऋग्वेद १०–३४ में कहा गया है– **v{kek nh0;% df"kfer d"kLo** यहाँ द्यूत का निषेध करके कृषि करने पर बल दिया गया है। यहाँ कुत्सिक कर्म का निषेध किया है और श्रम से देश की समृद्धि को बढ़ाने वाले खेती जैसे कामों को करने का मार्गदर्शन किया है। जिस श्रम से देश का अभाव नहीं मिटता और समृद्धि नहीं मिलती वह कमाई प्रशंसनीय नहीं है। परिश्रम के नाम पर तो चोर, डाकू, भिखारी भी सारे दिन रात परिश्रम करते हैं पर उस श्रम के बदले में देश को कुछ भी नहीं मिलता। इसलिए वेद कहता है कि हम भोग लिप्सा को त्यागकर कृषि जैसे पवित्र साधनों से स्वयं निर्वाह करते हुए देश की आवश्यकता की पूर्ति में सहायक बनकर अपने जीवन को सफल बनाने का यत्न करें।

व्यापार से कृषि इसलिए श्रेष्ठ है क्योंकि व्यापार के माध्यम से एक वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है। वही कृषि में नवोत्पादन किया जाता है। अतः कृषि राष्ट्र को समृद्धि प्रदान करती है। उत्पादन और व्यापार को कुछ यूं समझें जो व्यापार करता है वो खरीदता और बेचता दोनों है पर उत्पादक केवल बेचता ही बेचता है। किसान उत्पादक है। इसीलिए महर्षि दयानन्द जी किसान को राजाओं का राजा महाराजा स्वीकार करते हैं।

ऋग्वेद ४–५७–५ में भी कहा है कि **d"kd df"k }kjk /ku/kkU; lafpr gksdj lq[kh gksoA** ऋग्वेद १–१७४–२ में राजा के प्रजा के प्रति निम्न कर्तव्यों का वर्णन मिलता है– (१) शिक्षा प्रदान, (२) छहों ऋतुओं के अनुकूल नगर बसाना जिससे सदा सुख मिले, (३) कृषकों के लिए नहरों द्वारा जल पहुँचाना।

यजुर्वेद के अनेक स्थलों पर कृषि कर्म का वर्णन आया है–

१. कृषि के साधन– बलवान बैल, लांगलम् (हल) जुआ, युगा, फाल, पाटा (पटेला)।
२. उत्तम भूमि का चयन, भूमि नम होवे, कंकण, पत्थर, जड़ें, खरपतवार से रहित होवे।
३. भरपूर फसलवाली वैज्ञानिक खेती, क्योंकि जितने उन्नत वैज्ञानिक ढंग से कृषि की जायेगी उतनी ही अच्छी फसल होगी तथा देश उतना ही धनधान्य से सम्पन्न होगा।
४. कृषक रोगरहित अन्न उत्पन्न करें जिससे मनुष्यादि

की बुद्धि को बढ़ावे।

५. इच्छानुसार वर्षा होवे जिससे ओषधियाँ फलयुक्त होकर पकें।

६. उत्तम साधन, उत्तम बीज, सिचाई के उपाय व साधन, उत्तम जैविक खाद तथा सुरक्षा के साधन।

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में कृषि के लिए कृष्टि शब्द मिलता है।

मनुष्य शरीर में १०७ मर्मस्थल हैं उन्हीं में सदा रोग उत्पन्न हुआ करते हैं और रोग निवारण के लिए उन्हीं में ओषधियां पहुंचाई जाती हैं। परन्तु जब योग्य किसानों द्वारा उत्तम अन्न प्राप्त करके हम उसका सेवन करते हैं तो वह इन १०७ मर्मस्थलों को बल प्रदान करता है और हम रोग रहित हो जाते हैं। शरीर में रोग ही प्रवेश नही कर पाते ।

जो किसान राजाओं का राजा है अन्न दाता समृद्धि प्रदाता है। ढाडू नामक वायु जो प्रसन्नता को देने वाला है, स्वास्थ्यप्रद है और बुद्धि वर्धक है यह ढाडू वायु तीन मुहूर्त रात्रि शेष रहने पर ब्रह्म मुहूर्त में चला करता है और वर्षा ऋतु के बिना भी अप्रकट रुप में जल को धारण करने से शीतल रहता है। उस वायु का योगी साधकों के उपरान्त सर्वाधिक उपयोग करने वाला किसान आज सर्वाधिक रोगी, दुःखी, असहाय निर्धन दिखाई दे रहा है और आत्महत्या करने को मजबूर हो गया है। जीवन दाता आज इन निर्मित परिस्थितियों में स्वयं व परिवार के सदस्यों की मृत्यु के लिये मजबूर हो गया है।

जिस भारत के किसान ने पूरी दुनियाँ को कृषि के गुर सिखाये। हल, हसिया, बेल्चा, खुर्पा, पवित्र आदि का निर्माण किया। यह पवित्र कृषि में एक विशेष उपकरण है जिसके द्वारा बीजों को एक लाइन में बोया जाता है और पूरे खेत में कहीं से देखें एक लाइन में दिखाई देते हैं इसे ही अंग्रेजी में ड्रील प्लाउ कहते हैं। आज भी एक सौ पचपन देश धान का उत्पादन भारत की पद्धति से करते हैं।

हमारे यहाँ लगभग १८ करोड़ हेक्टेयर जमीन पर खेती होती है और लगभग इतनी ही बेकार ऊसर जमीन पड़ी है। लगभग १ लाख ६० हजार गांवों में आलू, ४ लाख गांवों में कपास व गन्ना का उत्पादन होता है। जितने पानी की आवश्यकता है उससे पांच सौ गुना पानी ईश्वर ने दिया है। परन्तु कुछ हमारी लापरवाही के कारण व जो गुलामी के समय अंग्रेजों ने **,xhdYpj ikbt deh'ku ,DV** बनाया था और अन्य गुलामी के काल की जो नीतियाँ है उन के कारण आज किसान की यह दुर्दशा है।

आश्चर्य देखिए अनाज का मूल्य सरकार निर्धारित करती है। किसान साल भर मेहनत करता है पर फसल के लिए ढाई से तीन महीने की मेहनत जोड़ी जाती है। किसान के श्रम का मूल्य सबसे कम आंका जाता है। एक चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी से भी कम। पर ये भी तो सोचो किसान खेत में अकेले काम नहीं करता है अपितु पूरे परिवार के साथ श्रम करता है और मूल्य अकेले के श्रम का भी प्राप्त नहीं होता है।

एक पियर्स छोटा सा साबुन खरीदने के लिए दो किलो गेहूँ बेचा जायेगा। केवल कारण यह है कि वहाँ व्यापारी उसका मूल्य तय कर रहा है और यहाँ किसान के साथ ऐसा नहीं है। आज देश में ऐसी व्यवस्था हो गई है कि जब व्यापारी किसान से सब्जी खरीदता है तो एक रुपये किलो और जब वह नागरिक को बेचता है तो १५ रुपये किलो। इसलिए व्यापारियों की भांति किसान को भी अपनी उपज का मूल्य तय करने का अधिकार होना चाहिए, न कि जिन्होंने कभी ठीक से खेत भी

नहीं देखे उन ए.सी. में बैठे अधिकारियों को।

अनाज बेचते ही किसान के हाथ से सारी रकम चली जाती है और वह ऋण के बोझ तले चला जाता है। भारत में किसान ही एक ऐसा समुदाय है जो चक्रवृद्धि ब्याज देता है। कर्जे के कारण पहले जेवर फिर घर और फिर खेत गिरवी रखता है। और अन्त में आत्महत्या कर लेता है। आज हमारे देश में लाखों किसान प्रतिवर्ष आत्महत्या कर रहे हैं। सर्वेक्षण बताता है कि कर्ज के कारण किसान आत्महत्या करते हैं। कहीं बैंक का तो कहीं साहूकार का कर्ज बचा रहता है। खेती अच्छी नहीं हुई और अगली फसल के लिए पैसा नही है तो आत्महत्या कर ली।

कृषि और किसान की दुर्दशा के लिए जहाँ हमारी गलत नीतियाँ, शासन प्रशासन दोषी है वहीं कहीं न कहीं किसान का आलस्य व पूर्व के साधनों का त्याग व नवीन साधनों का प्रयोग भी कारण है। पशुओं का गोबर, देशी कीटनाशक, देशी बीज इन सबका ह्रास हो गया है। १९६० से हरित क्रान्ति के रूप में जो जहरीली दवाईयों व खाद ट्रेक्टर ने प्रवेश किया है उससे कृषि व कृषक की हालत बिगड़ती चली जा रही है। जो रासायनिक खाद व कीटनाशक अमेरिका आदि ५६ देशों में लगभग २५ वर्षों से प्रतिबन्धित है उन्हीं को वे विदेशी लोग भारत में आकर बनाते हैं व बेचते हैं। आज पूरे भारत का प्रत्येक सदस्य लगभग २०० मिलिग्राम जहर खा चुका है, और मां का दूध तक यूरिया युक्त हो गया है। प्रतिवर्ष हजारों किसान कीटनाशक छिड़कते हुए मर जाते हैं। इससे कैंसर जैसे भयानक ४८ प्रकार के रोंगों के होने की सम्भावना रहती है।

वैज्ञानिकों का शोध बताता है कि जितना कीटनाशक डालेंगे उतने ही किटाणुओं की मात्रा बढ़ती जाती है। रिपोर्ट बताती है कि १९५२ के आस पास एक हेक्टेयर में ३ किलोग्राम खाद डाली जाती थी आज लगभग १२५ किलोग्राम खाद डालनी पड़ती है। क्योंकि हमारे खेतों में दो तरह के जीव होते हैं– १. मित्र जीव, २. शत्रुजीव। मित्र जीव मददगार हैं और शत्रुजीव हानी पहुँचाते हैं। जब खेत में यूरिया आदि डालते हैं तो मित्र जीव मर जाते हैं और शत्रुजीव हावी हो जाते हैं परिणाम स्वरूप कीटाणुनाशक की मात्रा बढ़ानी पड़ती है। जो कीटनाशक डाला जाता है, वह २ प्रतिशत ही कीटाणुओं को मारने का काम करता है शेष ९८ प्रतिशत मिट्टी और पर्यावरण को दूषित करता है।

यूरिया आदि के कारण ६५ प्रतिशत पशु बाँझ हो जाते हैं क्योंकि वे भी यूरियायुक्त चारा खा रहे हैं। आई.सी.आर. के वैज्ञानिकों ने खोजा है कि तीन साल तक लगातार गाय भैंस का गोबर मूत्र डाला जावे तो मिट्टी में फैले समस्त दोष दूर हो जायेंगे और उसमें उपजा अन्न व चारा आदि उत्तम होगा।

खेत को उत्तम फसल देने के लिए १८ प्रकार के तत्वों की आवश्यकता होती है। यह मेक्रोन्यूट्रियन्स व माइक्रो न्यूट्रियन्स रूप से २ प्रकार के होते हैं। मेक्रोन्यट्रियन्स में पोटास, नाइट्रोजन, फासपोरस, कैल्शियम, सल्फर, मेग्निशियम ये छह रसायन आते हैं। माइको न्यूट्रियन्स में कॉपर, कोबोल्ट आदि अतिसूक्ष्म १२ रसायन आते हैं। ये सबसे ज्यादा पशुओं के गोबर में होते हैं। इससे फसल अच्छी व उत्तम होती है। यूरिया में पोटास, नाइट्रोजन व फासपोरस केवल ये तीन रसायन होते हैं। बाकी तो खेत को इससे नहीं मिलेंगे।

आज किसान की जिन्दगी की कमाई का लगभग ६० प्रतिशत भाग रासायनिक खरीदने में, २० प्रतिशत कीटनाशक जन्तुनाशक खरीदने में और २० प्रतिशत कमाई से अन्य व्यवस्था होती है। किसान की बारबादी का एक कारण यह भी है कि

उपज की कीमत बहुत कम बढ़ी और खाद बीज व अन्य खर्चे बहुत बढ़ गये। खेती में खर्चा ज्यादा है और आमदनी कम है।

f‹‹Œ e	**orleku e**
;fj;k vkfn	
यूरिया ५० रु. की ५० किलो	३० रु. किलो
Mh-,-ih-	
३ रु. किलो	२५ रु. किलो
tUr uk'kd	
१०० रु. लीटर	१८०००रु.लीटर तक
Mhty	
३ रु. लीटर	५६ रु. लीटर

इस प्रकार खर्च तो कई गुणा बढ़ा और उपज में बहुत कम बढ़ोत्री हुई।

इसलिए कृषि को श्रेष्ठ बनाने के लिए सरकार अपनी नीति बदले व किसान अपने प्राचीन ढंग को अपनाकर जैविक कृषि की ओर ध्यान देवे और कोई उपाय नहीं है। जब तक किसान इस जैविक कृषि से जुड़ा था तब तक कृषि फायदे का सौदा था। इसलिए आइये इन प्रयोगों को अपने खेतों में अपनाने की कोशिश करें–

१. एक एकड़ खेत में किसी भी फसल हेतु एक बार के लिए१५ कि. गोबर में १५ लीटर गोमुत्र मिलाकर एक किलो गुड़, एक किलो उड़द की दाल का आटा, एक किलो अच्छे स्थान की मिट्टी लेकर एक पात्र में १५ दिनों के लिए रख देवें व सुबह शाम डंडे से हिलाएं मिलाऐं साथ ही इस उपरोक्त सामग्री में २०० किलो पानी भी डाल देवें। २१ दिन बाद इस समस्त सामग्री को एक एकड़ खेत में छिड़क देवें।

„- dhVuk'kd& एक एकड़ खेत के लिए २० लीटर मूत्र में ढाई किलो नीम की पत्ती व निमोली की चटनी बनाकर एवं ढाई किलो आक, बेल, धतूरा, सीताफल व आड़ू के पत्तों की चटनी बनाकर मिलाकर इन सबको उबाल लेवें। पुनः ७५० ग्रा. तम्बाकू का चूरा डालकर इसे रख लेवें। जब इसका प्रयोग करना हो तो जितना यह स्प्रे लें उससे २० गुना पानी लेकर मिलाकर छिड़काव करें लगभग ४८ घण्टों में कीट समाप्त हो जायेंगे।

…- cht dk lLdkfjr dj& एक किलो बीज शुद्ध करने हेतु एक किलो गोबर को एक किलो मूत्र में मिलाकर १०० ग्राम चूने की डली १ कि. पानी में डालकर रातभर रखकर पानी छानकर मूत्र और गोबर में मिला देवें उसमें बीज को ५ घंटे डालकर छाव में सुखा देवें। एसे बीजों की फसल अच्छी होगी।

आइये हम सब मिलकर ऐसा प्रयत्न करें कि कृषि घाटे का सौदा न बनकर फायदे का कम बने। ऐसी नीति व व्यवस्था की ठीक–ठीक योजना बने कि किसान ऋणी न होकर राजाओं का राजा बने और एक बार पुनः हम कह पावें कि हमारा कृषक सम्पन्न है, क्रन्दन रहित है, आनन्द युक्त है।

&vk"k x#dy gk'kxkckn

प्रश्न—वेद नित्य हैं, वा अनित्य?

उत्तर—'नित्य' हैं। क्योंकि परमेश्वर के नित्य होने से उसके ज्ञानादि गुण भी नित्य हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव नित्य और अनित्य द्रव्य के 'अनित्य' होते हैं।

-सत्यार्थ-प्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती

उत्तम खेती

❑ बद्रीप्रसाद पंचोली.....

भारत कृषिप्रधान देश है। मान्यता चली आती है कि सब कुछ वेद से ही प्रसिद्ध होता है – **सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति।** कृषि कर्म भी वेदसम्मत है। वेद में कहा गया है–**कृषिमित् कृषस्व** अर्थात् कृषि ही करो। कृषि सम्पूर्ण श्रम है – मनुष्य को मनुष्य बनाने वाला। वेद मानवता का संविधान है। उसमें मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने मनुष्य बनने की साधन को ही अपनी अपनी दृष्टि से प्रस्तुत किया।

वेद का यह भी वचन है कि जुआ मत खेलो। यदि कृषि कर्म में प्रवृत्त होकर पूर्ण मनुष्य बनने का मार्ग नहीं अपनाया तो जिन्दगी जुआ बन जायगी, जुआरी बन जाओगें। द्यूतसूक्त में जुआरी की दुर्दशा का चित्रण किया गया है।

आज देश में कृषक आत्महत्या कर रहे हैं। कृषक देश का अन्नदाता है। अन्नदाता आत्महत्या करे – यह दुर्भाग्य है। मनु ने कहा है – **छिद्रेण नश्यते भूमिः छिद्रेण नश्यते नरः**। श्रीलंका में छोटा किसान भी आत्महत्या नहीं करता है। वह साठी चावल की छह फसलें पैदाकर लेता है। जरूरत के अनुसार केला, गन्ना, खजूर और लौंग पैदा कर लेता है। अपनी आत्मनिर्भरता का श्रेय वह परिश्रम वह अपने परिश्रम से भूमि को इतना सींचता है कि भूमि में दरारें न उठें, वह फटे नहीं। कृषि उसे पुरुषार्थी बनाती है।

पुरुषार्थ तो भारतीय कृषक भी करता है। पर वह अपने जीवनदर्शन को भूल गया है। इसलिए घबरा कर आत्महत्या करने को उद्यत हो जाता है। वह स्वीकारे तो कि वह वेदभूमि भारत का निवासी है। भौमब्रह्म का उपासक है। **'माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'** कह कर वह अपने जीवन को सार्थक बनाता है। इस मान्यता से उसमें धूप, ठण्ड और बरसात का सामना करने की शक्ति जागती है।

हमारी शिक्षा व्यक्ति को आत्मविश्वासी नहीं बनाती। रासायनिक खादों ने खेतों की उर्वराशक्ति को समाप्त प्राय कर दिया है। वर्षा का असन्तुलन कृषि को प्रभावित कर रहा है। सारा राष्ट्र एक साथ वैदिक राष्ट्रगीत (यजु.–२२/२२) गाता हुआ कामना करे – **'निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयो पच्यन्ताम्'** तो अतिवृष्टि–अनावृष्टि का प्रकोप भी नहीं होगा और फसलें भी अच्छी होंगी।

किसान आत्मनिर्भर तभी हो सकता है जब उसके पास खाद और बीज अपने हों। इनको वह महँगे मोल खरीदता है और फसल खराब होती है तो आत्महत्या करता है। कम पानी में भी अच्छी फसल हो सकती है – यह तो भूल ही गए। कम से कम तीन हजार बीज नष्ट हो गए जो स्थानीय धरती और मौसम के अनुकूल थे। अयाना (जि.–कोटा) का गेहूँ संसार में सबसे अधिक पौष्टिक था। उसका बीज भी हमारे पास नहीं है। किसान जागरुक और आत्मविश्वासी होता तो अपने बीजों की रक्षा कर सकता था। किसान की विशेषज्ञता धरी रह गई। सरकारी कृषि अधिकारियों की उधार ली हुई तकनीक और ऋणमेलों की बन्दर बाँट में कृषि का भट्टा बैठ गया। लागत अधिक और उपज कम के कारण कृषक अकिंचन हो गया।

कृषक की शब्दावली लुप्त होती जा रही है। अक्षय तृतीया से वह अपना नया श्रम वर्ष प्रारम्भ करता था। सबसे पहले खरहार करता था खेत में। इसके बाद रोहिणी नक्षत्र में पुनः खेत हौकता था। इससे खरपतवार बनने वाले सब बीज और कृमि नष्ट हो जाते थे। आषाढ के महीने में पुनः हौक देने से खेत प्रथम वर्षा के जल को अपने भीतर समा लेता था। श्रावण मास में साबनी फेरने से खेत तैयार हो जाता था फसल बोने के लिए। पुनर्वसु

और पुष्य में बोई हुई फसल में मिठास होता है। आश्लेषा का पानी विषैला होता है। निन्दाई करके उसका उपयोग करना किसान को आता था। मघा और पूर्वानक्षत्र में घनीवर्षा होती है। किसान फसल ही ऐसी बोता था कि अनावृष्टि और अतिवृष्टि चिन्ता के विषय नहीं बनते थे। 'गली मक्का और बणी ज्वार अच्छी होती है' - यह जानकारी कृषक को थी। इस परम्परागत कृषिज्ञान को भुला दिया गया। चित्रा में बोये का चने चौगुने होते हैं और स्वाति में बोये गेहूँ सौ गुने पैदा होते हैं-यह भी भूल गए।

कृषि के लिए हल, कुली और लोहे के उपकरण कैसे हों इसकी जानकारी कृषक को थी। कृष्णपक्ष में कटी हुई लकड़ी के ही कृषि उपकरण बनाये जाते थे। लोहा भी शोधित करके ही कृषि उपकरण बनाने में उपयोग में लिया जाता था।

वेद की परम्परा को मानकर ही लोक में कहा गया - उत्तम खेती, मध्यम वणिज, अधम चाकरी। जिन नौकरियों के लिए आज देश का युवक समुदाय दौड़ लगा रहा है उसको देश की सनातन परम्परा अधम कोटि का मानती है।

कृषि के लिए कहा गया है - खेती साई सेती। अर्थात् खेती को व्यक्ति स्वयं करे तभी उसका पूरा लाभ मिलता है। व्यक्ति को अपने पुरुषार्थ पर विश्वास होता है, जिससे उसे और अधिक काम करने की प्रेरणा मिलती है। कृषि को यज्ञ माना गया तो कृषक यजमान होता है। कमीण-कारू उसके सहयोगी होते हैं। कमीण (कर्मिन्) अर्थात् कर्म सहयोगी और कारु का अर्थ है - शिल्पकार -बढई, लुहार, कुम्हार आदि।

कृषक का अपने कृषि कर्म के प्रति समर्पण उसे विशेष बना देता है। वह समाज का मुखिया कहलाता है। जब उसकी फसल कटकर खलिहान में आती है तब वह कर्मिन् और कारुओं को उनका हिस्सा सम्मानपूर्वक प्रदान करता है। बचे हुए अन्न को यज्ञशेष के रूप में ग्रहण करता है।

कृषि ही पूरे समाज को एकसूत्र में बांधती है। उससे समाज के प्रत्येक व्यक्ति के हाथ में काम होता है। कोई भी बेकार नहीं होता। कितनी ही विद्याओं का विकास कृषि से होता है। शिल्पों और कलाओं का विकास भी होता है।

जिस भूमि को कृषक अपनी माता मानता है उसके साथ सीधी पहचान कृषिकर्म से ही होती है।

कृषिकर्म के कारण ही मानवजाति के इतिहास की सबसे बड़ी संस्था परिवार है। परिवार संसार का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय है। वह सबसे बड़ा चिकित्सालय है। यही नहीं परिवार सबसे बड़ी प्रशिक्षणशाला भी है। परिवार का अर्थ है - **परितः वारयति स्वदोषान् अस्मिन् इति** अर्थात् परिवार में प्रत्येक व्यक्ति को अपने दोषों को दूर भगाने का अवसर मिलता है।

कृषक के इस परिवार में सारे मानवीय सम्बन्धों का विकास होता है। विश्वकुटुम्ब का स्वरूप भी साकार होता है। अपने-पराये का भेद नष्ट हो जाता है-सब उदारचरित बन जाते हैं -वसुधा को कुटुम्ब मानने वाले।

किसान का प्रशस्तिगान करते हुए राष्ट्रकवि माखनलाल चतुर्वेदी ने कहा है-

सिर पर पगा,
आग हाथों में,
ले पानी का घड़ा,
जवानी देख कि प्रियतम खड़ा,
कला कल्पना से कह,
इसको बन्दनवारें चढ़ा।।

-बी-६, दातानगर,
अजमेर (राज.)-३०५००१

जो पदार्थ जिस प्रकार का हो उसको उसी प्रकार जानने का नाम ज्ञान है।
-स्वामी दयानन्द सरस्वती

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कृषि दुर्दशा के कारण

❑ डॉ. रवीन्द्र कुमार.....✍

भारत प्राचीन काल से कृषि प्रधान देश रहा है। यहां की अर्थव्यवस्था की उन्नति में कृषि का अनन्य योगदान रहा है, परन्तु वर्तमान में कृषि का भारतीय अर्थव्यवस्था में अत्यन्त न्यून योगदान है। प्राचीनकाल से मध्य काल पर्यन्त और अब से लगभग ४० वर्ष पूर्व तक कृषि तो अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार थी, परन्तु वर्तमान में इतनी दुर्गति होती आ रही है। यह निश्चित है कि यदि स्थिति यहीं रही तो एक समय में विश्व में खाद्यान्न का भयानक संकट उत्पन्न होगा। समस्त विश्व खाद्यान्न के लिए त्राहि माम्–त्राहि माम् की अवस्था में पहुंच जायेगा। अत एव समय रहते हुए हमें कृषि के सुधार हेतु कृषि समस्याओं का समाधान करना पड़ेगा, जिससे कृषि उन्नत अवस्था में पहुंच सके। कृषि को प्रमुख समस्याएं निम्न है।

(१.) खाद्यान्न की विक्रय व्यवस्था–भारत में खाद्यान्न की विक्रय अवस्था मण्डियों में किसान के बिल्कुल भी हित में नहीं है। कृषक अत्यन्त मेहनत व परिश्रम से खेत में अन्न व फल उपजाता है। अहर्निश अनेकविध कष्टों का सहन कर अपनी कृषि की रक्षा करता है। फिर भी जब वह अपनी परिपक्व फसल को विक्रय करने के लिए मण्डी में जाता है, तो वहाँ उसे बहुत सस्ते में अपनी उपज को बेचना पड़ता है। वही उपज जब पुन: बाजार में बिकने के लिए आती है, तो दुगुने दाम में ग्राहक को खरीदनी पड़ती है। अर्थात् किसान से अधिक लाभ बीच में दलाल को ही जाता है, जिसे कृषि हेतु कुछ भी करना नहीं पड़ता है। कृषि को घाटे का सौदा बनाने में इस समस्या का बहुत बड़ा योगदान है।

इस समस्या का समाधान सरकार को करना चाहिए। सरकार को ऐसी मण्डी या स्थल उपलब्ध कराना चाहिए, जहाँ किसान स्वयं अपने खाद्यान्न को बेच सके। जिसमें दलाली की सम्भावना न हो। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि कृषक भी अपने स्तर से इस समस्या का समाधान कर सकते है। वे अपना एक मजबूत संगठन बनाकर एक ऐसी मण्डी अथवा विक्रय स्थल बना सकते है, जहां केवल कृषक ही विक्रेता हों। वहाँ आस-पास के शहर के ग्रामीण लोग व शहर के लोग समय पर आकर सब्जी खरीद सकें । इसमें कृषक ही स्वयं मूल्य निश्चित कर खाद्यान्न विक्रय कर सकता है, तथा यहाँ खाद्यान्न दलालों की मण्डी से सस्ता भी मिलेगा। इसीलिए कृषकों व सरकार को मिलकर इस क्षेत्र में कार्य करना चाहिए।

(२.) खाद्यान्न संग्रहण की समस्या– कृषकों के पास उचित समय में खाद्यान्न को विक्रय करने के लिए समुचित भण्डारण व्यवस्था नहीं है। जिसके कारण फसल के उठते ही किसान उसे सस्ते मूल्य पर बेच देता है। दलाल किसान से खरीद कर उसका भण्डारण कर देते हैं, और मूल्य बढ़ने पर ही उसे पुन: बाजार में बेच देते हैं। जिसके कारण अत्यन्त कष्ट सहन करके भी कृषक को लाभ नहीं मिलता है जबकि दलाल कृषक से बहुत ज्यादा कमा लेता है।

इस समस्या के समाधान के लिए भी कृषक व सरकार को एकजुट होकर कार्य करना चाहिए। सरकार को कृषकों के खाद्यान्न हेतु समुचित भण्डारण व्यवस्था करानी चाहिए। साथ ही कृषक भी अपना संगठन बनाकर अपने खाद्यान्न का भण्डारण कर उसे उचित समय पर विक्रय कर सकते है।

(३.) सिंचाई व्यवस्था– भारत में अनेक स्थल ऐसे है, जहाँ केवल वर्षा होने पर ही वहां कृषि की जाती है। वहाँ यदि सिंचाई की उचित व्यवस्था हो तो निरन्तर वहाँ खाद्यान्न उत्पन्न कर कृषक बहुत धन अर्जित कर सकता है। इस क्षेत्र में सरकार को एक बृहद् योजना बनाकर कृषकों हेतु कार्य करना चाहिए।

(४.) वैज्ञानिक पद्धति का प्रशिक्षण– किसान वैज्ञानिक पद्धति से बिल्कुल दूर है। सरकार को ग्राम पंचायत

अथवा गाँव-गाँव में कृषि की वैज्ञानिक पद्धति के प्रशिक्षण का शिविर लगवाना चाहिए। जहाँ किसानों को कृषि की वैज्ञानिक पद्धति सीखने का अवसर मिलें। बहुत से स्थल ऐसे हैं, जहाँ कृषक केवल एक समय में केवल एक ही खेती करते हैं। जबकि वर्तमान में वैज्ञानिक एक समय में अनेक खेती एक ही साथ करने की बात करते है। इस प्रशिक्षण से सीखकर किसान अपनी खेती की आय को बढ़ा सकता है। कम खेत होने पर भी वह एक साथ अनेक खेती करके धन अर्जित कर सकता हैं।

(५.) बीमा व ऋण सुविधा- किसान को बैंकों से ऋण बहुत कठिनता से मिलता है। अगर मिलता है तो उसे अपनी खेती धरोहर के रूप में रखनी पड़ती है। जबकि व्यापारी को ऋण सुविधा बहुत आसानी से मिलती है। उसे करोड़ों रुपये ऋण की सुविधा बहुत आसानी से मिलती है। किसानों को भी अपनी खेती को बढ़ाने के लिए बैंकों से ऋण सुविधा होनी चाहिए। साथ ही खेती का कम से कम मूल्य पर बीमा होना चाहिए। अब तक कृषि बीमा कृषकों की पहुंच से दूर था, परन्तु वर्तमान में केन्द्र सरकार की नवीन फसन बीमा नीति से इस क्षेत्र में कुछ आशा की किरण दिखी है। पुनरपि अभी भी सरकार को किसानों के लिए इस क्षेत्र में बहुत कुछ करना चाहिए।

(६.) उत्तम सड़क व परिवहन व्यवस्था- कृषक अधिकतम ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। वहां यातायात हेतु उत्तम सड़के नहीं है, जिसके कारण किसानों को खेतों से खाद्यान्न लाने में अत्यन्त कठिनाई होती है। इसीलिए किसानों के खेतों तक उत्तम सड़क व्यवस्था होनी चाहिए। साथ ही परिवहन व्यवस्था की भी सुचारु व्यवस्था करना चाहिए। परिवहन की उत्तम व्यवस्था न होने के कारण भी कृषक अपना खाद्यान्न शहरों तक पहुंचाने में असमर्थ हो जाते है। क्योंकि हर किसान परिवहन की व्यवस्था व्यक्तिगत रूप से नहीं कर सकता है। इस क्षेत्र में भी सरकार को बहुत कार्य शीघ्रतया से करना चाहिए।

(७.) दुग्ध एवं पशुपालन- कृषक समाज कृषि के साथ-साथ पशुपालन कर दुग्ध का भी कार्य करता है। वर्तमान में पशुपालन में सब से बड़ी समस्या पशुओं की देखभाल व चिकित्सीय समस्या है। गांवों में आसानी से उत्तम पशुचिकित्सक उपलब्ध नहीं होते है। जिसके कारण किसानों के अतिमूल्यवान् पशु अनायास ही मृत हो जाते हैं। जिससें किसानों को बहुत हानि होती है। सरकार सरकारी पशुचिकित्सकों को गाँवों में न भेजकर शहरों में बिठाकर रखती है। समय आने पर ये चिकित्सक गांवों में नहीं जाते हैं। अगर जाते हैं तो बहुत धन लेते हैं। जिसके कारण कृषक अपने पशुओं को स्वस्थ नहीं रख पाते है। अत: किसानों को सुमृद्ध बनाने के लिए योग्य चिकित्सकों को गाँवों में भेजना चाहिए। गाँव में कृषक के लिए दुग्ध व घृत बनाने हेतु उद्योग स्थापित किये जायें, जिससे कृषक दुग्ध व घृत के बढ़ते मूल्य का लाभ ले सकें।

(९.) शीघ्र भुगतान- किसानों से क्रय किए गए गन्नें आदि का भुगतान शीघ्र करना चाहिए। किसान के पास जमा धन नही होता है। भुगतान विलम्ब से करने पर किसान को कर्ज में डूबना पडता है। जिससे उसकी स्थिति बिगड जाती है।

(१०.) उचित मूल्य निर्धारण- सरकार को समय से ही किसानों की उपज का उचित व अच्छा मूल्य घोषित करना चाहिए। अच्छा मूल्य समय पर घोषित होने पर किसनों में कृषि के प्रति नया उत्साह उत्पन्न होगा। लागत अधिक व मूल्य कम होने पर किसान निराश हो जाते है।

उपर्युक्त किसान की समस्याओं का समाधान अगर सरकार की ओर से हो जाए, तो किसान सुमृद्ध खुशहाल बनेगा। गांव से शहर की ओर युवाओं का पलायन रुक जायेगा। गांव भी शहर जैसी स्थिति में दीखने लगेंगे। हमारी भारतीय अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होगी। किसान आत्महत्या करने से बचेंगे। किसान के परिवार में बच्चों में शिक्षा के प्रति रुचि का विकास होगा। अगर वास्तव में सरकार कृषि व किसानों को सुदृढ़ करना चाहती हैं तो ये सभी कार्य सरकार को करने चाहिए। यह संक्षेप से कुछ लिखा गया है। इससे भी आगे बढकर विचार करके किसानों को समृद्ध किया जा सकता है।

सहायक आचार्य
श्री भगवानदास आदर्श संस्कृत
महाविद्यालय, शंकर आश्रम चौक, हरिद्वार
मो.-०९९९७३०४८८६

कृषिविचार : मन्थन से अमृततत्त्व

❑ **शिवदेव आर्य.....✍**

किसी भी कार्य की दिशा में बढाया गया प्रथम कदम सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि प्रथम कदम मार्ग को प्रशस्त करता है।

समय तथा हमारा जीवन हमसे अपेक्षा करता है कि हम स्वयं का ध्यान रखें तथा ध्यान हम तभी रख सकते हैं जब हमारा आहार शुद्ध हो एवं शुद्ध आहार के लिए कृषि (खेती) पर ध्यान अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

भारतवर्ष में प्रायः खेती मानसून पर आधारित रहती है। यदि मानसून अच्छा रहा तो कृषि अच्छी रहेगी और यदि कृषि अच्छी रही तो बाजार की स्थिति भी मजबूत रहेगी।

जैविक कृषि की चर्चा को करने से पूर्व जान लें कि जैविक कृषि क्या है? जैविक कृषि वह सदाबहार कृषि पद्धति है, जो यथार्थ में पर्यावरण की शुद्धता को यथावत् स्थापित रखती है। मिट्टी की जल धारण क्षमता को बढ़ाती है, इसमें रसायनों का उपयोग बिल्कुल नहीं होता और कम लागत में गुणवत्तापूर्ण उत्पादन होता है। इस पद्धति में रासायनिक उर्वरकों, रासायनिक कीटनाशकों तथा खरपतवारनाशकों आदि के स्थान पर गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद, बैक्टीरिया कल्चर, जैविक खाद, जैविक कीटनाशकों जैसे साधनों से खेती की जाती है।

भारतीय भूविज्ञों के मतानुसार मिट्टी में असंख्य जीव निवास करते हैं, जो एक-दूसरे के पूरक होते हैं तथा पौधों के विकास के लिए पोषक तत्व भी उपलब्ध कराते हैं। जैविक कृषि का मूल उद्देश्य तेजी से बढ़ती जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए मृदा संरक्षण की प्रक्रियाएँ अपनाकर जैविक विधियों से कीट व रोगों पर नियन्त्रण रखते हुए दलहनी फसलों के उत्पादन को बढ़ाना है, ताकि लोगों को सुरक्षित स्वाध्यवर्धक कृषि उत्पाद प्राप्त हो सकें और कृषि प्रक्रिया के अन्तर्गत अत्यल्प प्राकृतिक संसाधनों व पर्यावरण की क्षति हो सकें।

जैविक कृषि समय की सबसे बड़ी जरूरत है। इन दिनों लोग रासायनिक खाद पर ही पूरी तरह से निर्भर हैं। यूरोप, जापान व अमेरिका जैसे देशों में बच्चों में कैंसर के अधिक मामले आने पर अब पाँच साल तक के बच्चों के लिए जैविक खाद्य पदार्थ अनिवार्य कर दिए गए हैं। जबकि भारत में ऐसा नहीं है। लोग रासायनिक खाद पर ही पूरी तरह से निर्भर हैं। इन सब की रोकथाम जैविक कृषि से ही सम्भव है। इसके लिए जरूरी है कि किसान के पास जैविक बीज और जैविक खाद की उपलब्धता हो। अभी भी लोगों का मानना है कि जैविक खेती के लिए बड़े पैमाने पर जमीन की आवश्यकता होती है। जबकि वास्तविकता यह है कि यह खेती छोटे से भूभाग पर भी की जा सकती है। किसान चाहें तो शुरुआत में अपने परिवार के लिए जैविक फसल उगा सकते हैं। बाद में इसे बड़ा आकार या व्यावसायिक रूप दे सकते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में गेहूँ, धान, सब्जी, मक्का, अरहर आदि की खेती की जा सकती है। जैविक खेती की सबसे बड़ी शर्त यह है कि इसमें रासायनिक खाद का नाममात्र भी प्रयोग नहीं होता। खाद के नाम पर इसमें नीम व सरसों की खली, नीम का तेल, वर्मी कम्पोस्ट को प्रयोग में लाया जाता है। जैविक खाद के लिए ढैंचा सबसे अच्छा विकल्प होता है। ढैंचा मई-जून में बोया जाता है तथा करीब ३०-४० दिन के बाद इसे पलट दिया जाता है। इसके बाद धान आदि की रोपाई वैदिक कृषि के उत्पादन में जैविक खाद का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है।

इसलिए जानने का यत्न करते हैं कि जैविक खाद को किस प्रकार से तैयार किया जाता है। भारत में पहले से ही गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद और जैविक खाद का प्रयोग विभिन्न फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए किया जाता रहा है। जैविक खाद बनाने के लिए पौधों के अवशेष, गोबर, जानवरों का बचा हुआ चारा आदि सभी वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए। जैविक खाद बनाने के लिए १० फुट लम्बा, ४ फुट चौड़ा व ३ फुट गहरा गढ्डा करना चाहिए। सारे जैविक पदार्थों को अच्छी प्रकार से मिलाकर इस गढ्डे में डालकर उपयुक्त पानी से भर दें। गढ्डे में पदार्थों को ३० दिन के बाद अच्छी तरह से पलटना चाहिए और उचित मात्रा में नमी रखनी चाहिए यदि नमी न हो तो उचित मात्रा में पानी का पुनः प्रयोग करना चाहिए। पलटने की क्रिया से जैविक पदार्थ जल्दी से सड़ जाते हैं और खाद में पोषक तत्वों का मात्रा बढ़ जाती है। इस प्रकार से खाद तीन महीनें में बन कर तैयार हो जाती है।

जैविक कृषि से किसानों का भविष्य उज्ज्वल है, लेकिन इसके लिए उनको लीक से हटकर काम करना होगा। जैविक कृषि के दौरान शुरुआत में उत्पादन में कुछ गिरावट और खेती को सुव्यवस्थित लाने में कुछ समय जरूर लगेगा। इसके लिए किसानों को मानसिक रूप से तैयार रहना होगा, क्योंकि हमारे लिए वेदव्यास ने आशा का संदेश '**आशा बलवती राजन्..**' महाभारत में दिया है।

जैविक कृषि से उत्पन्न फसल में खनिज तत्वों की मात्रा अधिक होती है, ये स्वास्थ्य के लिए बहुत ही उपयोगी तथा रोगप्रतिरोधी क्षमता बढ़ाने वाली है। रासायनिक खाद व कीटनाशकों का उपयोग न सिर्फ भूमि अथवा हमारे स्वास्थ्य को पूर्णतया समाप्त कर देता है।

ऐसा नहीं है कि संसार में जैविक कृषि नहीं हो रही है। भारत में वर्ष २००३-०४ में जैविक खेती को लेकर गम्भीरता दिखायी गई और ४२,००० हेक्टेयर क्षेत्र से जैविक खेती की शुरुआत हुई। मार्च २०१० तक यह बढ़कर १० लाख ८० हजार हेक्टेयर हो गयी है। मार्च २०१५ तक ग्राफ काफी बड़ा है। भारत में जैविक निर्यातों में अनाज, दालें, शहद, चाय, मसाले, तिलहन, फल, सब्जियाँ, कपास के तन्तु आदि भी शामिल हैं।

हमारे युवा भी जैविक कृषि में बढ़-चढ़ कर भाग ले रहें हैं। बिहार, उत्तरप्रदेश, झारखण्ड और पंजाब के कई प्रतिशत युवा उच्च शिक्षा को करने के पश्चात् जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए आगे आ रहें हैं। ये खुद तो जैविक खेती कर ही रहें हैं। साथ ही आसपास के गाँवों में जाकर युवाओं को जैविक कृषि करने के प्रकार व लाभ बता रहें हैं। युवा संगठन बनाकर काम कर रहें है। जैविक कृषि को वो कृषि तक ही सीमित नहीं रहने देना चाहते वे जैविक कृषि का व्यापारिक स्तर भी तैयार कर रहें हैं। गाँव के जो लोग काम की तलाश में इधर-उधर जा रहें हैं, उनको जैविक खाद आदि सामग्री के कार्य में लगाया जा रहा है।

इस जैविक कृषि को सरकार की ओर से भी पूर्ण समर्थन मिल रहा है। कृषि मन्त्रालय में जैविक कृषि को बढ़ावा देने के लिए राष्टीय जैविक खेती परियोजना, राष्टीय बागवानी मिशन, पूर्वोत्तर के लिए प्रौद्योगिकी मिशन और राष्ट्रीय कृषि विकास योजना संचालित कर रहा है।

राष्ट्रीय जैविक खेती परियोजना, गाजियाबाद स्थित राष्ट्रीय जैविक खेती केन्द्र तथा बेंगलुरू, भुवनेश्वर, हिसार, इंफाल, जबलपुर और नागपुर स्थित छह क्षेत्रीय केन्द्रों के माध्यम से अक्टूवर २००४ में शुरुआत की गई थी अब देश में अनेक स्थलों पर ऐसे क्षेत्रीय केन्द्र खुल गयें हैं, जहाँ जैविक कृषि को बढ़ावा देने के लिए कार्य किया जाता है।

प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी जी ने १ अप्रैल २०१६ से कृषि फलस बीमा योजना शुरु की है। ये सब काम कृषि कार्य को बढ़ावा देने के लिए ही किया जा रहा है। देशभर में जैविक कृषि का उत्साहजनक वातावरण बनता

जा रहा है, जिसके कुछ रोचक आंकड़े आपके सामने हैं-

४५ लाख हेक्टर में जैविक कृषि से उत्पादन किया जा रहा है।

६५ प्रतिशत लोग खेती से जुड़कर अपनी आजीविका चला रहें हैं।

८० प्रतिशत लागत कम लगती है रासायनिक कृषि की अपेक्षा।

४० प्रतिशत से ज्यादा एंटी ऑक्सीडेंट पाए जाते हैं जैविक कृषि में।

५० प्रतिशत उत्पादन भारत में होता है पूरी दुनिया के जैविक कपास का।

८९ कृषि परियोजनाओं के क्रियान्वयन को शीघ्रता से पूरा करने का प्रवधान सरकार कर रही है।

ऐसे उत्साह जनक वातावरण को ध्यान में रखकर हम सभी को जैविक कृषि की शुरुआत करनी चाहिए, जिससे स्वयं तथा समाज का कल्याण हो सकेगा।

-गुरुकुल पौन्धा, देहरादून
मो.-८८१०००५०९६

प्रश्न—मनुष्य की सृष्टि प्रथम हुई, वा पृथिवी आदि की ?

उत्तर—पृथिवी आदि की। क्योंकि पृथिव्यादि के विना मनुष्य की स्थिति और पालन नहीं हो सकता।

प्रश्न—सृष्टि की आदि में एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे, वा क्या ?

उत्तर—अनेक। क्योंकि जिन जीवों के कर्म ऐश्वरी सृष्टि में उत्पन्न होने के थे, उनका जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देता है। क्योंकि—**'मनुष्या ऋषयश्च ये'**[तु.—यजुः अ. ३१, मुंडकोप. ९, मुं. २।७।१] **'ततो मनुष्या अजायन्त'** —यह यजुर्वेद [के शत. ब्रा. कां. १४।

इस प्रमाण से यही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुए। और सृष्टि में देखने से भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक मा-बाप के सन्तान हैं।

प्रश्न—आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्य, युवा वा वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी, अथवा तीनों में ?

उत्तर—युवावस्था में। क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता, तो उनके पालन के लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते। जो वृद्धावस्था में बनाता, तो मैथुनी-सृष्टि न होती। इसलिये युवावस्था में सृष्टि की है।

प्रश्न—कभी सृष्टि का प्रारम्भ है, वा नहीं ?

उत्तर—नहीं। जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन तथा दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन बराबर चला आता है, इसी प्रकार सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि तथा सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के आगे सृष्टि अनादिकाल से चक्र चला आता है। इसकी आदि वा अन्त नहीं। किन्तु जैसे दिन वा रात का आरम्भ और अन्त देखने में आता है, उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का आदि-अन्त होता रहता है क्योंकि जैसे परमात्मा, जीव, जगत् का कारण तीन स्वरूप से अनादि हैं, वैसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय प्रवाह से अनादि हैं। जैसे नदी का प्रवाह वैसा ही दीखता है, कभी सूख जाता, कभी नहीं दीखता, फिर बरसात में दीखता और उष्णकाल में नहीं दीखता, ऐसे व्यवहारों को प्रवाहरूप जानना चाहिये। जैसे परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं, वैसे ही उसके जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करना भी अनादि हैं। जैसे कभी ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का आरम्भ और अन्त नहीं, इसी प्रकार उसके कर्तव्य-कर्मों का भी आरम्भ और अन्त नहीं।

- सत्यार्थ-प्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती

वैदिक कृषि-विज्ञान का स्वरूप

❑ डॉ. वेदव्रत.....✍

अनादि निधना भगवती श्रुति अनादिकाल से ही प्राणिमात्र के लिए परम उपकारक हैं। मायाजनित जगत् में वेद मानव को कर्त्तव्य मार्ग का निदर्शन कराते हैं। इसीलिए आचार्य मनु ने वेदों को देव, पितर और मनुष्यों का नेत्र कहा है।[१] वेदितव्य सकल ज्ञान वेद से ही विदित होता है[२] तथा वेदार्थ को जानकर व्यक्ति अनन्त सुखों को प्राप्त करता है-

तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।

मानव जीवन में वेद के महनीय महत्त्व के कारण ही आचार्यों ने वेदाध्ययन को मानव के अनिवार्य कर्तव्य के रूप में निरूपित किया-

स्वाध्यायोऽध्येतव्यः। ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति।

परब्रह्म के निःश्वासभूत वेद सकल ज्ञान-विज्ञान के आगार हैं। आचार्य मनु ने वेदों को सर्वविध विद्याओं से परिपूर्ण बताया है।[३] आचार्य दयानन्द के अनुसार 'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। विविध विद्याओं के साथ-साथ ज्ञाननिधि वेद में कृषि विज्ञान का भी विशदतया विवेचन प्राप्त होता है। वेद के साथ-साथ वेदेतर साहित्य नारदस्मृति, बृहस्पतिस्मृति, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, अग्निपुराण, कृषि पाराशर एवं वृक्षायुर्वेद में भी कृषि एवं बागवानी का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है।[४] वृद्ध हारीतस्मृति के अनुसार कृषिकर्म सभी वर्णों का सामान्यकर्म है-

कृषिस्तु सर्ववर्णानां सामान्यो धर्म उच्यते।

-वृद्धहारीतस्मृति

बौधायन स्मृति के अनुसार समर्थ ब्राह्मण को वेदाध्ययन के साथ-साथ कृषिकर्म ही करना चाहिए तथा यदि दोनों कार्य करने में समर्थ न हो तो उसे कृषिकर्म छोड़ देना चाहिए-

वेदः कृषिविनाशाय कृषिर्वेदविनाशिनी।
शक्तिमानुभयं कुर्यादशक्तस्तु कृषिं त्यजेत्॥

-बौधायनस्मृति १/५/१०१

मानव जीवन में कृषि का नितान्त महत्त्व है। सम्पत्ति और मेधा को देने वाली कृषि ही मानव जीवन का आधार है-

कृषिर्धन्वा कृषिर्मेध्या जन्तूनां जीवनं कृषिः।

कृषि-पाराशर, श्लोक ८

कृषि से समुत्पन्न अन्न ही सकल प्राणियों को शक्ति और सामर्थ्य प्रदान करता है। संसार के सकलभूत अन्न से ही समुद्भूत होते हैं तथा अन्न से ही जीवन धारण करते हैं।[५] अन्न समस्त जीवधारियों का जीवन है।[६] मनुष्य की आवश्यकताओं में अन्न अन्यतम है।[४] अन्न के महत्त्व को जानकर ही शास्त्रकारों ने अन्न को ब्रह्म कहा है।

भारतदेश एवं उसकी संस्कृति कृषि प्रधान है। किसी समय यहाँ की जलवायु, वातावरण एवं भूमि कृषि के लिए अत्यधिक अनुकूल थी। वर्तमान में अन्न की प्रचुर समुपलब्धता के अभाव में संसार के करोड़ों मानव कुपोषण का शिकार होकर येन-केन प्रकारेण अपना जीवन यापन कर रहे हैं। इसका प्रमुख कारण कृषि के प्रति लोगों की अनवरत बढ रही उदासीनता है। समुचित संसाधनों का अभाव तथा खेती पर व्यय होने वाले धन की अपेक्षा लाभ का कम होना इस उदासीनता के प्रमुख कारण है। किन्तु प्राचीनकाल में स्थिति इस प्रकार नहीं थी। उस काल में कृषि आजीविका के साथ-साथ धनागम का भी प्रमुख साधन थी। यही कारण है कि वैदिक ऋषि आदेश देता है कि कृषि से प्राप्त धन से प्रमुदित होते हुए संसार में रमण करो-

कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः।

-ऋग्० १०/३४/१३

वैदिक ऋषि भलीभाँति कृषि के महत्त्व से परिचित थे। सम्भवतः यही कारण है कि उन्होंने

कृषिविषयक क्षेत्रपति नामक देवता की सत्ता को स्वीकार किया तथा उससे शस्य के विधिवत् सम्पन्न होने की प्रार्थना की–

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानुयच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां सताम्॥
शुनं नु फाला विकृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा
अभियन्तु वाहैः। शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः
शुनाशीरा शुनमस्मासु यत्र॥ ऋग्० ४/९७/६–७

अर्थात् हल का नुकीला अग्रभाग अच्छी प्रकार से खेत को जोते। हल चलाने वाले किसान सरलता से बैलों के द्वारा भूमि का कर्षण करें। मेघ, मधु और पानी हमें तथा खेत को सुख प्रदान करने वाले हों। शुनाशीर कृषक लोगों को अत्यधिक प्रसन्नता प्रदान करने वाले हों। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के अनुसार कवि तथा धीर मनुष्य कृषि को अपनाते हैं।[7] कृषि–कार्य में निपुण व्यक्ति को वेद में कृष्टराधि विशेषण प्राप्त होता है और उन्हें उपजीवनीय माना गया है।[८] अथर्ववेद में कृषिविशेषज्ञ को अन्नविद् कहा गया है। इन अन्नविदों ने ही सर्वप्रथम कृषि के नियम बनाये।[९] अथर्ववेद के इसी प्रसंग में खेती करने वाले किसान को कार्षीगण नाम से सम्बोधित किया गया है। जीवन में कृषि के महत्त्व को जानने वाले वैदिक ऋषियों ने राजा के प्रमुख कर्त्तव्यों में कृषि को उन्नत करना प्रमुखतम कर्त्तव्य माना है।[१०]

शतपथब्राह्मण में कृषि की समस्त क्रियाओं को कर्षण, वपन, लवन एवं मर्दन इन चार भागों में विभक्त किया गया है।[११] वेदों में हल खींचने वाले बैलों की संख्या छः, आठ, बारह या चौबीस तक प्रतिपादित की गयी है।[१२] किस ऋतु में किस अन्न की खेती उपयुक्त रहती है, इसका वर्णन भी वेदों में प्राप्त होता है। वेदों में भिन्न–भिन्न ऋतुओं में भिन्न–भिन्न बीजों के वपन का विशिष्ट वर्णन प्राप्त होता है।[१३] तैत्तिरीय संहिता के अनुसार फसलों के चार प्रकार हैं– ग्रीष्म ऋतु में पकने वाली जौ, गेहूँ आदि फसलें, वर्षा ऋतु में पकने वाली फसलें, शरद् ऋतु में पकने वाली धान आदि तथा हेमन्त और शिशिर में पकने वाली तिल, उदड, अरहर आदि फसलें।[१४] वर्तमानकाल की भाँति धान के वर्षा ऋतु में बोने तथा शरद् ऋतु में पकने का तथा तिल और दाल के शरद् ऋतु में बोने का वर्णन वेद में प्राप्त होता है।

लोक में कृषि सम्बद्ध मिट्टी के अनेक प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं। वैदिक साहित्य में भी मिट्टी के विविध भेदों का वर्णन प्राप्त होता है। यथा– सिकता[१५] (बालूवाली), उर्वर्य[१६] (उपजाऊ), किंशिल[१७] (छोटे कंकड वाली) इरिण्य[१८] (अच्छी कृषि के लिए अनुपयोगी), अश्मन्वती[१९] (पथरीली), मृदु[२०] (चिकनी) एवं रजस्[२१] (धूल वाली)। अनुपजाऊ भूमि के लिए वेदों में आर्त्तना कहा गया है। वेद का ऋषि आर्त्तना भूमि को खाद डालकर उर्वरा बनाने के लिए परामर्श देता है।[२२]

खेत में बोये जाने वाले विविध प्रकार के अन्न भी वेद में वर्णित हैं। तैत्तिरीय संहिता में तीन प्रकार की व्रीहि (धान) का वर्णन प्राप्त होता है– १. आशु व्रीहि, २. कृष्णा व्रीहि तथा ३. महाव्रीहि।[२३] आशु व्रीहि सम्भवतः वर्तमान में साठ दिन में पक जाने वाले साठी धान को परिलक्षित करता है। महाव्रीहि शब्द बासमती चावल के लिए प्रयुक्त हुआ है। व्रीहि के अतिरिक्त गवीधुक्[२४] (जंगली गेहूँ), आम्ब[२५], उपवाक[२६] (इन्द्र जौ) अणु (छोटा चावल), श्यामाक (साँवा), नीवार (कोदों या तिन्नी धान), गोधूम (गेहूँ) तथा मसूर आदि का भी वर्णन प्राप्त होता है। परवर्त्ती वैदिक साहित्य में यव, तिल, मूँग, माष, खल्व, नीवार, प्रियंगु आदि अन्य अनेक अन्नों का भी वर्णन प्राप्त होता है।[27] ईख[२८] और तिल[२९] की खेती की भी चर्चा वेदों में है। परवर्ती साहित्य में तिल की खेती की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है।[३०]

कृषिसम्बद्ध उपकरणों की चर्चा भी वेदों में यत्र–तत्र प्राप्त होती है। वेद में खेती करने वाले कृषक के लिए कीनाश शब्द प्रयुक्त है।[३१] हल के लिए वेद में सीर[३२] तथा लाङ्गल[३३] शब्द का प्रयोग

प्राप्त होता है। इसी प्रकार बैलों को हाँकने वाले चाबुक के लिए अष्ट्रा[३४], हल की मूठ के लिए त्सरु[३५] हल के नीचे लगने वाली लोहे की नुकीली पत्ती के लिए फाल[३६], फाल से खेत में बनने वाली पंक्ति (खूड) के लिए सीता[37], बैल को जुए के साथ बाँधने वाली रस्सी के लिए वरत्रा[३८] तथा अनुपजाऊ भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए प्रयुक्त खाद के लिए करीष शब्द वेद में दृष्टिगोचर होता है।[३९] पके हुए अन्न को जिससे काटते थे, उसके लिए वेद में दात्र[४०] एवं सृणी[४१] शब्द का प्रयोग हुआ है। जिस पात्र से अन्न को नापते थे, उसके लिए वेदों में ऊर्दर शब्द प्रयुक्त हुआ है।[४२] अन्न को रखने वाला स्थान स्थिवि कहलाता है।[४३]

वर्तमानकाल की भाँति प्राचीनकाल में सिंचाई के इतने संसाधन समुपलब्ध नहीं थे। सर्वविध कृषि नहर[४४], नदी[४५], तालाब[४६], कूएँ[47] एवं वर्षा पर आधारित थी। वेद में सिंचाई के लिए दो प्रकार के साधनों का वर्णन प्राप्त होता है। कूपादि अथवा नहरों से सिंचाई के लिए प्राप्त जल को खनित्रिमा तथा नदियों से प्राप्त जल को स्वयंजा कहा गया है-

या आपो दिव्या उत या स्रवन्ति। खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः। ऋग्० १०/१०५/१७; ७/४९/२

वर्तमान में खेती के निमित्त से भूमि का अत्यन्त दोहन किया जा रहा है। एक वर्ष में अनेक प्रकार के खेती की जा रही है। इसके परिणामस्वरूप भूमि की उर्वरकता प्रभावित हो रही है। भूजल का अत्यन्त उपयोग भी चिन्ताजनक है। अधिक से अधिक फसल प्राप्त करने के लिए किया जाने वाला भूमि का अत्यन्त दोहन पर्यावरण विनाश में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। सम्भवत क्रान्तदर्शी वैदिक ऋषि अत्यधिक खेती के निमित्त भविष्य में होने वाले भूमि के दोहन को जानते थे इसीलिए उन्होंने वर्ष में दो बार अनाज बोने का दिशानिर्देश दिया है।[४८] खेती को हानि पहुँचाने वाले कीटों से खेती को बचाने की विकट समस्या यदा कदा किसानों के सामने समुपस्थित हो जाती है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, हिमपात तथा कीटपतंगों से यदा कदा कृषि का विनाश हो जाता है। इन कीटनाशक तत्त्वों की परिचर्चा वेद में समुपलब्ध होती है। अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि[४९], हिमपात[५०], चूहे[५१], अन्न को खा जाने वाले कीडे (उपक्वस)[५२], अन्न को चाट जाने वाले कीडे (व्यदवर)[५३], मटची[५४] एवं जलचर पक्षियों से कृषि की सुरक्षा करने का वर्णन प्राप्त होता है। शस्य को कीड़ों व टिड्डी आदि से बचाने के लिए शोर करने या जोर-जोर से बोलने का प्रावधान भी वेदमन्त्रों में प्रतिपादित है। अथर्ववेद में शस्य को हानि पहुँचाने वाले कीटों के जभ्य, पतंग एवं उपवक्स आदि नाम प्राप्त होते हैं। टिड्डियों के लिए मटची शब्द का प्रयोग हुआ है।[५५]

वर्तमान समय में खेती में अनेकविध कीटनाशक ओषधियों का अत्यधिक प्रयोग हो रहा है। इन कीटनाशक ओषधियों का अत्यधिक प्रयोग कैंसर आदि अनेकविध व्याधियों को उत्पन्न करता है। इसीलिए वेद का ऋषि आदेश देता है कि हम सुशस्य को उत्पन्न करें, हम रोगकारक विषयुक्त शस्य को उत्पन्न न करें-

सुशस्या कृषिस्कृधि। यजु० ४/१०

उत्तम शस्य पौष्टिक एवं स्वास्थ्यवर्धक होता है। यज्ञ न केवल पर्यावरण को शुद्ध एवं संरक्षित करता है अपितु उत्तमकृषि के लिए भी परम उपकारक है। वैदिक ऋषि यज्ञ से शस्य को पौष्टिक एवं संरक्षित करने की कामना करता है-

कृषिश्च मे यज्ञेन कल्पताम्। यजु० १८/९

अन्नं च मे यज्ञेन कल्पताम्।

-यजु० १८/१०

यज्ञीय धूम एवं भस्म अनेक प्रकार के कृषिविनाशक कीटों का विनाशकर खेत की मिट्टी, शस्य, जल एवं पर्यावरण में गुणात्मक परिवर्तन करने में समर्थ है। क्योंकि अग्नि में हानिकारक कृमियों को विनष्ट करने का क्षमता होती है-**अग्निर्वै ज्योतिः**

रक्षोहा। -शत०ब्रा० ४/१/३/४, **अग्निर्वै रक्षसामपहन्ता।** -शत०ब्रा० १/२/१/६

आधुनिककाल में अनवरत अबाधगति से जनसंख्या वृद्धि हो रही है। कृषियोग्य भूमि एवं समुचित संसाधनों का शनैःशनैः ह्रास होता जा रहा है। इसके परिणामस्वरूप समुचित अनुपात में खाद्यान्न समुलब्ध नहीं हो पा रहा है। कृषकजनों की आर्थिक विपन्नता भी विश्वविश्रुत है।

उपर्युक्त सभी समस्याओं का समाधान कृषि के द्वारा सम्भव है। वैदिक ऋषि कृषिकर्म को उन्नत करना राजा का प्रमुखतम कर्तव्य मानता है।[५६] वैदिक ऋषि के आदेश को ध्यान में रखते हुए वर्तमानकालीन शासकों को भी कृषि की समुन्नति को अपना मुख्य ध्येय मानना चाहिए। शासकवर्ग को कृषियोग्य भूमि का संरक्षण करना चाहिए। किसानों को खेती के लिए अनुकूल परिस्थिति एवं समुचित संसाधन समुपलब्ध कराने चाहिए। कृषकों की आय के संवर्द्धन के लिए वेतन आयोग के समान कृषि आयोग का भी गठन करना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वेदवर्णित कृषिविज्ञान का स्वरूप अत्यन्त विकसित एवं समुन्नत है। वर्तमान समय मे समस्याकुल कृषिक्षेत्र के समुन्नयन के लिए वैदिक कृषिविज्ञान के समुचित क्रियान्वयन की आवश्यकता है। ऐसा होने पर ही समृद्ध एवं स्वस्थ समाज का निर्माण हो सकता है-**नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।**

-सहायकाचार्य, संस्कृत विभाग
एस0वी0पी0जी0 कॉलेज, लोहाघाट

सन्दर्भ-सूचीः-

१. देवपितृमनुष्याणां वेदाश्चक्षुः सनातनम्।
२. सर्वं वेदात् प्रसिध्यति।
३. सर्वज्ञानमयो हि सः।
४. A Concise History of Science in India- PP ३५२.३५८
५. अन्नाद् भवन्ति भूतानि।
६. ऋग्वेद ४/३३/११
७. ऋग् १०/१०१/४
८. अथर्व० ८/१०/२४
९. अथर्व० ६/११६/१
१०. यजु० ९/२२
१२. शत०ब्रा० १/६/१/३
१३. अथर्व० ६/११/१; ६/९०/१; तै०सं० ५/२/५/२
१४. कौषी०ब्रा० २१/३
१५. तै०सं० ७/२/१०/२
१६. यजु० ९/२२
१७. यजु० ९/२२
१८. यजु० ९/२२
१९. यजु० ९/२२
२०. यजु० ९/२२
२१. यजु० १८/१३
२२. यजु० १६/ ४५
२३. अथर्व० ३/१४/३
२४. तै०सं० १/८/१०/१
२५. अष्टा० ६/२/३८
२६. शत०ब्रा० ५/१/७/३
२७. यजु० १९/२२
२८. वा०सं० १८/१२
२९. अथर्व० १/१५/५
३०. अथर्व० १२/२/५४
३१. छान्दोग्य० ३/१४/३
३२. ऋग् ४/५७/८
३३. ऋग्वेद १०/५/८
३४. ऋग्वेद १०/१०१/३,४
३५. ऋग् ४/५७/४ व १०/१०२/८
३६. अथर्व० ३/१७/३
३७. ऋग् ४/५७/८
३८. ऋग् ४/५७/६७
३९. अथर्व० ४/५७/४
४०. अथर्व० १९/३१/३
४१. ऋग्० ८/७८/१०
४२. ऋग्० १/५८/४१
४३. ऋग्० २/१४/११
४४. ऋग्० १०/६८/३
४५. अथर्व० २०/१७/२
४६. अथर्व० १/४/३
४७. अथर्व० १/६/४
४८. अथर्व० १/६/४; ऋग्० १०/१०१/५-७
४९. तै०सं० ७/२/१०/२
५०. अथर्व० ७/११/१
५१. अथर्व० ७/१८/२
५२. अथर्व० ६/५०/१
५३. अथर्व० ६/५०/३
५४. छान्दोग्योपनिषद् १/१०/१
५५. ऋग्० १०/६८/१
५६. अथर्व० ३/१७/९; मटची हतेषु कुरुषु।
५७. यजु० ९/२२

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढना-पढाना और सुनना-सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है।

सृष्टि का आरम्भ और कृषि विज्ञान

❑ **मनमोहन कुमार आर्य.....**

ज्ञान और विज्ञान परस्पर पूरक शब्द हैं। वस्तुओं का साधारण ज्ञान सामान्य ज्ञान के अन्तर्गत आता है और उनका विशेष ज्ञान विज्ञान कहलता है। कृषि का तात्पर्य मनुष्यों के आहार के पदार्थो यथा फल, वनस्पतियाँ व अन्न आदि का अच्छा व गुणवत्तायुक्त प्रचुर मात्रा में उत्पादन करने को कह सकते हैं। सृष्टि के आरम्भ मे जब प्रथम मनुष्यों अर्थात् स्त्री व पुरुषों का जन्म हुआ होगा तो उन्हें श्वांस के लिए वायु, पिपासा की शान्ति के लिए शुद्ध जल व क्षुधा निवृत्ति के लिए भोजन की आवश्यकता पड़ी होगी। हम वेदादि ग्रन्थों के अध्ययन से यह समझ पायें हैं कि सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य युवावस्था में उत्पन्न हुए थे। इसका कारण यह है कि यदि वह बच्चे होते तो उनका पालन–पोषण करने के लिए माता–पिता की आवश्यकता होती जो कि आरम्भ में नहीं थी और यदि वह वृद्ध उत्पन्न होते तो उनसे सन्तानों आदि के न होने से सृष्टि का क्रम आगे नहीं चल सकता था। अतः यह मानना होगा और यही सत्य है कि सृष्टि क आरम्भ में मनुष्य युवावस्था में पृथिवी माता के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। दूसरा प्रश्न यह है कि पृथिवी की आरम्भ अवस्था कैसी थी और सृष्टि कहाँ उत्पन्न हुई थी। इसका उत्तर यह मिलता है कि मानवोत्पत्ति के समय पृथिवी पूर्णतया निर्मित होकर सामान्य स्थिति में आ चुकी थी। इस पर वायु सर्वत्र बह रही थी, शुद्ध जल भी यत्र–तत्र वा स्थान–स्थान पर नदियों, नहरो व जल स्रोतों में उपलब्ध था। मनुष्यों के निकट ही फलों के वृक्ष थे जिनमें नाना प्रकार के फल लगे हुए थे। आस पास गौवें भी थी जो दुग्ध देने वाली थी। मनुष्यों के उत्पत्ति स्थान तिब्बत वा त्रिविष्टिप के पास की समतल भूमि पर खाद्य अन्न व वनस्पतियां भी लहलहा रहीं थी। सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा को चार वेदों का ज्ञान ईश्वर से मिला। इस वेद ज्ञान को ईश्वर ने चार ऋषियों के अन्तःकरणों में स्थापित किया। वेदों की भाषा व वेदों के अर्थ का ज्ञान भी ऋषियों को प्राप्त हुए ज्ञान में सम्मिलित था। हम समझते हैं कि ऋषियों से इतर स्त्री व पुरुषों को भी आवश्यकतानुसार परस्पर व्यवहारार्थ भाषा ज्ञान सहित भोजन आदि करने कराने का ज्ञान भी सृष्टिकर्त्ता द्वारा अवश्य दिया गया होगा। जिस ईश्वर ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड वा सृष्टि सहित मनुष्य आदि सभी प्राणियों को बनाया वह आदिकालीन मनुष्यों को भोजन व परस्पर व्यवहार का ज्ञान उनके अन्तःकरण वा आत्मा में न दे, ऐसा मानना यथार्थ को झुठलाने के समान है। यह ज्ञान भी अवश्य ही दिया गया था। इस तथ्य को मानने पर सृष्टि के आदि काल संबंधी सारी गुत्थियाँ सुलझ जाती है। विधि वा कानून का सिद्धान्त है कि वह Benefit of doubt का लाभ पीड़ित व्यक्ति को देता है। सृष्टि के आरम्भ में जिन प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते उसका लाभ ईश्वर विषयक सिद्धान्त को मानकर ही करना होगा। संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद और वैदिक साहित्य इस विषय में प्रमाण हैं और इसका अन्य कोई विकल्प हमारे व किसी के पास नहीं है। संशय पालने व नाना कल्पनायें करने से कोई लाभ नहीं है। इस प्रकार ईश्वर से वेदों का ज्ञान, मनुष्यों को व्यवहार व भोजन आदि का ज्ञान तथा सृष्टि में उत्पन्न व उपलब्ध भोज्य व अन्य

पदार्थों का ज्ञान आरम्भ में ईश्वर वा वेदों से ही मिला था जिसमें कृषि का ज्ञान भी सम्मिलित है।

वेद मन्त्रों के अर्थ जानने की अपनी प्रक्रिया है। इसके लिए अध्येता को संस्कृत की आर्ष व्याकरण पद्धति से मन्त्र का पदच्छेद कर उसके सम्भावित अर्थों पर विचार करना पड़ता है। वर्तमान में निरुक्त एवं निघण्टु ग्रन्थ हैं जिससे पदों के अर्थ व उनके निर्वचन देख कर सार्थक अर्थ ग्रहण किये जाते हैं। अर्थ जानने के लिए बुद्धि की ऊहा शक्ति से चिन्तन, मनन कर व ध्यान द्वारा अर्थ में प्रवेश करना होता है। यदि पूर्व. ऋषियों व विद्वानों के लिए हुए अर्थ उपलब्ध हो तो उनका भी सहयोग लेकर यथार्थ अर्थ ग्रहण किया जाता है। ऐसा ही कुछ–कुछ वेदार्थ का प्रकार सृष्टि के आरम्भ व उसके बाद रहा है। वेद के अध्येता को यह भी निश्चय करना चाहिये कि वेद ईश्वरीय ज्ञान होने सहित सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। इसमें सृष्टि कम वा ज्ञान–विज्ञान विरुद्ध कोई बात नहीं है। यदि कहीं भ्रम हो तो उसे अपनी ऊहा व चिन्तन–मनन आदि से दूर करना चाहिये। विचार व चिन्तन करने पर यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने कुछ सौ या कुछ हजार की संख्या में स्त्री व पुरुषों को उत्पन्न किया होगा। उस ईश्वर ने चार ऋषियों को वेद ज्ञान दिया तथा इन चार ने अन्य ऋषि ब्रह्मा को इन चारों वेदों का ज्ञान दिया। परस्पर संवाद व संगति से पांचों ऋषि वेदों के पूर्ण ज्ञानी हो गये थे, यह अनुमान होता है। इन पांच ऋषियों ने शेष मनुष्यों को एकत्र कर भाषा व वेदों का आवश्यकतानुसार ज्ञान दिया होगा। इस कार्य के अतिरिक्त इन पाँच ऋषियों के पास अन्य कोई कार्य करने के लिए था ही नहीं। यह भी ज्ञात होता है कि यह पांचों ऋषि योगी थे। यह प्रातः व सायं ईश्वर का घंटों ध्यान व चिन्तन करते थे। इस अवस्था में इन्हें ईश्वर से अपने सभी प्रश्नों व शंकाओं के उत्तर मिल जाते थे। इससे कृषि कार्य सम्पादित करने में इन्हें किसी विशेष समस्या से झूझना नहीं पड़ा होगा। आज भी हम यही तो करते हैं कि हमें जिस बात का ज्ञान नहीं होता उसके लिए हम अन्य अनुभवी व वृद्धों की शरण में जाकर पूछताछ कर व निजी ध्यान–चिन्तन–मनन से समस्या का हल करते हैं। इसी प्रकार से कृषि विज्ञान विकसित हुआ और महाभारत काल तक उन्नति को प्राप्त होता गया।

आईये ! कुछ वेद प्रमाणों पर भी विचार करते हैं। यजुर्वेद २३/४६ में कहा गया है 'भूमिरावपनं महत्' अर्थात् (बीज) बोने का–कृषि का–महान् स्थान भूमि ही है। इससे हमारे प्रथम पीढ़ी के पूवर्जों को यह ज्ञान मिल गया कि अन्न आदि खाद्य पदार्थ प्राप्त करने के लिए उन्हें पृथिवी में बीज वपन करने होंगे। यजुर्वेद के मन्त्र ४/१० में कहा गया है **^l|lL;k% d"khLdf/k*** अर्थात् उत्तम अन्नों की कृषि करें एवं करावें। मंत्र में सुसस्या कहकर खराब अन्न उत्पन्न करने का निषेध किया गया है। खराब अन्न की उत्पत्ति का समाज के जीवन पर प्रतिकूल ही प्रभाव पड़ता है। 'अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः' कहकर बताया गया है कि अन्न प्राणियों का जीवन है अर्थात् प्राण है। प्राण ही जीवन एवं जीवन ही प्राण होता है। प्राण नहीं तो जीवन नहीं और जीवन नहीं तो प्राण नहीं। '**vUu% i.kL; 'kMfo'k*** अन्न हमारे प्राण का छब्बीसवां भाग बनता है, अतः यदि हम खराब–दूषित या मलिन अन्न का सेवन करेंगे तो उसका प्रभाव हमारे जीवन पर अनिवार्य रूप से खराब ही पड़ेगा। जिस प्रकार विषयुक्त अन्न के सेवन से शरीर विषाक्त हो जाता है और जीवन की हानि होती है उसी प्रकार दूषित अन्न के सेवन करने से समाज के व्यक्तियों के शरीर एवं मन के संस्कार भी दूषित हो जाते हैं। बुद्धि भी दूषित हो जाती है। अतः कृषि के कार्य को

उत्तम रीति से एवं सुसंस्कारपूर्वक करना चाहिए। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि वर्तमान समय में अधिकाधिक कृषि उत्पादन पर ही ध्यान दिया जाता है न कि अन्न की गुणवत्ता, पवित्रता, शुद्धता व विषमुक्तता पर जिसके बुरे परिणाम रोगों व अल्पायु के रूप में हमारे सामने हैं।

कृषि को अच्छी प्रकार करने के वेदों ने अनेक उपाय बतायें हैं वा मनुष्यों का मार्गदर्शन किया है। वेद के अनुसार कृषि कार्य में यज्ञ का उपयोग करना चाहिये। यजुर्वेद १८/६ में कहा है **^df'k'p e ;Ku dYiUrke*** अर्थात् कृषि के लिए भूमि को उपयोगी बनाते समय यज्ञ का प्रयोग करो। यज्ञ से भूमि कृषि कार्य में समर्थ व शक्तिशाली बनेगी। यज्ञ करने से भूमि की उत्पादन सामर्थ्य में वृद्धि होगी। कृषि कार्य में असमर्थ भूमि में यज्ञ करने से वह कृषि के लिए समर्थ होगी और कृषि भूमि में यज्ञ करने से उसकी उर्वरा शक्ति में वृद्धि होगी। यज्ञ से भूमि माता कृषि के लिए समर्थ बने, यह प्रार्थना यजुर्वेद १८/२२ मन्त्र 'पृथिवी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।' में की गई है। यज्ञ किए बिना पृथिवी को जीवन नहीं मिलेगा। यज्ञ करने से भूमि में विद्यमान तत्व एवं द्रव्य शक्ति सम्पन्न होते हैं। कृषि का वृष्टि वा वर्षा से गहरा सम्बन्ध है। यजुर्वेद १८/६ मन्त्र में कहा गया है **^of"V'p e ;Ku dYiUrke*** कृषि के लिए वर्षा जल की आवश्यकता है वह वर्षा जल भी यज्ञ के द्वारा समर्थ होना चाहिये। कृषि के लिए जो जल वृष्टि से प्राप्त हो वह यज्ञ से सुसंस्कृत हो और उसी वृष्टि जल से पूर्ण नदी, तालाब, कूवे, बावड़ी, झीलें भी हों जिससे वृक्ष, वनस्पतियों को सदा यज्ञ का जल प्राप्त होता रहे। प्रकृतिस्थ वृक्ष व वनस्पतियों को जो वायु प्राप्त हो वह भी यज्ञ द्वारा सुसंस्कृत हो। इस विषयक यजुर्वेद मन्त्र १८/१७ **^e#r'p e ;Ku dYiUrkeA*** अर्थात् वायु भी यज्ञ के द्वारा समर्थ हो। कृषि कार्यों से संबंधित यजुर्वेद का एक मन्त्र ६/२२ **^uek ek= i`fFkO;S uek ek= i`fFkO;k ----d';S Rok {kek; Rok j¸;S Rok iks'kk; Rok*** भी महत्वपूर्ण है। इसमें कहा गया है कि हे भूमि माता ! तुझे प्रणाम हो। हे भूमि माता ! तुझे शतशः वन्दन है। तुझे कृषि के लिए हम स्वीकार करते हैं। तुझे अपनी रक्षा के लिए ग्रहण करते हैं। तुझे ऐश्वर्य के लिए हम चाहते हैं और तुझे अपने पोषण के लिए माता के तुल्य वन्दनीय समझते हैं।

इस लेख में हमने जो विवरण प्रस्तुत किया है उसके आधार पर यह निश्चित है कि कृषि का आरम्भ सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा के मिले वेदों के ज्ञान वा उनकी शिक्षा से हुआ। वेदों के आधार पर सृष्टि के आरम्भ में हमारे पूर्वजों ने कृषि करके कृषि विषयक अपने ज्ञान व अनुभव को बढ़ाते हुए प्रगति करते रहे। महाभारतकाल के बाद आलस्य व प्रमाद के कारण वैदिक ज्ञान का सूर्य लुप्त हो गया जिससे सभी क्षेत्रों में अवनति हुई। कृषि क्षेत्र में भी ज्ञान की न्यूनता आई। आज सौभाग्य से सभी क्षेत्रों में ज्ञान की निरन्तर वृद्धि हो रही है अर्थात् विलुप्त ज्ञान का प्रकाश हो रहा है। आज भी कृषि के क्षेत्र में शुद्ध, पवित्र तथा दूषित अन्न के परस्पर भेद का हमारे कृषकों व देशवासियों को ज्ञान नहीं है। यज्ञ व कृषि का परस्पर गहरा सम्बन्ध है, इससे भी विश्व अनभिज्ञ है। यज्ञ व कृषि पर अनुसंधान कर वेद वर्णित विज्ञान को समझना आज के समय की मुख्य आवश्यकता है। यदि हम वेदानुसार यज्ञ का अनुष्ठान करते हुए कृषि करेंगे तो हमें शुद्ध अन्न प्राप्त होगा जिससे रोग न्यूनातिन्यून होंगे। कृषि कार्यों में वेदों से मार्गदर्शन लिया जाना चाहिये। हमने इस लेख में आर्यजगत् के विद्वान स्व. श्री वीरसेन वेदश्रमी जी के ग्रन्थ वैदिक सम्पदा की सामग्री का उपयोग किया है। उनका धन्यवाद कर इस लेख को विराम देते हैं। **&f‹^ pD[kokyk&„]ngjknu&„†ŠŒŒƒ**

कृषिविज्ञान में अथर्ववेद का महत्त्व

❑ कृष्णकान्त वैदिक.....✍

हमारा देश वैदिक काल से ही कृषि प्रधान रहा है। आर्यों की आर्थिक सम्पन्नता में कृषि की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आर्य लोग वर्षा की नियमितता बनाये रखने ओर नदियों के द्वारा भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए यज्ञादि के द्वारा प्रकृति के दूतों की प्रार्थना किया करते थे।

कृषि का इतिहास- मानव जीवन अन्न पर निर्भर करता है, जिसकी प्राप्ति कृषि से होती है। मनुष्य ने आदिम अवस्था में माता के दुग्ध का सेवन करने पश्चात् सर्वप्रथम फल व वनस्पतियों को भोजन के रूप में प्रयोग किया और आगे चलकर कर कृषि कार्य करना सीखा। चारों वेदों में कृषि का उल्लेख मिलता है परन्तु अथर्ववेद में कृषि के महत्त्व का पर्याप्त वर्णन मिलता है।[१] तैत्तिरीय ब्राह्मण में आजीविका के साधन को 'उप-जीवा'[२] और कृषि विशेषज्ञ नाम दिया गया है। अथर्ववेद के अनुसार कृषि प्रारम्भ करने वालों में राजा पृथुवैन्य का मुख्य स्थान है।

क्षेत्र और क्षेत्रपति : कृषक शब्द से किसान बना है। अथर्ववेद में किसान के लिए 'कार्षीवण' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इन्हें ही 'अन्नविद्' अर्थात् अन्न का विशेषज्ञ कहा गया है[३]। किसान को क्षेत्रपति भी कहा गया है, जिसका अर्थ है क्षेत्र का स्वामी[४]। अथर्ववेद से यह भी ज्ञात होता है कि इन्द्र या राजा खेत का स्वामी होता था और किसान खेत जोतने का कार्य करते थे [५]। अथर्ववेद से यह भी पता चलता है कि खेतों के बंटवारे में विवाद भी हो जाते थे। राजा इसमें जिसका पक्ष लेता था, उसकी विजय हो जाती थी।

कृषि-कर्म- अथर्ववेद में वर्णित कृषि-कर्म और वर्तमान मे कृषि सम्बन्धी प्रक्रिया में साम्यता पायी जाती है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार कृषि-कर्म के चार विभाजन किए गए हैं। १. कर्षण- खेत की जुताई करना, २. वपन- बीज बोना, ३. लवन- पके खेत को काटना और ४. मर्दन-मड़ाई करने के उपरान्त स्वच्छ अन्न को प्राप्त करना[६] ।

कृषि के भेद- कृषि दो प्रकार की होती है। १. वर्ष्य अर्थात् वर्षा पर निर्भर रहने वाली। २. अवर्ष्य अर्थात् वर्षा पर निर्भर न रहने वाली जिसमें नहर, कूप और तालाब आदि से प्राप्त पानी से भूमि की सिंचाई की जाती है।

मिट्टी के भेद- केवल अथर्ववेद में ही नहीं अपितु यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में मिट्टी के कुछ भेदों का वर्णन मिलता है। इनमें मिट्टियों के प्रकार हैं- १. मृद्, मृत्तिका अर्थात् चिकनी मिट्टी। २. रजस् भूमि अर्थात् सामान्य मिट्टी ३. इरिण्य अर्थात् ऊसर वाली खेती की अनुपयुक्त मिट्टी ४. उर्वरा अर्थात् उपजाऊ, खेती के लिए अनुकूल मिट्टी[७] ।

भूमि के भेद- कृषि योग्य भूमि को - कृष्य कहा गया है[८]। अथर्ववेद में ही नहीं अपितु यजुर्वेद और तत्तिरीय संहिता में भूमि के विभिन्न भेदों का उल्लेख मिलता है। मुख्य रूप से भूमि तीन प्रकार की होती हैं, १. उर्वरा अर्थात् उपजाऊ २. इरिण अर्थात् ऊपर और ३. शस्य अर्थात् चरागाह के योग्य[९] । खेती की दृष्टि से कृषि को दो भागों में बांटते हैं- १. कृष्टपच्य अर्थात् जुए के खेत में कृषि के द्वारा अन्न पैदा करना[८] । २. अकृष्टपच्य अर्थात् जहाँ अन्न बिना कृषि के होता है। इसमें जंगली फल-फूल आदि होते हैं। इस भूमि को भी तीन भागों में बांटा जाता है- १. ऊसर २. खिल्य या खिल अर्थात् जर भूमि और ४. अरण्य या जंगल। लवणयुक्त भूमि

मवेशियों के चारे के लिए उपयुक्त मानी जाती थी ओर उसे 'ऊष' कहा जाता था जो कालान्तर में ऊसर का पर्याय बन गई।

कृषि कार्य में प्रयुक्त उपकरण- अथर्ववेद में कृषि कार्य में काम आने वाले उपकरणों का भी उल्लेख किया गया है। ये उपकरण हैं- १. हल- हल के लिए लांगल और सीर शब्द का प्रयोग मिलता है[१०]। २. सीता या फाल- हल के अगले नुकीले भाग को सीता या फाल कहते हैं, जिसके लिए सीता शब्द प्रयुक्त हुआ है जो कृषि का देवता भी कहा गया है[११]। ३. शुनासीर- रोथ के अनुसार शुनासीर से लकड़ी (शुना) और फाल का अर्थ लिया जाता है[१२]। महर्षि यास्क ने शुनासीर को शस्य को समृद्ध करने वाला वायु और आदित्य देव माना है। ४. ईषा, युग और वरत्रा- हल में जो लम्बी लकड़ी लगी होती है, निरुक्त में उसे ईशा कहा गया है[१३]। ५. अष्ट्रा- बैलों को हांकने के लिए प्रयुकत छड़ी या चाबुक, अष्ट्रा कहलाती है[१४]। अथर्ववेद में कहा गया है कि हमारे हल मजबूत हो। हल की लम्बी लकड़ी या हरस (ईषा) मजबूत हो और जुआ मजबूत हो[१५]। 'हरस' शब्द को ग्रामीण भाषा में 'हलस' कर दिया गया है, हल कार्ष्मन् कहा जाता था। वैदिक काल के आरम्भिक समय में हल के फाल को सीता कहा जाता था। सूत्रकाल में 'सीता' जुती हुई भूमि को कहा जाने लगा।

कृषि कार्य में बैल की भूमिका- प्रारम्भिक काल से ही कृषि का समस्त कार्य बैलों के द्वारा किया जाता था। उस समय बैल को बधिया नहीं किया जाता था, इसलिए बैलों को अनड्वा अर्थात् अण्ड सहित या **'ऋषभ अनड्वान्'** कहा जाता था। बैलों को बलीवर्द, वृषभ, धूर्यवाह या गौ भी कहा जाता था। हल के लिए एक लम्बा और मोटा सा बांस बांधा जाता था, जिसके ऊपर जुआ रखा जाता था। हल खींचने वाले बैलों की संख्या छः, आठ, बारह अथवा चौबीस तक होती थी[१६], जिससे हल के बहुत बड़े आकार के व भारी होने का अनुमान लगाया जा सकता है।

बीज और उसकी बुआई- कृषि में प्रयुक्त बीज के की गुणवत्ता का भी पूर्ण ध्यान रखा जाता था। कृषक जंगल को काटकर खेत बनाते थे[१७]। शतपथ ब्राह्मण में बुआई के लिए 'वपन्तः'[१८] और गोभिलगृहसूत्र में 'प्रवपण'[१९] शब्द का प्रयोग किया गया है। कृषि कार्य को बहुत सुचारू रूप से करते हुए तकनीकी पक्षों का भी ध्यान रखा जाता था। खेतों में बीज की निश्चित मात्रा का प्रयोग किया जाता था। पौधों की एक निश्चित संख्या बनाई रखी जाती थी। बीज के आकार का भी ध्यान रखा जाता था। फसल को झाड़ने, सुखाने और भण्डारण करने मे हुई गलती से नष्ट बीजों से भी यह कामना की जाती थी कि वे भी अंकुरित हो जाएं। जैसे कि- मैं इस पृथ्वी के अन्दर बीज का प्रवेश करता हूँ। तेरी भिन्न-भिन्न आकृति एक समान हो जाए। जो-जो बीज कुव्यवहार से जल गया या खरोंचा गया है, वेद-विज्ञान से उस बीज को मैं समान रूप से फैलाता हूँ[२०]।

खेत को तैयार करना और सिंचाई कार्य- खेत को अच्छी प्रकार से जुताई करके फाल की सहायता से बोया जाता था[२१] और सिंचाई पर भी विशेष दिया जाता था। सिंचाई के लिए चार स्रोतों से जल प्राप्त करने का उललेख मिलता है। जैसे कि-

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उ
वा याः स्वयंजाः। समुद्रर्था याः शुचयः
पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु।।[22]

अर्थात् जो शुद्ध जल रिसते हैं और जो खोदने से उत्पन्न होते हैं, जो अपने आप उत्पन्न होते हैं अथवा जो समुद्र के लिए हैं या जो जल शुद्ध करने वाले हैं, वे हमारी रक्षा करें। चार प्रकार के स्रोत हैं- १. दिव्य अर्थात् वर्षा का जल २. खनित्रिमा अर्थात् कुएँ का जल ३. 'स्वयंजा' अर्थात् स्रोत आदि

का जल ४. समुद्रार्था अर्थात् समुद्र से मिलने वाली नदियों का जल । जल के बारे में अथर्ववेद में यह वर्णन किया गया है कि हमारे लिए निर्जल वाले देश के जल, जल वाले देश के जल, खनती या फावड़े से निकाले गए जल, घड़ों द्वारा उठाए गए जल ओर वार्षिकी जल सुखदायी हों[२३]। अथर्ववेद में हम यह भी पाते हैं कि इसमें अनावृष्टि और अतिवृष्टि तथा खनित्रिमा अर्थात् कृत्रिम जलाशय, नहर, डेम आदि का भी संकेत मिलता है। अथर्ववेद में हमें भूमि के अन्दर स्थित गहरे जल और उसके गुणों का उल्लेख भी मिलता है। यह भी कहा गया है कि गहरे स्थान से निकाले गये जल कभी हानिकारक नहीं होते और ये वैद्यों के भी वैद्य होते हैं[२४]।

खाद- कृषि के लिए सिंचाई के साथ साथ उर्वरक या खाद की भी आवश्यकता होती है। प्राचीन काल से ही खाद के द्वारा भूमि को उपजाऊ बनाने पर ध्यान दिया जाता रहा है। वैदिक काल में प्राकृतिक खाद के लिए पशुओं के गोबर का प्रयोग किया जाता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि गोशाला में रहने वाली गायें निर्भर रहती हैं। ये अमृतमय रस को धारण करती हैं, ये नीरोग (अनमीवा) तथा गोबर[२५] देने वाली होती हैं।

यजुर्वेद और अथर्ववेद के मंत्रों में यह भी कहा गया है कि बीज बोने से पहले जुती हुई भूमि में खाद के रूप में घृत, दुग्ध और मधु को डालने से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है[२६]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अथर्ववेद में कृषि-विज्ञान के सम्बन्ध में व्यापक व्यवस्थाएं मिलती हैं। प्राचीन समय से ही हमारे कृषक भी वेदादि शास्त्रों में वर्णित विधियों के अनुकूल ही कृषि कर्म करते रहे हैं, जिससे समाज की भौतिक आवश्यकताएँ पूर्ण होती रही हैं और राष्ट्र सम्पन्नता और समृद्धि से परिपूर्ण रहा है। आज हम आधुनिकता की चमक में पड़कर रासायनिक खादों और कीटनाशकों का प्रयोग करने लगे हैं, जिससे प्राकृतिक संतुलन बिगड़ने लगा है। हमें यदि राष्ट्र को सम्पन्न बनाकर सुख और स्वास्थ्य प्राप्त करना है तो वेदाधारित कृषि पद्धति को अपनाना होगा।

-देहरादून

सन्दर्भ-सूची:-

१. युञ्जन्ति कवयो.......अ० ३.१७.१
२. ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या उप जीवन्ति। अ० ८.१०.१४
३. कार्षीवर्णा अन्नविद:। अ० ६.११६.१
४. नम: क्षेत्रस्य पतये। २.८.५
५. इन्द्र आसीत् सीरपति:.....अ० ६.३०.१
६. कृषन्त:, वपन्त:, लुनन्त:, मृणन्त:। श० ब्रा० १.६.१.३
७. मृत्तिका। यजु० १८.१३
८. अरण्यादन्य आभृत: कृरूसा अन्यो रसेभ्य: । अ० २.४.५
९. अकृष्टपच्ये अशने धान्ये :। अ० ५.२९.७९
१०. सीरा:। अ० ३.१७.३
११. सीता:। अ० ३.१७.१
१२. शुनासीरा:। अ० ३.१७.५
१३. शुनो वायु: सीर आदिय:। निरुक्त ९.४०
१४. शुनम् अष्ट्राम् उदिङ्गय। अ० ३.१७.३
१५. नमस्ते लांगलेभ्यो नम..... अ० २.८.४
१६. इमं यवमाष्टायोगै:...अ० ६.९१.१
१७. ऋग्वेद १०.९४.१३
१८. शतपथ ब्राह्मण, १.६.१.३
१९. गोभिलगृह्यसूत्र, ४.४.२९
२०. पृथ्वीं त्वा... अ० १२.३.२२
२१. यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे... अ० १..१३
२२. ऋग्वेद ७.४९.२
२३. शं न आपो धन्वन्या... अ० १.६.४
२४. अनभ्रय: खनमाना....अ० १९.२.३
२५. संजगमाना अबिभ्युषीरस्मिन्....अ० ३.१४.३
२६. यजु० १२.७० और अ० ३.१२.७०

रमन्तां पुण्या लक्ष्मी: (अथर्व.) मेरे घर मे पवित्र कमाई हो।

वैदिककालीन कृषिविज्ञान

❑ विकास शास्त्री.....✍

वैदिकसंस्कृति के स्वर यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि कृषि कर्म प्राणिमात्र के प्रादुर्भाव से ही सामाजिक जीवन का आधार रहा है। कृषिविज्ञान प्राकृतिक, आर्थिक और सामाजिक विज्ञान आदि को समाहित कर एक बहुविषयक क्षेत्र है। वेद का ऋषि कृषि कर्म की स्तुति में स्वयं कहता है कि- **अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व**[१]....अर्थात् कृषि कर्म ही कर एवं इससे प्राप्त आय को पर्याप्त समझ। कृषि कर्म की महिमा का स्तवन वैदिक वाङ्मय में बहुधा हुआ है। आधुनिक भारत कृषि-प्रधान राष्ट्र है तथा प्राचीनकाल में भी कृषि आजीविका का मुख्य साधन थी। वस्तुतः आहार प्राणिमात्र की प्राकृतिक आवश्यकता है एवं अनन्तकाल तक यथावत् बनी रहेगी। अतः इसकी पूर्त्ति के लिए कृषि-कर्म आवश्यक है।[२] वाजसनेयि-तैत्तिरीय संहिताओं में भी कृषि को मानव हितसाधिका कहा है।[३]

कृषि कर्म का स्वरूप वर्तमान में अत्यन्त विस्तृत है। नव-तकनीकी एवं विशेषताओं से विभिन्न किस्में कृषि के अन्तर्गत आती हैं। वस्तुतः कृषि योग्य भूमि पर फसलों (यवव्रीह्यादि) को उपजाना (उगाना) मुख्यतः कृषि से सम्बन्धित है।[४] गृह्यसूत्रों में भी कृषि के सहस्रों प्रकारों का वर्णन है अर्थात् कृषिः सहस्रप्रकारा । कृषिरहिरण्यप्रकारा। कृषि की अनेक विधियाँ हैं और इससे प्रचुरमात्रा में धन-धान्य की उपलब्धि होती है।

वैदिककाल में कृषि पूर्ण-विकसित अवस्था में दृष्टिगत होती है, जो संसाधन विशेष अथवा कृषि-यन्त्र अपेक्षित होते हैं। प्रायः सभी की उपलब्धता तत्काल में थी। अथर्ववेद में कृषि कर्म वर्णन में स्पष्टतः उल्लेख किया है कि-

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नयौ।[५]

पदार्थः- (कवयः) मेधावी लोग (सीरा) हलों को कर्षण के लिए जोड़ते हैं। (धीराः) धीमान् लोग (युगा) जुओं को (पृथक् वितन्वते) बैलों के कन्धों पर फैलाते हैं। ये बुद्धिमान् कवि (देवेषु) देवों के विषय में (सुम्नयौ) (सुम्नं सुखकर हविर्लक्षणमन्नं यातः प्रापयतः) सुखकर अन्नों को प्राप्त कराने वाले बैलों को (युञ्जन्ति) जोतते थे।

भावार्थ :- बुद्धिमान् पुरुष हलों को जोतते हैं, जुओं को बैल के कन्धों पर डालते है, बैलों को जोतकर यज्ञार्थ अन्नों को प्राप्त करते हैं।

और भी -

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम् । विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नदीय इत्सृण्यः पक्वमा यवन्।।[६]

पदार्थ :- हे कृषीवालों (किसानों)! (सीरा युनक्त) हलों को युगों के साथ जोड़ों और (युग वितनोत) जुओं को बैलों के कन्धों पर फैलाओ तथा (योनौ) अंकुरोत्पत्ति योग्य (इह) इस (कृते) कृष्टक्षेत्र में (बीजम्) जौ.... चावलादि के बीजों को (वपत) बोओ (विराजः) अन्न के (श्नुष्टि) (शु अश) आशु प्रापक गुच्छे फलभार सहित (नः) हमारे (असत्) होवें। (नेदीयः इत्) (अन्तिकतमम्) अत्यल्प काल में (पक्वम्) पके हुए फलों से युक्त जौ चावलादि को (सृण्यः) लवणसाधन हँसुवे या दराँत आदि (आयवन) प्राप्त हों।

भावार्थः- हल जोतकर भूमि को ठीक करके हम बीज बोएँ। यह शीघ्र ही अंकुरित होकर पक्व गुच्छे का रूप धारण करे और दराँती से काटा जाए।

शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान्। शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै।।[७]

पदार्थः- (सुफाला) शोभन लांगलमुख (फाल) (भूमिम्) भूमि को (शुनम्) सुखकररूप में (वितुदन्तु) कृष्ट करें- जोतें। (कीनाशाः) किसान (शुनम्) सुखवर्धक (वाहान् अनुयन्तु) बैलों के पीछे चलें। शुनासीरा वायु और सूर्य (हविषा) अग्निहोत्र में आहुत हव्य पदार्थों ये (तोशमाना) (तोश) सब कृमियों का नाश करते हुए (अस्मै) इस कृषक के लिए (ओषधीः) जौ चावल आदि अन्नों को (सुपिप्पलाः कर्तम्) शोभन फलों वाला करें।

भावार्थ :- कृषि के लिए उत्तम फलों वाले हल हों। उत्तम बैल हों, समझदार किसान हो, अग्निहोत्र द्वारा सूर्य व वायु कृमिनाशक हो। इस प्रकार सब ओषधियाँ उत्तम फलों से युक्त हों।

और भी -

शुनं वाहा शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्। शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय।।[८]

पदार्थः- (वाहाः) बलीवर्द (बैल) (शुनम्) सुख से (कृषन्तु) हलों को खेंचे (नरः) कृषि करने वाले मनुष्य (शुनम्) सुख से कृषि करें। हल (शुनम्) उत्तम प्रकार से (कृषतु) भूमि को कृष्ट कर जोते (वरत्राः) रस्सियाँ (शुनम्) सुखपूर्वक बांधी जाएं (अष्ट्राम्) प्रतोद (चाबुक, सण्टि) को (शुनम्) सुख के लिए प्रेरित कर, क्रूरता से इसका प्रयोग मत कर।

भावार्थ :- अर्थात् सारा कृषि-कर्म सुखपूर्वक हो।

वैदिक वाङ्मय में कृषि के प्रसङ्ग में शुनम् शब्द का व्यापकरूप से प्रयोग दिखाई देता है। इससे यह विचार पुष्ट होता है कि चाहे भृत्य हो या फिर हल का वाहक पशु सबके साथ ऐसा व्यवहार किया जाए जिसमें किञ्चित् मात्र भी निष्ठुरता न हो। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि वैदिक-विज्ञान और उसमें प्रयुक्त प्रौद्योगिकी सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय थी, उसमें कहीं भी किसी को भी आहत करने का भाव लेशमात्र भी नहीं मिलता है।

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवरनुमता मरुद्भिः। सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत्पिन्वमाना।।[९]

पदार्थः- (सीता) यह लाङ्गलपद्धति (घृतेन) जल से तथा (मधुना) शहद से (समक्ता) सम्यक् सिक्त हुई है। यह (विश्वैः देवैः) सूर्यादि सब देवों से तथा (मरुद्भिः) वृष्टिवाहक वायुओं से (अनुमता) अङ्गीकृत हुई है- वे सब इसके अनुकुल हैं। हे (सीते) लाङ्गलपद्धते! (सा) वह तु (पयसा) उदक (जल) से सीचीं हुई (नः अभि आववृत्सव) हमारे अभिमुख-अनुकूल हो। तू (ऊर्जस्वती) बल से युक्त हो तथा (घृतवत्) घृतयुक्त अन्न को (पिन्वमाना) हमारे लिए सिक्त करने वाली हो।

भावार्थ :- घृत व मधु से सिक्त हुई-हुई भमि सूर्य-वायु आदि की अनुकूलता होने पर हमें बल व प्राणशक्ति प्राप्त कराए और घृतवत् अन्न देने वाली हो।

कृषि कर्म की समृद्धि हेतु यज्ञों के द्वारा उत्पन्न बादलों से वायु व सूर्य जल का वर्षण करके पृथिवी को सींचने वाले हों तथा हल उत्तम फाल, रस्सी व मूठ से युक्त हुआ-हुआ पृथिवी से उत्तम अन्न को प्राप्त कराने वाला हो वस्तुतः लाङ्गलपद्धति हमारे लिए उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त कराती हुई हमें उत्तम (प्रसन्न) मन वाला और उत्तम फलों का उपभोक्ता बनाए।

कृषि विश्वविद्यालय उदयपुर में एक वाक्य पढ़ने का अवसर मिला कि हल की नोंक (अर्थात् फाल) से खींची रेखा मानव इतिहास में जंगलीपन और उत्तमसभ्यता के मध्य की विभाजक रेखा है। यह तो इतिहास का विषय है कि रेखा विभाजक है या नहीं किन्तु यह वैज्ञानिक तथ्य सत्य है कि लोहे की फाल द्वारा कृषि-कर्म करने से मिट्टी की

उर्वरता बढ़ती है। वैदिककालीन कृषि एक विज्ञान के रूप में विकसित विषय था। जिसके प्रमाण सहस्रों वर्षों की समयावधि के पश्चात् भी भारतीय भूमि की उर्वरा शक्ति अक्षुण्ण बने रहना है, जबकि कुछ शताब्दियों में ही अमेरिका में लाखों हेक्टेयर भूमि बंजर बन चुकी है। कृषि क्षेत्र में पंक्तिबद्ध वपन-क्रिया के जनक भी हमारे पूर्वज ही हैं। मेजर जनरल अलेक्जेण्डर वाकर ने लिखा है कि भारत में शायद विश्व के किसी भी देश से अधिक किस्मों का अनाज उपजाया जाता है और विभिन्न प्रकार की पौष्टिक जड़ों वाली फसलों का यहाँ प्रचलन है। वर्तमान युग में पश्चिम की दौड़ में शामिल होकर भूमण्डल के सभी किसानों ने हानिकारक रासायनिक उर्वरकों[10] द्वारा सम्पूर्ण संसार की धरा की उर्वरा शक्ति का विनाश कर दिया है। अतः हमें समय रहते अपनी संस्कृति एवं सभ्यतानुसार तथा उत्तमभौगोलिक परिवेश में वैदिककालीन-कृषि[११] को पुनः उत्सव के स्वरूप में अङ्गीकार करना होगा अन्यथा वर्तमानकालिक विनाश के भंवर में विलीन होते देर न लगेगी।

-सम्पादक (हरिप्रभा)

हरियाणा संस्कृत अकादमी,पंचकूला

सन्दर्भः

१. ऋग्वेद - १०/३४/१३

२. अथर्ववेद - विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽन्नतेजाः। कृषिमनु विक्रमेऽहं कृष्यास्तम्।। १०/०५/३४

३. अ) वा.सं.-९/२२ रय्यै त्वा पोषाय त्वा।
इ) तै.सं.- ४/३/७/२ कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा।

४. अथर्ववेद १२/१/३-४ यस्यामन्नं कृष्टयः सम्बभूवुः।

५. अथर्व. ३/१७/१

६. अथर्व. ३/१७/२

७. अथर्व. ३/१७/५

८. अथर्व. ३/१७/६

९. अथर्व. ३/१७/९

१०. यूरिया- के जनक वोहलर

११. माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः
(अथर्ववेद- १२/१/१२)

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।। —[यजुः० ३६।३]

'हे परमेश्वर! हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप! हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्त-स्वभाव! हे कृपानिधे न्यायकारिन्! हे अज निरञ्जन निर्विकार! हे सर्वान्तर्यामिन्! हे सर्वाधार सर्वजगत्पितः सकलजगदुत्पादक! हे अनादे विश्वम्भर सर्वव्यापिन्! हे करुणामृतवारिधे! सवितुर्देवस्य तव यदों भूर्भुवः स्वर्वरेण्यं भर्गोऽस्ति तद्वयं धीमहि दधीमहि धरेमहि ध्यायेम वा। कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह—हे भगवन्! यः सविता देवः परमेश्वरो भवानस्माकं धियः प्रचोदयात्, स एवास्माकं पूज्य उपासनीय इष्टदेवो भवतु। नातोऽन्यद्वस्तु भवत्तुल्यं भवतोऽधिकं च कञ्चित् कदाचिन्मन्यामहे।'

हे मनुष्यो! जो सब समर्थों में समर्थ; सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप; नित्यशुद्ध-नित्यबुद्ध-नित्यमुक्तस्वभाव वाला; कृपासागर; ठीक-ठीक न्याय का करनेहारा; जन्ममरणादि क्लेशरहित, आकार-विकार रहित; सबके घट-घट का जानने वाला; सबका धर्त्ता, पिता, उत्पादक; अनादि, अन्नादि से विश्व का पोषण करनेहारा, सर्वव्यापक; सकल ऐश्वर्ययुक्त, जगत् का निर्माता, शुद्धस्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है, उस परमात्मा का जो शुद्ध चेतनस्वरूप है, उसी को हम धारण करें। इस प्रयोजन के लिए कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामिस्वरूप हमको दुष्टाचार, अधर्म्मयुक्त मार्ग से हटा के श्रेष्ठाचार, सत्य मार्ग में चलावे। उसको छोड़कर, दूसरे किसी वस्तु का ध्यान हम लोग नहीं करें, क्योंकि न कोई उसके तुल्य और न अधिक है। वही हमारा पिता, राजा, न्यायाधीश और सब सुखों का देनेहारा है। **-सत्यार्थ-प्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती**

रामायणकालीन कृषिस्वरूप

❑ निखिल आर्य, शोधच्छात्र....

अखिल ब्रह्माण में भारतीय संस्कृति की अपनी अमिट स्मृति बनी हुयी है। भारतीयसंस्कृति के मूलभूत सिद्धान्तों को पाश्चात्य देश निरन्तर स्वीकार करते चले जा रहे हैं और अत्यन्त खेद है जो इस सभ्यता को जन्म देने वाला है, वह निरन्तर इससे विमुख होता जा रहा है।

समाज को सदैव नवीन दिग्दर्शन इतिवृत्तों से ही प्राप्त होता है। ऐसे ही इतिवृत्तों को आज जान व समझ कर कार्यान्वयन रूप देने की प्रासाङ्गिता दिखायी देती है।

इतिवृत्तों में रामायण तथा महाभारत का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। रामायण अपने काल का जीवनदर्शन है। उस समय के लोगों की सभ्यता तथा संस्कृति की झलक रामायण के श्लोकों में निबद्ध है। मानव मात्र की मूलभूत आवश्यकता अर्थ है। इसके प्रमुख स्रोत उस काल में कृषि, पशुपालन, व्यापार आदि प्रमुख थे। रामायण (वाल्मीकीय) के अध्ययन से स्पष्ट है कि वह वैदिकी मान्यताओं पर आधारित महाकाव्य है। वैदिक मान्यता के अनुसार कृषि को उच्च स्थान प्राप्त रहा है।

उस काल में सर्वाधिक आय का यदि कोई स्रोत था तो वह कृषिव्यवस्था। कृषिव्यवस्था के कारण ही समाज में सुख-सम्पन्नता का वास था जिसका उद्धरण हमें इस प्रकार प्राप्त होता है-

कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्।
निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान्।।
(रामायण-१/५/५)

अयोध्यानगरी धनधान्य से परिपुष्ट थी, वहाँ कोई भी अभावग्रस्थ नहीं था-**'कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान्'** (रामायण-१/६/७) तथा **'नामृष्टभोजी'** (रामायण-१/६/११) एवं **'नाल्पभोगवान्'** (रामायण-१/६/१०) आदि उद्धरण उपरोक्त बात को ही पुष्ट करते हैं। खेत आदि जोतने के निमित्त सामर्थ्यशील पशुओं की भी पर्याप्त उपलब्धता थी, जिसका प्रमाण इसप्रकार प्राप्त होता है - **'सुकृष्टसीमापशुमान्'** (रामायण-२/१००/५३) अयोध्या की सम्पन्नता का दिग्दर्शन श्रीराम की वो पङ्क्तियाँ करती हैं, जो इस प्रकार हैं-

इयं सराष्ट्रा सजना धनधान्यसमाकुला।
वनवास विस्रष्टा वसुधा भारताय प्रदीपताम्।।
(रामायण-२/३४/४१)

जब राम वनवास के लिए प्रस्थान करते हैं तब भी धनधान्यसम्पन्न कृषिभूमि का दिग्दर्शन कराया गया है, जो इस प्रकार हैं-

ग्रामान् विकृष्टसीमान्तान् (रामायण-२/४९/३)
ततो धान्यधनोपेतान् (रामायण-२/५०/८)
उद्यानानि परित्यज्य क्षेत्राणि च गृहाणि च
(रामायण-२/२३/१७)

इसके अतिरिक्त भी अनेक प्रमाण सुकृषिव्यवस्था का प्रतिपादन करते हैं-

सुक्षेत्रा सस्यमालिनी (रामायण-१/३२/१०)
स्फीतां राष्ट्रवृतां रामो वैदेहीमन्वदर्शयत्
(रामायण-२/४९/१३)
क्षेत्राणि सस्ययुक्तानि काले वर्षति वासवः
(रामायण-७/७०/१०)

उपर्युक्त प्रमाणों से रामायणकालीन कृषिव्यवस्था का अवलोकन कराने का पूर्ण यत्न किया है।

अब कृषिव्यवस्था को क्या राज्याश्रय भी प्राप्त था अथवा नहीं यह भी बहुत महत्वपूर्ण बात है, क्योंकि

किसी भी व्यवस्था को सुचारु रूप से निर्बाध गति प्रदान करने के लिए राज्याश्रय तथा लोकाश्रय प्राप्त होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। किसी राज्य की आर्थिक उन्नति शासन अथवा राजा के पर्याप्त संरक्षण में होती है। रामायण में भी कृषि को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। राजा स्वयं कृषि ज्ञान से पूर्णतया परिचित होते थे। राजा जनक ने स्वयं भूमिशोधन किया, जिसका उल्लेख हमें इस प्रकार प्राप्त होता है–

अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः।

(रामायण–१/६६/१३)

क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता।

(रामायण–१/६६/१४)

रामायणकालीन युग में कृषि और गोरक्षा पर जीवन व्यतीत करने वाले वैश्यों का भरण–पोषण करना राजा का ही कर्तव्य था।(रामायण–२/१००/४८) राज्य की समृद्धि के लिए उनकी आत्म सन्तुष्टि और प्रसन्नता थी, इसीलिए श्रीराम जी ने जब भरत वन (चित्रकुट) में मिलने आते हैं तब कहते हैं कि–

कच्चित् ते दयिताः सर्वे कृषिगोरक्षजीविनः।

(२/१००/४७)

राजकीय संरक्षण के अभाव में कृषि–व्यवस्था अव्यवस्थित हो जाती है। राजा से रहित देश में सर्वत्र अशान्ति और अराजकता का वातावरण रहता है, ऐसी अवस्था में न तो खेतों में पर्याप्त बीज बोये जाते हैं, न मेघ वर्षा करते हैं और न ही कृषक भयमुक्त हो अपना कृषि कार्य कर पाते हैं–

नाराजके जनपदे अभिवर्षति पर्जन्यो। (२/६७/९)

नाराजके जनपदे बीजमुष्टिः प्रकीर्यते।

(२/६७/१०)

नाराजके जनपदे धनवन्तः सुरक्षिताः।
शेरते विवृतद्वारा कृषिगोरक्षजीविनः।।

(२/६७/१८)

रामायण में उस काल के अनेक प्रकार के अन्नों तथा यन्त्र–तन्त्रों का विवरण प्राप्त होता है। अन्नों में तण्डुल, तिल, मूँग, चना, माष, (७/९१/१९–२०) यव, गोधूम, शालि–तण्डुल, लाजा (१/५३/२) आदि प्रमुख हैं। यथा–**वाष्पाच्छन्नान्यरण्यानि यवगोधूमवन्ति च।** (३/१६/१६) कृषि के उपकरणों के रूप में रामायण (२/११८/२८) में हल का उल्लेख प्राप्त होता है। साथ ही भूमि को जोतने के लिए हल का बैलों के साथ सम्बन्ध भी बताया गया है कि– **'ये तौ दृष्ट्व कृषौ दीनौ सूर्यरश्मिप्रतापितौ वर्धमानौ वलिवर्दौ कृषकेन दुरात्मना'** (२/७४/२३)

भारतीय परम्परा में ऋतुओं के आधार पर कृषि करने की बहुत लम्बी परम्परा प्राचीनकाल से लेकर अर्वाचीनकाल तक विद्यमान है। अगर हम बात करें रामायणकाल की तो उसमें भी ऋतुओं के आधार पर कृषि करने का प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे शरद् ऋतु में धान का पकना – **शालीवनं विपक्वम्'** (४/३०/५३)। वर्षा ऋतु में पृथ्वी पर समस्त कृषिभूमण्डल पर बुआई करने का विधान है। (४/२८/३६) इत्यादि प्रमाण प्राप्त होते हैं।

रामायणकालीन युग में कृषि में सिचाई के साधनों के रूप में वर्षा को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। वर्षा का जल कृषि के लिए अमृत समान है। इसलिए कहा गया है कि–

'काले वर्षति पर्यन्यः पातयन्नमृतं पयः' (७/४१/२०)

तेज वायु, धूप आदि के कारण फसल के सुख जाने पर वर्षा के जल से पुनः फसल को हरा–भरा किया जाता था। (वातातपक्लान्तमिव प्रणष्टम्, वर्षेण बीजं प्रति संसहर्षः (५/४९/६) प्रायः लोग वर्षा पर ही आधारित नहीं रहते थे, किन्तु सिचाई के साधन के रूप में नहर, कुओं, बावडियों, जलाशयों तथा बाँध आदि का भी व्यवस्था का प्रमाण प्राप्त होता है। प्रमाण रामायण में इसप्रकार प्राप्त होते हैं–

अचिरेण तु कालेन परिवाहान्।
चक्रुर्बहुविधाकारान् सागरप्रतिमान् बहून्।।

(२/८०/११)

कृषि कर्म के लिए अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, बंजर भूमि, ओलों की वर्षा इत्यादि प्राकृतिक आपदाओं का भी वर्णन प्राप्त होता है। जैसे रोमपाद नामक राजा के द्वारा अधर्म का आचरण करने से उसके देश में घोर अनावृष्टि हुई–**अनावृष्टिः सुघोरा वै सर्वलोकभयावहाः** (१/९/९)। मुनि ऋषिशृंग के नगर में प्रवेश करने से ही वहाँ वर्षा हो सकी। इसी प्रकार लगभग दस वर्ष अनावृष्टि के कारण सारा लोक दग्ध होने लगा था – **'दशवर्षाण्यनावृष्ट्या दग्धे लोके निरन्तरम्'** (१/९/१८)। तब धर्मपरायण अनसूया ने ही अपनी कठोर तपश्चर्या द्वारा वर्षा करवाकर निवारण किया तथा वृत्रासुर का वध करने से ब्रह्महत्या रूपी पाप से इन्द्र के ग्रस्त होने पर भी अनावृष्टि का उल्लेख मिलता है – **'भूमिश्च ध्वस्तसंकाशा निःस्नेहा शुष्ककानना..... सत्त्वानामनावृष्टिकृतोऽभवत्'** (७/८६/४-५) खेतों को नष्ट करने वाले टिड्डी दल का भी एक स्थान पर संकेत किया गया है। (**शलभा इव केदारं मशका इव पावकम्**–७/७/३)। एक स्थान पर पर कृषि के बाधक ओलों की वर्षा का उल्लेख किया है। **'अश्मवर्षेण महता भृत्यास्ते विनिपातिताः'** (७/८९/१३)। श्रीराम के राज्य में दुर्भिक्ष का कोई भय न था। **दुर्भिक्षभयवर्जितः**–१/१/९०) अनेक प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं का यत्र-तत्र निदर्शन होता है, जो कृषि के लिए बाधक है।

सम्पूर्ण प्रकरण पर दृष्टिपात करते हुए निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि रामायणकालीन समाज में कृषिव्यवस्था पर्याप्त विकसित अवस्था में थी। कृषिसम्बन्धी विशिष्टि ज्ञान अर्थात् कृषिविज्ञान का पूर्ण अस्तित्व था। अनेक प्रकार की फसलें ऋतुओं के अनुसार वहाँ की जाती थी। यद्यपि वहाँ वैज्ञानिक उपकरण न थे, तथापि धान्य की समृद्धता ही देखने को मिलती है। वर्षा की प्रधानता के साथ सिंचाई के पर्याप्त साधन वहाँ विद्यमान थे। धार्मिक कृत्यों के द्वारा प्राकृतिक आपदाओं से कृषि की सुरक्षा की जाती थी। उस काल में कृषि की व्यवस्था अति उत्तम थी। यदि उस पद्धति को अपनाया जाये तो निश्चियेन वर्तमान दशा व दिशा उन्नतपूर्ण हो।

–संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रश्न—संन्यासग्रहण की आवश्यकता क्या है?

उत्तर—जैसे शरीर में शिर की आवश्यकता है, वैसे आश्रमों में संन्यास की आवश्यकता है। क्योंकि इसके विना विद्या, धर्म कभी नहीं बढ़ सकता और दूसरे आश्रमों को विद्याग्रहण, गृहकृत्य और तपश्चर्यादि का सम्बन्ध होने से अवकाश बहुत कम मिलता है। पक्षपात छोड़कर वर्त्तना दूसरे आश्रमों को दुष्कर है। जैसा संन्यासी सर्वतोमुक्त होकर जगत् का उपकार कर सकता है, वैसा अन्य आश्रम नहीं कर सकता। क्योंकि संन्यासी को जितना अवकाश सत्यविद्या से पदार्थों के विज्ञान की उन्नति का मिलता है, उतना अन्य आश्रम को नहीं मिल सकता। परन्तु जो ब्रह्मचर्य्य से संन्यासी होकर जगत् को सत्यशिक्षा करके जितनी उन्नति कर सकता है, उतनी गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम करके संन्यासाश्रमी नहीं कर सकता।

मुक्ति– अर्थात् सर्व दुःखों से छूटकर बन्धरहित सर्वव्यापक ईश्वर और उस की सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुनः संसार में आना।

–स्वामी दयानन्द सरस्वती

वेदों में कृषि, औषधि और वनस्पति विज्ञान

❑ डॉ. इंदु सोनी.....✍

वैदिक काल में कृषि ही मनुष्य का जीवन आधार थी, इसलिए वहाँ कृषि की महत्ता को व्यापक रूप से स्वीकारते हुए इसे जीवनयापन का बहुमूल्य साधन माना गया। ऋग्वेद में **'कृष्टि'** शब्द मिलता है जो समस्त आर्य जनों के कृषक होने का प्रमाण है।[१] कृषि ही आजीविका का प्रमुख साधन थी, अतएव तैत्तिरीय ब्राह्मण में आजीविका के साधन को **'उप-जीवा'** नाम दिया गया है।[२] अथर्ववेद में भी कृष्टराधि को **'उपजीवनीय'** कहा गया है।[३]

तैत्तिरीय संहिता[४] तथा यजुर्वेद[५] में कृषि को मानवीय कल्याण का साधन मानते हुए ऐश्वर्य और पोषण का साधन माना गया है[६], तत्कालीन समाज का हर वर्ग वृक्ष-वनस्पतियाँ पल्लवित करने में परिश्रम करता था और बच्चों के समान उसकी रक्षा करता था। इसका साक्ष्य एक मन्त्र में निहित है जहाँ कहा गया है कि-**जुआ मत खेलो, कृषि करो।**[७]

तैत्तिरीय संहिता में कृषि को **छन्द** कहा गया है अर्थात् यह जन-जीवन को आनन्दमय बनाने वाले संगीत के समान भी है।[८] यजुर्वेद में **'क्षेत्राणां पतये'** कहा गया है[९], जिससे यह पता चलता है कि एक किसान कई खेतों का स्वामी भी हो सकता था। यहाँ भूमि के तीन भेद भी बताए गए हैं-**उर्वक**(उपजाऊ), **इरिण**(ऊषर), **शस्य**(चारागाह योग्य)।[१०] वेद के इन्हीं संदेशों को बहुत सुंदर प्रकार से निभाया गया है, जहाँ विविध मन्त्रों द्वारा कृषि के विविध सोपानों पर प्रकाश डाला है।

कृषि के साधन- कृषि के साधन के रूप में तत्कालीन समाज में **लांगल** (हल) और सीर का प्रयोग किया जाता था।[११] कृषि भूमि बैलों से जोती जाती थी[१२], जिसे **'वाहा'** नाम से संबोधित किया गया है। **वरत्रा** नामक एक रस्सी से हल को जुए से बांधा जाता था।[१३] **'अष्ट्रामारा'** में अष्ट्रा किसान के **चाबुक या छड़ी** को कहा है, जिससे बैलों को हांका जाता था तथा आदित्य देवों से प्रार्थनाएँ की जाती थी कि उसके बैल सुखपूर्वक कृषि कार्य को सम्पादित करें।[१४]वहाँ कहा गया है कि कृषि के लिए वाहा (बैल), अष्ट्रा, हल आदि उत्तम होने चाहिए, जिससे सरलता से कृषि कार्य किया जा सके। काठक संहिता में १२ बैलों वाले बड़े हल का उल्लेख भी मिलता है।[१५] इन सबको देखते हुए ऐसा लगता है कि उस समय का किसान मनसा, वाचा, कर्मणा से ईश्वर को स्मरण करते हुए समर्पण भाव से कृषि कार्य में स्वयं को समर्पित करता था।

एक मन्त्र में हल के **'अष्ट्रामारा'** नामक लोह फलक द्वारा बनाई गई सीता (रेखा) से प्रार्थना की जाती थी कि-**'हे सौभाग्यशालीनी सीता! तू उत्तम शस्यों को फल और पुष्पों से सुशोभित कर'**।[१६]इस प्रकार इस प्रसंग से तत्कालीन समाज में कृषि करने वाले कृषक की मनोभावनाएँ स्पष्टतः उत्तम शस्य की प्राप्ति के लिए ध्वनित होती हैं।

शुक्ल यजुर्वेद में घर में कृषि से उत्पन्न खाने योग्यपदार्थ से ही पुनः कृषि उत्पन्न करने के लिए शुद्ध बीजों को ठीक से सुखाकर अच्छे से सुखे बर्तन में भली भांति ढककर सुरक्षित स्थान पर रख दिया जाने का वर्णन प्राप्त होता है अर्थात् तत्कालीन समाज में समय आने पर उन बीजों से पुनः भूमि को बोने के काम में लिया जाता था।[१७]इसी संदर्भ में कहा गया है कि जिस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और यायावर नामक पाँच जातियाँ मृत्यु के बाद यमलोक जाकर नवीन शरीर धारण करती हैं, उसी

प्रकार गृह में सुरक्षित रखे खाद्य बीज पुनः बोने पर नया रूप लेकर कृषि के रूप में पल्लवित हो जाएं।[१८]

शुक्ल यजुर्वेद में वृष्टि का देवता पर्जन्य को मानते हुए उनसे समय-समय पर वर्षा के लिए प्रार्थना की गई है।[१९]आरण्यकों में भी पृथिवी, वायु और वृष्टि से प्रार्थना की गई है कि वे सब साथ मिलकर उसके कृषि कार्य को फलप्रद बनाएँ।[२०] यहाँ कृषि के लिए पर्याप्त जल की आवश्यकता को समझा गया है क्योंकि वृष्टि भी वायु के प्रवाह के साथ धरती पर अपना स्वरूप विकसित करते हुए कृषक के लिए फलदायी बनती है। कृषि की स्तुति करते हुए ऋषि ने एक मन्त्र में **कृषि कार्य को देवपत्नी** की संज्ञा दी गई है[२१], जिससे तत्कालीन समाज में कृषि की महत्ता ध्वनित होती है।

ओषधियाँ और वनस्पतियाँ- वेदों में वनस्पतियों का **पिता अन्तरिक्ष** तथा **माता पृथ्वी** को मानते हुए इनका मूल समुद्र को कहा है।[२२] तत्कालीन समय में ओषधि विज्ञान पर्याप्त उन्नत था, जो दीर्घकालिक अनुभव एवं प्रयोग का परिणाम था।

यहाँ **ओषधियों** से अभिप्राय है, जो समय या वातावरण को प्राप्त कर स्वतः पैदा होती है तथा अपने फलों के पक जाने के बाद सूख जाती हैं। ओषधियाँ चिकित्सा की प्रमुख साधन हैं, अतः इन्हें **भेषज** और **सुभेषज**(उत्तम चिकित्सा) भी कहा गया है।[२३] कुछ ओषधियाँ पर्वतों[२४] से और कुछ कन्दमूल आदि के रूप में होती है, इनकी जड़ को खोदकर निकाला जाता है। कुछ ओषधियाँ भूमि पर ही होती हैं, जिन्हें विभिन्न रोगों की चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है।[२५] कुछ ओषधियाँ **समुद्र** से भी निकाली जाती हैं, इन्हें **दीमक** या **बमी** भी कहा जाता है।[२६] इस प्रकार सैंकड़ों प्रकार की ओषधियाँ होती हैं।[२७]
वनस्पतियों से अभिप्राय है जिन्हें बीज वपन आदि की सहायता से पैदा किया जाता है तथा मनुष्य के भरण-पोषण में काम आती हैं, इस प्रकार वनस्पतियां सभी ऋतुओं में या विशेष ऋतु में फल प्रदान कर वनों की रक्षा करती है।

वेदों में अनेक जगह अनेक प्रकार की औषधि-वनस्पतियों में उदुम्बर, अश्वत्थ, बाँस, वैकङ्कती आदि की चर्चा प्राप्त होती है, जिन्हें सामान्य जीवन में यज्ञ क्रिया में तथा व्याधियों से निवारण के लिएभी प्रयोग किया जाता था, यथा-

१. बर्हि[२८] **या दर्भ**- बर्हि से अभिप्राय है-कुशा या घास।[२९] बर्हि मौसम के अनुसार स्वयं उत्पन्न होती है अर्थात इसे पैदा करने के लिए अलग से परिश्रम नहीं करना पड़ता। औषधियों की चर्चा में कहा गया है, **"औषधयो बर्हिषा"**[३०] अर्थात् औषधियों में बर्हि। इस प्रकार शतपथ ब्राह्मण में भी बर्हि को जल एवं औषधि दोनों माना गया है।[३१] आयुर्वेद में दर्भ को रोग नाशक माना गया है, कदाचित् इसी कारण दर्भ को यज्ञ वराह के रोम की संज्ञा दी गई है। बर्हि के द्वारा अन्य औषधियों को भी पोषण में सहायता मिलती है, इस कारण इसे औषधियों का सार भी कहा गया है।[३२]

बर्हि का वेद स्वाध्याय और यज्ञों में आसन के रूप में प्रयोग किया जाता है।[३३] अतः बर्हि आसन के रूप में प्रयुक्त होकर शरीर की रक्षा करने में सहायक होती है तथा स्वयं उत्पन्न होने के कारण इसे औषधि तुल्य संज्ञा प्राप्त है।

२. पिप्पली-इसे पिपर भी कहते हैं। इसके विषय में कहा गया है कि यह देवताओं की भी रक्षा करने की सामर्थ्य रखती है।[३४] इसका प्रयोग औषधि की तरह ठण्डे मौसम में सर्दी से बचने के लिए किया जाता है। यह वातरोग, उन्माद रोग आदि की भी ओषधी है, जो बड़े घावों को भी भरती है।[३५]

३. अर्जुन-इसे **कहू** या **कौह** भी कहा जाता है।[३६]इस वृक्ष को औषधियों के सार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके रहस्य को ब्रह्मविद् ब्राह्मण लोग जानते हैं। ये इतने गुणकारी हैं कि इनके पत्तों से चरु अन्न के पात्र को ढका जाता है। जिससे उस अन्न की

सुरक्षा के साथ उसमें दिव्य गुणों का आधान होता है।[३७] यह कफ, पित्त, श्रम और तृष्णा को दूर करने में प्रयोग की जाती है।

४. सोमलता- मूंजवत् पर्वत पर होने के कारण इसे **मौजवत** कहते है।[३८] कुष्ठ ओषधि को इसका मित्र कहा गया है क्योंकि यह हिमालय पर कुष्ठ ओषधी के समीप में होती है।[३९]

५. गुग्गुलु- सायण ने इसे **गुगल** कहा है, जिसको सुगन्ध के लिए जलाया जाता है। इसे अथर्ववेद में रोगनाशक बताया गया है।[४०] यह समुद्र और नदियों से भी प्राप्त होता है।[४१] इसे गुग्गुलु और गुल्गुलु दोनों तरह से लिखा जाता है।

६. शमी लता- इसके विषय में कहा जाता है कि यह द्वैज़ भावना से मुक्ति दिलाने में सहायक है, संभवतः यह शत्रुता आदि दूर्वृति को पनपने में मानव को बचाने वाली मानसिक रोग से रक्षा करती है।[४२]

७. उदुम्बर- इसे सभी वनस्पतियों का प्रतिनिधि माना गया है[४३] तथा यज्ञ का सिर कहा गया है,क्योंकि इसमें ऊर्जा का प्रत्यक्ष रूप से निवास है और उदुम्बर ऊर्जा का प्रतिनिधि है।[४४] इसे गुलर का वृक्ष भी कहते हैं।[४५] ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार उदुम्बर वर्ष भर में तीन बार फल देता है। इस प्रकार जो व्यक्ति निरन्तर कर्म करता है उसे स्वादिष्ट उदुम्बर की प्राप्ति होती है।[४६]

८.बाँस और वैकङ्कती- तैत्तिरीय संहिता में इसे जल की योनि कहा गया है[४७] क्योंकि यह अधिक जल में या जलीय क्षेत्र में ही उत्पन्न होता है।[४८] इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है, इसी कारण इस वृक्ष से यज्ञ हेतु चमस और शलाकादि पात्र बनाए जाते थे। बाँस के विभिन्न प्रयोगों से तत्कालीन समाज सुपरिचित था। शुक्लयजुर्वेद में बाँस चिरने वाली स्त्रियों को **'विदलकारी'** कहा गया है।[४९] एक प्रसंग में बाँस को तेज का प्रतिनिधि बताया गया है और यह भी कहा गया है कि तेज यज्ञ का सिर है। वैकङ्कती वृक्ष को तेज का प्रतिनिधि माना गया है, उसे भी यज्ञ का सिर बताते हुए इन वृक्षों की महत्ता को प्रतिपादित किया है।[५०] इससे बने आयुध को 'विकंकती मुख' कहा गया है।[५१]

९.अश्वत्थ (पीपल)[५२] - आज भी **पीपल** का बहुत महत्त्व है। शुक्लयजुर्वेद में अश्वत्थ वृक्ष की स्तुत्ति करते हुए इससे मधुरता देने के लिए प्रार्थनाएँ की गई हैं।[५३] ऋग्वेद में इसे अम्ब नाम से संबोधित करते हुए **'सहस्त्ररूह'** भी कहा गया है।[५४] अथर्ववेद में इसे **'देवसन'** अर्थात् देवों का पवित्रस्थान भी कहा गया है।[५५]

उपनिषदों और श्रीमद्भगवद्गीता आदि ग्रन्थों में अश्वत्थ वृक्ष को **"ऊर्ध्वमूलमधः शाखम्"** बताया गया है। संभवतः यह विचार तैत्तिरीयारण्यक साहित्य का अवदान है। क्योंकि इस ग्रन्थ में बिल्कुल उसी शब्दावली का प्रयोग हुआ है, यथा- **"ऊर्ध्वमूलम-वाक्छाखम्"**। इस संदर्भ में यह कहा गया है कि इस वृक्ष को जो भली-भाँति समझ लेता है, उसे मृत्यु मार नहीं पाती है।[५६]

इस प्रकार इस वृक्ष की प्रशंसा के मूल में निश्चित ही इसकी सनातनता, ऊर्ध्वमूलता तथा औषधीय गुणों की अधिकता रही है।

अतः तत्कालीन समाज **कृषि,औषधि** और **वनस्पतियों** की महत्ता को पूर्णतया समझता था, इसीलिए विभिन्न देवताओं से कृषि, औषधि-वनस्पतियों की रक्षा के लिए **प्रार्थनाएँ** की गई हैं, यथा-प्रजा का आधार अन्न है[५७] इसलिए कामना की गई है कि औषधियाँ एवं वनस्पतियाँ सदा रोग रहित और फलप्रद रहें, मनुष्य को स्वच्छ और स्वस्थ परिवेश मिले।[५८] इसी प्रकार शरीर से अलग हुई आत्मा से प्रार्थना की गई है कि वह विभिन्न शक्तियों और पदार्थों में गमन करते हुए औषधियों में वीर्य, ओज आदि के द्वारा नव जीवन को प्रदान करें।[५९]

जल से भी उत्तम औषधियों की कामना की जाती है।[६०] ऋषियों की औषधियों के प्रति श्रद्धा ने ही

उन्हें देव पत्नियों के रूप में और जल की सहेली के रूप में भी चित्रित किया है-**'आपश्चौषधयश्च..... देवानां पत्नयः'**।[६१] शुक्ल यजुर्वेद का यह मन्त्र **'पृथिवीं दृढ. पृथिवीं मा हिंसी'**[६२] से अभिप्राय है कि मनुष्य पृथ्वी के पोषकतत्वों की सदैव रक्षा करें। इस प्रकार वैदिक ऋषि प्रकृति की उपकारिता के संदर्भ में सहजभाव से परिचित थे, क्योंकि वे प्रकृति की गोद में पालित हुए थे। किस वस्तु की उपादयेता किस वस्तु को उत्पादित करने में और किस से कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसका सही-सही आंकलन तत्कालीन समाज में भली-भाँति था। अतः वहाँ प्रकृति को मनुष्यवत् माना गया और मानव की तत्कालीन प्रकृति के प्रति समर्पण की भावना ने ही पर्यावरण को भी सुरक्षित बनाए रखा।

अतः तत्कालीन समाज **कृषि, औषधि** और **वनस्पतियों** की वैज्ञानिकता का पूर्णतया परिचायक था तथा मनुष्यवत् उसका पोषण करते हुए सदैव उनकी तथा उनके द्वारा स्व पोषण की प्रार्थनाएँ भी करता था, इस प्रकार के विचारों की वर्तमान में भी बहुत आवश्यकता है ताकि प्रकृति का संतुलन बना रहे।

- असिस्टेंट प्रोफेसर
जाकिर हुसैन कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सन्दर्भ-सूचीः-

१. ऋ॰ १.४.६; १.३६.१९
२. तै॰ब्रा॰ १.५.६.४
३. अथर्व॰ ८.१०.२४
४. तै॰सं॰ ४.३.७.२
५. यजु॰ ९.२२
६. वही॰ ९.२२
७. अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व..। ऋ॰ १०.३४.१३
८. कृषिश्छन्दः। तै॰सं॰ ४.३.७.१
९. यजु॰ १६.१८
१०.(क) यजु॰ १६.३३,४२,४३
(ख) तै॰सं॰ ४.५.६,८,९
११.(क) यजु॰ १२.७१
(ख) अथर्व॰ ३.१७.१, ३.१७.३
१२. ऋ॰ १०.३४.१३
१३. अथर्व॰ ३.१७.६
१४. शुनं वाहाः शुनं नाराः शुनं कृषतु लाङ्गलम्। शुनं वरत्रा वध्यन्तांशुनमष्ट्रामुदिङ्गय शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम्।। -तै॰आ॰ ६.६.२
१५. का॰सं॰ २.५.२
१६. सीते वन्दामहे त्वाऽर्वाची सुभगे भव। यथा नः सुभगा ससि यथा नः सुफला ससि। तै॰आ॰ ६.६.२
१७. शु॰यजु॰ १२.६८
१८. यथा यमाय हार्म्यमवपन्पञ्च मानवाः। एवं वपामि हार्म्यं यथाऽसाम जीवलोके भूरयः। तै॰आ॰ ६.६.३
१९. शु॰यजु॰ २२.२२
२०. प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते सुवः। इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसाऽवति। वही॰ ६.६.३
२१. कृषिश्च वृष्टिश्च। .... देवानां पत्न्यः। तै॰आ॰ ३.९.२
२२. अथर्व॰ ३.२३.६
२३. वही॰ २.३.१
२४. वही॰ २.३.३
२५. वही॰ २.३.५
२६. वही॰ २.३.४
२७. वही॰ २.३.२
२८. वही॰१८.१२
२९. संस्कृत इंग्लिश डिक्सनरी, आप्टे, पृ॰ ३८०
३०. तै॰आ॰ ३.८.१
३१. श॰ब्रा॰७.२.३.१३ॐ-२
३२. औषधीनां रसो यद्दर्भाः .... ।तै॰आ॰ २.११.१
३३. दर्भाणां महदुपस्तीर्योपस्थं कृत्वा प्राङासीनः स्वाध्यायमधीयीतापां वा एष औषधीनां रसो यद्दर्भोः सरसमेव ब्रह्म कुरुते। वही॰ २.११.१
३४. सुपिप्पला ओषधीर्देविगोपाः। वही॰ १.२९.१
३५. अथर्व॰ ६.१०९.१

३६. वही॰ ४.३७.५

३७. त्वामर्जुनौषधीनां पयो ब्रह्माण इद्विदु:। तासां त्वा मध्यादादद चरुभ्यो अपि धातवे। तै॰आ॰ ६.९.१

३८. ऋ॰ १०.३४.१

३९. अथर्व॰ ५.४.७

४०. वही॰ १९.३८.१

४१. वही॰ १९.३८.२

४२. शमि शमयास्मदघा द्वेषांसि।तै॰आ॰ ६.९.१

४३. श॰ब्रा॰ ६.७.१.१३

४४. (क) यदौदुम्बरी। ऊर्ग्वा उदुम्बर:। ऊर्जैव यज्ञस्य शिर: संभरति। तै॰आ॰ ५.२.४

(ख) औदुम्बराणि भवन्ति। ऊर्ग्वा उदुम्बर:। ऊर्जमेवावरुन्धे। वही॰ ५.९.३

४५. अथर्व॰ २०.१३६.१५

४६. ऐ॰ब्रा॰ ५.२४

४७. तै॰सं॰ ५.३.१२.२

४८. तै॰सं॰ ५.३.१२.३

४९. श॰ब्रा॰ ३०.८

५०. यद्वैणवी। तेजो वै वेणु:। तेजसैव यज्ञस्य शिर: संभरति। यद्वैङ्कती। भा एवावरुन्धे। तै॰आ॰ ५.२.४

५१. अथर्व॰ ११.१०.३

५२. वही॰ ४.३७.४; ५.४.३; ५.५.५,२०; १३१.१४

५३. शु॰यजु १७.१

५४. ऋ॰ १.१३५.८

५५. अथर्व॰ १९.३९.६; ५.४.३

५६. ऊर्ध्वमूलमवाक्छाखम्। वृक्षं यो वेद संप्रति। न स जातु जन: श्रद्दध्यात्। मृत्युर्मा मारयादिति:। तै॰आ॰ १.११.५

५७. श॰ब्रा॰ ६.७.३.७

५८. शं वात: शं हिते घृणि: शमु ते सन्त्वोषधी:। कल्पन्तां ते दिश: सर्वा:। तै॰आ॰ ६.७.३

५९. वरणो वारयादिदं देवो वनस्पति:। आर्त्यै निर्ऋत्यै द्वेषाश्च वनस्पति:। वही॰ ६.९.२

६०. अपो याचामि भेषजम्। वही॰ ४.४२.४

६१. वही॰ ३.९.२८

६२. शु॰यजु॰१३.१८

अक्षैर्मा दीव्य: कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमान:।
तत्र गाव: कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्य:।।

ऋग्वेद–१०/३४/१३

यह सबके स्वामी सबके प्रेरक प्रभु मुझे उस बात को कहते हैं कि पासों से जुआ मत खेल। निश्चय से खेती को ही कर। कोई भी मार्ग, जिससे कि हम एक ही दिन में धनी होना चाहते हैं, ठीक नहीं है। ऐसे मार्गों का प्रतीक ही यहाँ जुआ है। इन मार्गों से न चलना ही मनुष्य के लिये श्रेयस्कर है। कृषि प्रधान जीवन ही जीवन है। श्रम से धनार्जन के मार्गों का कृषि प्रतीक है। मनुष्य को पुरूषार्थ से ही धन कमाना चाहिए, यूँ ही धन प्राप्त की कामना हमें पौरूषशून्य बनाती है। प्रभु कहते हैं कि कृषि से प्राप्त होने वाले धन में ही तू रमण कर, आनन्द का अनुभव कर। उसी धन को बहुत माना हुआ तू चित्त में संतोष को धारण कर। उस कृषि कर्म में गौ आदि पशुओं की कमी नहीं। वो तेरे जीवन के लिये आवश्यक दूध आदि पदार्थों के प्राप्त कराने वाले होंगे। हे जुए में प्रेरित व्यक्ति तू यह समझ ले कि उस कृषि कर्म में ही तेरी पत्नी भी तेरे लिये उत्तम सन्तानों को जन्म देने वाली होती है, अर्थात् सब प्रकार से घर उत्तम बनाने के लिये आवश्यक है कि हम प्रधान जीवन से धनार्जन की कामना करें। **– हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार**

कौटिलीय अर्थशास्त्र में कृषि-कर्म

❑ डॉ. रेनू के. शर्मा.....✍

भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है । कृषि का प्राणि समुदाय के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है । स्वस्थ मानव शरीर के लिए आवश्यक पोषक तत्त्वों की प्राप्ति एवं पूर्ति के लिए विविध स्रोतों यथा-अनाज, दालें, फल एवं सब्जियों की महती आवश्यकता होती है, जिन्हें सुचारु एवं सुनियोजित कृषि से ही प्राप्त किया जा सकता है ।

शास्त्रों में सुव्यवस्थित एवं सफल कृषि हेतु अनेक उपाय बताये गये हैं । तदनुसार प्रस्तुत शोधपत्र का लक्ष्य कौटिलीय अर्थशास्त्र के अध्यक्ष-प्रचार नामक द्वितीय अधिकरण के 'सीताध्यक्ष' नामक ४१ वें प्रकरण में कृषिकर्म का वर्णन किया गया है । अर्थशास्त्र में कृषि से सम्बन्धित कर्मों को 'सीता' कहा गया है ।

वैदिक काल से अद्यावधि पर्यन्त कृषि की महती उपादेयता अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है । कृषि को आजीविका के सर्वोत्कृष्ट साधन के रूप में स्वीकार किया गया है । यतः यह सुख-समृद्धि तथा प्रमुख जीवनाधायक स्वरूप है । कृषि मानव-कल्याण की स्रोतस्विनी है । यजुर्वेद में राजा के प्रमुख कर्तव्यों में कृषिकर्म का वर्णन प्राप्त होता है **कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा** ।[१] वेद में न केवल कृषिकर्म की प्रशंसा प्राप्त होती है अपितु कृषि के द्वारा प्रभूत अन्नोत्पादन की प्राप्ति को भी स्वीकार किया गया है-**सुसस्याः कृषीकृधि** ।[२]

कौटिलीय अर्थशास्त्र के द्वितीय अधिकरण के चौबीसवें अध्याय के इक्तालीसवें प्रकरण- सीताध्यक्ष में कृषि-कर्म, उसका रक्षण एवं समुन्नति के लिए विस्तारपूर्वक विवेचन प्राप्त होता है।

अर्थशास्त्र में कृषि, पशुपालन तथा व्यापार - इन तीनों के सम्मिलित रूप को वार्ता कहा गया है -**कृषिपशुपालने वाणिज्या च वार्ता** ।[३]

स्मृतियों में भी वार्ता तथा कृषि-कर्म का उल्लेख प्राप्त होता है ।

मार्कण्डेय पुराण में नारायण के पुत्र ब्रह्मा को कृषि के प्रथम आविष्कारक बताया गया है -

ब्रह्मा स्वयंभूगर्भवान् हस्तसिद्धिं च कर्मजाम् ।
ततः प्रभृतयौषधयः कृष्टपच्यास्तु जज्ञिरे ।।[४]

न केवल ब्राह्मणादि वर्णो के लिए अपितु समस्त मनुष्यों के लिए कृषि-कर्म को आवश्यक कर्म बताया गया है-

(क) षट्कर्म निरतो विप्रः कृषिकर्म च कारयेत्।[६]
(ख) क्षत्रियोऽपि कृषिं त्वा...।[७]
(ग) कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता।[८]
(घ) कुर्यात् कृषिं प्रयत्नेन सर्वसत्वोपजीविनीम्।[९]

अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को अन्न प्राप्ति के प्रकृष्टोपकारक कृषि को प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए ।

कृषि-अध्यक्ष -सीताध्यक्ष एवं उसका कृषि विषयक ज्ञान-कौटिलीय अर्थशास्त्र में कृषि-कर्म के रक्षक को सीताध्यक्ष कहा गया है जो कृषि-कर्म का मुख्य प्रबन्धन अधिकारी है अथवा प्रबन्धकर्ता है जिसको कृषिशास्त्र, शुल्वशास्त्र (भूमि आदि की पहचान तथा नापन आदि का विश्लेषण) तथा वृक्षविज्ञान का समुचित ज्ञान हो अथवा उक्त त्रिविध (कृषि, शुल्व तथा वृक्ष) विद्याओं के विशेषज्ञ-मण्डल को सहायक नियुक्त करे तथा यथासमय अन्न, फूल, फल, शाक, कन्दमूल, सन, जूट और कपास आदि बीजों का सङ्ग्रह करे- **सीताध्यक्षः कृषितन्त्रशुल्ववृक्षायुर्वेदज्ञस्तज्ज्ञसखो वा सर्वधान्यपुष्पफलशाककन्दमूलवाल्लिक्यक्षौमकार्पासबीजानि यथाकालं गृह्णीयात्** ।[१०]

सङ्ग्रहित बीजों को वह क्रीतदासों, सेवकों एवं सपरिश्रम दण्ड को भुगतने वाले अपराधियों के द्वारा कई बार जोती गयी भूमि में बुवाये-**बहुहलपरि-**

कृष्टायां स्वभूमौ दासकर्म करदण्डप्रतिकर्तृभिर्वापयेत्।[११]

कृषि के साधनों यथा हल-बैल आदि से उक्त बीज बोने वालों का कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए अर्थात् केवल कृषि-कर्म के समय ही वे उन साधनों का प्रयोग करे अन्यथा नहीं -**कर्षणयन्त्रोपकरण-बलीवर्दैश्चैषामसंगं.....कारयेत् ।**[१२]

साथ ही कृषि-साधनों की रक्षा हेतु अन्यपुरुषों की नियुक्ति की जानी चाहिए । तथैव कारीगरों-लुहार, बढ़ई, मेदक, रस्सी बनाने वाले तथा सपेरों से भी इन कर्मचारी पुरुषों का संसर्ग नहीं होने दिया जाना चाहिए, यदि उनसे सम्बन्धित कोई कार्य हो तभी उन्हें परस्पर मिलाया जाना चाहिए- **कारुभिश्च कर्मारकुट्टाकमेद-करज्जुबर्तकसर्पग्राह्यादिभिश्च ।**[१३]

यदि उक्त कर्मचारियों से कृषिकर्म में कुछ हानि हो जाये तो उसकी पूर्ति उन्हीं से दण्डस्वरूप की जाये-**तेषां कर्मफलविनिपाते तत्फलहानं दण्डः ।**[१४]

कृषि-कर्म में सिंचाई का विशेष महत्त्व होता है जिसके फलस्वरूप उत्कृष्ट सस्यसम्पदा की प्राप्ति होती है । सिंचाई के विविध साधनों में नैसर्गिक स्रोत -वर्षा-अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

(क) उत्कृष्ट वर्षा की स्थिति- कौटिलीय अर्थशास्त्र के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रदेशों में होने वाली वर्षा के तीन भाग किये जाने चाहिए । उनमें प्रथम-श्रावण -कार्तिक में में तथा द्वितीय एवं तृतीय भाग-भाद्रपद-आश्विन में वर्षा होनी चाहिए । तात्पर्य यह है कि वर्षा के दिनों में जितनी वर्षा हो, उसके तीन भाग करके-एक भाग श्रावण और कार्तिक में तथा शेष दो भाद्रपद एवं आश्विन में बरसे तो वह संवत्सर बहुत अच्छा होता है तथा इस प्रकार की वर्षा फसल के लिए लाभदायक होती है-**वर्षात्रिभागः पूर्वपश्चिममासयोर्द्वौ त्रिभागौ मध्यमयोः सुपमरूपम्।**[१५]

(ख) सुखद वर्षा के चिह्न-अर्थशास्त्र में भिन्न-भिन्न स्थितियों एवं परिस्थितियों में होने वाली वर्षा के माप द्वारा समृद्ध सस्य-सम्पदा का वर्णन प्राप्त होता है-

(१) जब बृहस्पति मेष राशि पर सङ्क्रमण करे, गर्भाधान अर्थात् मार्गशीर्ष आदि छः मासों में कुहरा, वर्षा एवं बादल आदि दिखाई दें, शुक्र ग्रह की उदय एवं अस्त गति तथा आषाढ़ माह की पञ्चमी आदि नौ तिथियों में उसका संचार हो तथा सूर्य के चारों ओर मण्डल दिखाई दे - उक्त समस्त चिह्न अच्छी वर्षा के सूचक हैं - **तस्योपलब्धिर्बृहस्पतेः स्थानगमनगर्भाधानेभ्यः शुक्रोदयास्तमयचारेभ्यः सूर्यस्य प्रकृतिवै ताच्च ।**[१६]

(२) जब सूर्य के चारों ओर मण्डलाकार आकृति दृष्टिगत हो तो बीज-सिद्धि अर्थात् अनाज के अच्छे दानों का अनुमान करना चाहिए । यदि बृहस्पति वृष राशि का हो तो अच्छी फसल का कारण हो तो अच्छी वृष्टि का अनुमान करना चाहिए-**सूर्याद् बीजसिद्धिः । बृहस्पतेः सस्यानां स्तम्बकारिता । शुक्राद्वृष्टिरिति ।**[१७]

(३) निरन्तर सात दिन में तीन बार वर्षा उत्तम है तथा वर्षा ऋतु में अस्सी बार बूँदों की वर्षा भी उत्तम सङ्केत है । यदि साठ बार से धूप से युक्त वृष्टि पड़े तो इस प्रकार की वृष्टि लाभदायक होती है -

त्रयः सप्ताहिका मेघा अशीतिः कणशीकराः ।
षष्टिरातपमेघानामेषा वृष्टिः समाहिताः ।।[१८]

(४) हवा के चलने तथा धूप के खिलने का अन्तर छोड़कर यदि वर्षा हो तथा यदि तीन-तीन दिन हल चलाने का अवसर देकर वर्षा हो तो उत्तम फसल होने का अनुमान करना चाहिए-

वातमातपयोगं च विभज्यान्यत्र वर्षति ।
त्रीन्करीपांश्च जनयस्तत्र सस्यागमो ध्रुवः।।[१९]

(ग) वृष्टि परिमाण ज्ञान के अनन्तर बीज-वपन-समृद्ध सस्य हेतु वृष्टि मुख्य कारण होती है इसलिए वर्षा के अनुपात का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् ही बीज बोने चाहिए -

ततः प्रभूतोदकमल्पोदकं वा सस्यं वापयेत् ।[२०]

अर्थात् वृष्टि के परिमाण को भली-भाँति जानने के बाद ही बीज बोने का कार्य करना चाहिए जिससे अच्छी फसल हो तथा बीज भी नष्ट न हों ।

(घ) क्षेत्र में बोये जाने वाले बीज का संस्कार-कौटिलीय

अर्थशास्त्र में क्षेत्र में बोये जाने वाले बीज का संस्कार किस प्रकार किया जाय, इस विषय का व्यापक विवेचन किया गया है । धान के बीजों को रात के समय ओस में और दिन के समय धूप में सात दिन तक रखा जाये । कोशीधान अर्थात् मूँग उड़द आदि के बीज को -इसी प्रकार तीन दिन-रात या पाँच दिन-रात ओस और धूप में रखा जाये । कण्डबीज अर्थात् ईख आदि के बीजों को (कण्डबीज=जो टुकड़े के रूप में रखकर बोया जावे ईख आदि) कटी हुई जगहों में शहद, घी अथवा सूकर की चर्बी के साथ गोबर मिलाकर लगा देना चाहिए । सूरण आदि कन्दों के कटे हुए स्थानों पर गोबर मिले हुए शहद अथवा घी से लेप करना चाहिए । अस्थिबीजों (अर्थात् फल के भीतर से निकलने वाले बीज=कपास आदि के बीजों) को गोबर आदि से लपेटकर (अर्थात् गोबर के बीच में उनको अच्छी तरह से मलकर) रखा जाये, फिर उनको बोया जाये । आम, कटहल आदि वृक्षों के बीजों को एक गढ्ढे में डालकर कुछ गर्मी दी जाये, फिर ठीक समय उनको गाय की हड्डी और गोबर मिलाकर रखा जाये -उक्त प्रकार से इन सब बीजों का संस्कार करके फिर इनको खेत में बोना चाहिए -

तुषारपायनमुष्णशोषणं चासप्तरात्रादिति धान्यबीजानां त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा कोशीधान्यानां मधुघृतसूकरवसाभिः शकृद्युक्ताभिः कांडबीजानां छेदलेपो मधुघृतेन कन्दानाम्, अस्थिबीजानां शकृदालेपः, शाखिनां गर्तदाहो गोस्थिशदि्भः काले दौहृदं च ।[२१]

(ङ) बीज-रक्षण- उक्त रीति से बीजों को बोये जाने के बाद, जब इनमें अङ्कुर निकल आये तब गीली छोटी मछलियों की खाद लगाकर, सैढ़ के दूध से इन्हें सींचे । ऐसा करने से इन पौधों को कीट इत्यादि हानि नहीं पहुँचाते-**प्ररुढांश्चाशुष्ककटुमत्स्यांश्च स्नुहिक्षीरेण वापयेत् ।**[२२]

(च) बीज-वृद्ध्यर्थक प्रार्थना-बीजों को बोने से पहले उन्हें सुवर्ण के जल से (जल में सुवर्ण का संयोग कर दिया गया हो) भीगी हुई प्रथम मुठ्ठी भरकर बोया जाये, उसको सुवर्ण के जल से भिगोकर ही बोया जाये तदनन्तर निम्नलिखित मन्त्र को पढ़ा जाये-

प्रजापतये काश्यपाय देवाय च नमः सदा ।
सीता मे ऋध्यतां देवी बीजेषु च धनेषु च ।।[२३]

अर्थात् प्रजापति (प्रजाओं को जीवन देने वाले), कश्यप के पुत्र (सूर्य पुत्र), देव (पर्जन्य=मेघ) के लिए हमारा सदा नमस्कार ! सीता अर्थात् कृषि देवी ! हमारे बीजों तथा धन-सम्पदा में सर्वदा वृद्धि प्रदान करें ।

(छ) धान्य-सङ्ग्रहण- कौटिल्य अर्थशास्त्र में धान्य-सङ्ग्रहण के विषय में भी निरूपण किया गया है। सही समय पर तैयार हुई फसल को सुरक्षित स्थान में रखवा देना चाहिए । भूसा आदि वस्तुओं को भी उठवा कर रख देना चाहिए -

यथाकालं च सस्यादि जातं जातं प्रवेशयेत् ।
न क्षेत्रे स्थापयेत्किञ्चत्पलालमपि पण्डितः।।[२४]

धान्य आदि रखने के स्थान को प्रकार कहा गया है । ऐसे स्थानों को कुछ ऊँची जगह बनवाना चाहिए । मजबूत तथा चारों ओर से घिरे हुए अन्नागारों का निर्माण किया जाना चाहिए तथा इसके ऊपर के हिस्सों को न तो मिला हुआ रखना चाहिए न ही वे खाली रहने चाहिए-

प्रकराणां समुछ्रायान्वलभीर्वा तथाविधाः ।
न संहतानि कुवह्नत न तुच्छानि शिरांसि च ।।[२४]

(ज) कृषि-कर्म में नियोजित सेवकों हेतु पर्याप्त व्यवस्था- अन्तिम किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण बिन्दु-कृषि-कर्म में नियुक्त सेवकों से सम्बन्धित है जिसको स्पष्ट करते हुए कौटिल्य का कथन है कि क्षेत्रों की रखवाली करने वाले, ग्वाले, दास तथा अन्य कृषि-कर्म में नियोजित सेवकों के लिए प्रत्येक पुरुष के परिश्रम के अनुसार भोजनादि का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। साथ ही प्रत्येक मास का नियत वेतन भी दिया जाना चाहिए । तथैव अन्य सेवकों के लिए भी परिश्रमानुसार वेतन तथा भोजनादि की पर्याप्त व्यवस्था की जानी चाहिए-**पण्डवाटगोपालकदासकर्मकरेभ्यो यथापुरुषपरिवापं भक्तं कुर्यात्।सपादपणिकं मासं दद्यात्। कर्मानुरूपं कारुभ्यो भक्तवेतनम्।।**[२६]

(झ) श्रेष्ठ, मध्यम तथा अवर कोटि की फसलें- धान, गेहूं आदि फसलों को उत्तम फसल माना जाता है क्योंकि इनके बोने में परिश्रम थोड़ा और फल अधिक मिलता है । इसी प्रकार कदली आदि मध्यम होते हैं क्योंकि इनको बोने में परिश्रम के अनुसार फल भी कम मिलता है । ईख निम्न कोटि की फसल मानी जाती है क्योंकि इसको बोने में अधिक श्रम तदनन्तर मनुष्य, चूहे तथा अन्य कीड़ों आदि के उपद्रव तत्पश्चात् काटना, पीडना एवं पकाना होता है उसके पश्चात् ही फल प्राप्ति होती है ।मानव जीवन में कृषि की अनिवार्य एवं अपरिहार्य उपादेयता है । कृषि जीवनोत्पादक तत्त्वों की उत्पत्ति के कारक स्वरूप तो है ही साथ ही स्वस्थ तथा प्रदूषणमुक्त वायुमण्डल के लिए भी उपकारक है । ऋग्वेदीय मन्त्र में द्यूत नामक व्यसन में लिप्त रहने वाले व्यक्ति को सम्बोधित करते हुए कृषि के माहात्म्य को प्रस्तुत किया गया है-**अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमत् कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः । तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः।।**[२७]

अर्थात् हे द्यूतव्यसनी! जुए के पासों से मत खेल-कृषि को कर अर्थात् खेती करके अन्न को उपजा, खेती से प्राप्त अन्न धन-भोग में आनन्द कर तथा स्वयं को धन्य मानता हुआ प्रसन्न रह ! क्योंकि उस कार्य में गायें सुरक्षित हैं तथा रहेंगीं, उसमें पत्नी सुरक्षित प्रसन्न व अनुकूल रहेगी । तात्पर्य यह है कि द्यूत सदृश कर्म से उत्पन्न पापपूर्ण धन की उत्पत्ति से स्वयं को बचाकर स्वश्रम से उपार्जित कृषि से प्राप्त अन्न और भोग सर्वदा एवं सर्वथा श्रेष्ठ है । इससे पारिवारिक व्यवस्था तथा पशु सभी अनुकूल स्थिति में रहते हैं।यजुर्वेदीय मन्त्र में कृषि को अच्छी फसल, कल्याण, धन-सम्पदा आदि के रूप में बताया गया है- **कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ।**[२८] अथर्ववेद में स्पष्ट कहा गया है कि मानव-जीवन कृषि पर आश्रित है-**ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या उपजीवन्ति ।**[२९] पुनः पुनः देवताओं से कृषि-रक्षण की प्रार्थनायें प्राप्त होती हैं-

कृषिमश्विनावभिः रक्षतः।[३०]

अर्थात् हे अश्विनों! हमारी कृषि की रक्षा कीजिये।

अतः उक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि है कि न केवल वैदिक वाङ्मय में अपितु परवर्ती साहित्य में भी कृषि का विस्तृत एवं व्यापक विवेचन किया गया है जिससे कृषि का माहात्मय तो सिद्ध होता ही है साथ ही स्वस्थ वातावरण के लिए कृषि अत्यन्त उपयोगी है यह भी स्पष्ट होता है।

-पोस्ट डॉक्टोरल फेलो
विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र,
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय,नई दिल्ली

सन्दर्भ-सूचीः-

१. यजुर्वेद, ९/२२
२. यजुर्वेद, ४/१०
३. अर्थशास्त्र, १/४/१
४. (क) वार्ता कर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु । -मनु.१०/८०
(ख) कुसीद षिवाणिज्यपाशुपाल्यं विशः स्मृतम् ।-या.स्मृ. १/११९
५. मार्कण्डेय पुराण, ४६/७४ (द्रष्टव्य-४६/६५-७५)
६. पाराशरस्मृति, २/२
७. वही
८. पाराशरस्मृति, १/६४
९. बृहत्पाराशर, ५/१५८
१०. अर्थशास्त्र, २/२४/४१/१
११. अर्थशास्त्र, २/२४/४१/२
१२. अर्थशास्त्र, २/२४/४१/३
१३. अर्थशास्त्र, २/२४/४१/४
१४. अर्थशास्त्र, २/२४/४१/५
१५. अर्थशास्त्र, २/२४/४१/५
१६. अर्थशास्त्र, २/२४/४१/९
१७. अर्थशास्त्र, २/२४/४१/१०-१२
१८. अर्थशास्त्र, २/२४/४१/१३
१९. अर्थशास्त्र, २/२४/४१/१४
२०. अर्थशास्त्र, २/२४/४१/१५
२१. अर्थशास्त्र, २/२४/४१/३३
२२. अर्थशास्त्र, २/२४/४१/३४
२३. अर्थशास्त्र, २/२४/४१/३७
२४. अर्थशास्त्र, २/२४/४१/४३
२५. अर्थशास्त्र, २/२४/४१/४४
२६. अर्थशास्त्र, २/२४/४१/४०
२७. ऋग्वेद, १०/३४/१३
२८. यजुर्वेद, ९/२२
२९. अथर्ववेद, ८/१०/२४
३०. अथर्ववेद, १०/६/१२

वैदिक वाङ्मय में वर्णित कृषि-विज्ञान

❑ डॉ. तारेश कुमार शर्मा.....

वैदिक संहिताओं के अध्ययन से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि इस काल में आर्यों के आर्थिक जीवन में कृषि का बहुत अधिक महत्त्व था। कृषि से उत्पन्न अन्न ही आजीविका का मुख्य साधन माना जाता था। यही कारण है कि वेदों में स्थान-स्थान पर देवताओं से वर्षा के लिए प्रार्थनाएँ की गई हैं और नदियों से भी भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए प्रार्थनाएँ मिलती हैं। इस काल में आर्य कृषि को कितना महत्त्व देते थे, यह ऋग्वेद के इस कथन से स्पष्ट है-

''अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व।''[१]

जिसमें ऋषि कवष ऐलूष द्यूत कर्म की निन्दा करते हुए कहते हैं कि हे जुएँ में आसक्त मानव! तुम जुएँ के पासों से मत खेलों अपितु खेती करो, उससे जो वित्त प्राप्त हो उसे ही बहुत मानकर उसका भोग करो। उसी कर्म से तुम्हारी गाएँ और तुम्हारी पत्नी सुखी रहेगी। आर्यों की धारणा थी कि मानवों के कल्याण के लिए सर्वप्रथम देवताओं ने खेती का कार्य प्रारम्भ किया था।

ऋग्वेद के अनुसार अश्विन देवों ने सर्वप्रथम खेती का कार्य प्रारम्भ किया था। उन्होंने मनु को हल चलाना सिखाया और यव की खेती करने की शिक्षा दी। यथोक्तम्-**''दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः।''**[२]

ऋग्वेद में ही एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि विष्णु ने भूमि को कृषि योग्य बनाया और तदुपरान्त उसे लोगों को दिया-**''वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन्...।''**[३]

अर्थवेद में पृथु वैन्य नामक राजा को हल से भूमि जोतने की विद्या का आविष्कारक माना गया है- **तां पृथ्वी वैन्योऽधोक्तां कृषिं च सस्यं चाधोक्।**[४]

साथ ही अथर्ववेद का यह कथन-

''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।''[५]

भूमि मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ, यह स्पष्ट करता है कि वैदिक आर्य कृषि को अर्थ तंत्र का आधार मानते हुए शस्यश्यामला भूमि को सौभाग्य की सहस्र-धाराएँ पिलाने वाली माता के समान देखते थे।

वेदों में कृषि से सम्बन्धित अनेक ऐसे मंत्र मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि इस काल में कृषि कर्म अत्यन्त ही पवित्र माना जाता था। जैसा कि ऋग्वेद में कहा गया है-

''कृषन्नित् फाल आशितं कृणोति।''[६]

अर्थात् हल का फाल भूमि की कृषि करता हुआ ही-

श नं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं, शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः। शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः, शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम्।।[७]

अर्थात् हल के फाल हमारी भूमि की अच्छी तरह से जुताई करें। किसान बैलों के साथ खुशी से चलें। पर्जन्य उत्तम प्रकार से वृष्टि करके हमारा कल्याण करें। हल और फाल हमारे अन्दर आह्लाद धारण करें। दामोदर सातवलेकर के अनुसार यहाँ शुन शब्द जैसा हल का वाचक है वैसा ही पवित्रता, कल्याण, सुख, आनन्द, उन्नति, विजय, मंगल और प्रगति का वाचक है। जिस शब्द का अर्थ 'हल' होता है उसी का अर्थ कल्याण होता है। इस एक विशेषता पर विचार करने से सुगमता से पता चलता है कि वेद में कृषि का कितना महत्त्व है। मनुष्य जाति का यदि कल्याण हो सकता है तो वह खेती से अर्थात् हल से ही हो सकता है।

ऋग्वेद के कुछ मंत्रों में साधारण मानव को ही नहीं अपितु विद्वानों विप्रों को भी कृषि करने का आदेश दिया गया है–

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते येनौ वपतेह बीजम्। गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात्। सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नया निराहावान् कृणोतन सं वरत्रा दधातन्॥''[८]

अर्थात् कृषि कर्म ही यज्ञ है। उसे उत्तम यज्ञ भी कहा जा सकता है। विद्वानों! इस यज्ञ को करो। हलफालों को संयुक्त करो। जुँओं को फैलाओ। तैयार किये गये खेत में बीज बोओ, जिससे भरपूर अन्न पैदा हो। तुम्हारे सृणि अर्थात् हांसिये (दराँत) खेत को काटें। हलों से भूमि जोती जाती है। तदन्तर कृषक जुँओं को खोल देते हैं। इस यज्ञ में विप्र कृषक स्तोत्र-पाठ करते हैं। बैलों या पशुओं के लिए प्रपा अर्थात् जल-पान स्थान तैयार करो। वरत्र (वृत्त, वरियत्त या मोटी रस्सी) को पुर में बाँधो और अक्षय, सेवन योग्य जल से परिपूर्ण कुएं से जल निकालकर खेतों को सींचो।

अर्थववेद में कृषि के महत्त्व का पर्याप्त वर्णन मिलता है। अथर्ववेद के अनुसार मानव जीवन की प्रमुख समस्या अन्न है। जैसा कि कहा गया है–

''अन्ने समस्य यदसन् मनीषाः।''[९]

कृषि और अन्न पर मनुष्यों का जीवन निर्भर है–**''कृषिं च सस्यं च मनुष्या उपजीवन्ति।''**[१०] अतः इस समस्या के समाधान के लिए कृषि की उपज बढ़ाना, उसके सहायक तत्त्वों बीज आदि की उन्नत किस्म तैयार करना आवश्यक है। कृषि का कार्य सुयोग्य व्यक्ति ही करते थे। कवि (मेधावी, क्रान्तदर्शी) और धीर (विद्वान्) व्यक्ति इस कार्य को अपनाते थे और कृषि करते थे। यह कार्य सुख प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता था। यथोक्तम्–

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नयौ॥''[११]

कृषि गौरव का कार्य था, अतः इन्द्र और पूषा देवों को इसमें लगाया गया है–

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु।[१२]

अथर्ववेद का वर्णन है कि विराट् (ब्रह्म) मनुष्यों के पास पहुँचा। मनुष्यों ने उसे इरावती के नाम (अन्न समृद्धि) से पुकारा। उन्होंने उसे दुहकर कृषि और सस्य (अन्न) प्राप्त किया। कृषि और अन्न से ही सब मनुष्यों का काम चलता है। यही आजीविका का साधन है। जिसने कृषि में सफलता प्राप्त कर ली है, वह आजीविका में सफल हो जाता है। अतएव कृष्टराधि (कृषि में सफल) को 'उपजीवनीय' (सफल आजीविका वाला) कहा गया है।

अथर्ववेद में महिलाओं द्वारा पहने जाने वाले स्वर्णनिर्मित हल के फाल के ताबीज (मणि) का उल्लेख मिलता है। स्त्रियाँ ताबीज पहनकर प्रार्थनाएँ करती थी कि जिस प्रकार हल के फाल से जुती भूमि में बीज उगता है उसी प्रकार मुझमें प्रजा, पशु और हर प्रकार के अन्न उत्पन्न हो–

**यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति।
एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहित॥**[१३]

कतिपय ऐसे विशेषज्ञों का संकेत भी मिलता है जो भूमि को उपजाऊ बनाना जानते थे। इन विशेषज्ञों से प्रार्थना की गई है– **याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यमा धिया गामरिणीत चर्मणः।**[१४]

अर्थात् हे ऋभुओं! तुम अपनी जिस बुद्धि से (शचीभिः) अन्नों (चमसम्) को बनाते हो (अपिंशत) और जिस बुद्धि से भूमि को (गाम्) ऊपर के कठोर छिलके से (चर्मणः) बाहर निकालते हो (उन बुद्धियों के कारण ही तुम देव कहलवाते हो) ऋभु अर्थात् सम्राट के क्रिया कुशल विद्वान् लोग अपनी बुद्धि से अन्नों को बनाते हैं। प्रियव्रत वेदवाचस्पति के अनुसार वे कठोर छिलके को तोड़कर भूमि को बाहर निकालते हैं, इसका भाव यह है कि जो भूमियाँ ऊपर से इतनी कठोर हैं कि उनमें किसी प्रकार का अन्न उत्पन्न नहीं हो सकता, उन्हीं में से क्रिया-कुशल लोग वैज्ञानिक उपायों द्वारा उपजाऊ कोमल भूमि निकाल

लेते हैं। यहाँ अन्न (चमसम्) के साहचर्य से गौ का अर्थ भूमि करना पड़ेगा। चमड़े का अर्थ भूमि के ऊपर की कठोर पपड़ी या छिलका करना चाहिए। अभिप्राय यह है कि राज्य को ऐसे क्रिया कुशल विद्वान् भी तैयार करने चाहिए जो कृषि में नये-नये अन्न तैयार करते रहें और राष्ट्र की कृषि के अयोग्य कठोर भूमियों को वैज्ञानिक उपयों से कृषि योग्य बनाते रहें। वैदिक काल में आर्यों का आर्थिक जीवन बहुत कुछ कृषीव निर्भर था, अत: उन्होंने क्षेत्रपति[१५] नामक एक ऐसे देवता की भी परिकल्पना कर ली थी, जिसकी अनुकम्पा से उनके खेत फलते-फूलते थे और जिससे वे ये प्रार्थना किया करते थे कि उनके खेत सुफल बने और उनसे उसी प्रकार धन-धान्य का प्रवाह बहता रहे जैसा कि गौ से दूध की धाराएँ बहती हैं। ऋग्वेद में कृषि देवता क्षेत्रपति की स्तुति में अनेक मंत्र विद्यमान हैं जिनका ऋषि वामदेव है।[१६] अथर्ववेद के तीसरे काण्ड के सत्रहवें सूक्त का देवता कृषिबल है। इस सूक्त में स्पष्ट रूप से विधिपूर्वक कृषि कर्म का उल्लेख किया गया है। इसी वेद के सप्तम काण्ड के ७५वें सूक्त का देवता 'अघ्न्या:' है। इसमें कहा गया है कि-''**इमं गोष्ठमिदं सदो घृतेनास्मान् समुक्षत**'' यहाँ अभीष्ट कार्य पशुपालन है। इसी प्रकार के अन्य स्थल हैं जिसमें प्रकारान्तर से कृषि का संकेत मिलता है। यजुर्वेद में भी कृषि की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि कृषि का महान स्थान भूमि है-''**भूमिरावपनं महत्।**''[१७] दूसरे स्थान पर कहा गया है कि हे भूमि माता तुझे प्रणाम हो। तुझे कृषि के लिए हम स्वीकार करते हैं। तुझे अपनी रक्षा के लिए ग्रहण करते हैं। तुझे हम ऐश्वर्य के लिए चाहते हैं और तुझे अपने पोषण के लिए माता के तुल्य वन्दनीय समझते हैं-

नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या....।
कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा॥[१८]

अन्यत्र भी कहा गया है कि कृषि के द्वारा हम लोगों को संसार के सब ऐश्वर्य प्राप्त हो। यजुर्वेद में ''**निकामे निकामे न: पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधय: पच्यन्ताम्**'' आदि वैदिक राष्ट्रगीतों में कृषि संस्कृति का मनोहारी वर्णन है। यहाँ तक कि ''**त्र्यम्बकं यजामहे**'' आदि मृत्युञ्जय मंत्र में ''**उर्वारुकमिव बन्धनात्**'' से खेतों में पककर अपनी लता से अलग होते उर्वारुक का चित्र आँखों के सामने आ जाता है। यजुर्वेद का निम्न मंत्र दर्शनीय है- **मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमां अस्तु सूर्य:।**
माध्वीर्गावो भवन्तु न:।[१९]

अर्थात् वनस्पतियाँ हमारे लिए मधुमय हो, सूर्य हमारे लिए मधुमान् हो, भूमियाँ हमारे लिए मधुमति हो, यह कहता हुआ वेद सूचित करता है कि सूर्य और भूमि से वनस्पतियों में मधु उत्पन्न होता है जिससे वे हमारे लिए लाभदायक होती हैं।

व्यक्ति सुवर्ण एवं पशुधन के साथ कृषि की भी तीव्र कामना करता है। वह चाहता है कि खेती करके मुझे बहुत धन-धान्य प्राप्त हो। वह प्रार्थना करता है-**कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च मे औद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।**[२०]

इसी प्रकार वेद में एक अन्य स्थान पर कहा गया है-**सीरं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।**[२१]

अर्थात् मेरी भूमि में हल चलाने का कार्य यज्ञेन-विद्वानों की सत्संगति, उनके उपदेश तथा निर्देशन में समर्थ बने। ब्राह्मण ग्रन्थों से भी कृषि के महत्त्व का पता चलता है। शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट कहा गया है कि हल के फाल शुभ रीति से भूमि को जोतें और शुभ रीति से कृषक लोग बैलों को चलावें। यहाँ इस प्रसंग में भूमि की जुताई के लिए कृषक को सुझाव दिया गया है। यहाँ तक कि शतपथ ब्राह्मण का एक पूरा अध्याय जुताई से सम्बन्धित कर्मकाण्डों का वर्णन करता है। शतपथ ब्राह्मण में भी कृषि देवता क्षेत्रपति की उपासना का उल्लेख मिलता है किन्तु इसकी विशेषता यह है कि इसमें कृषि देवता क्षेत्रपति को मित्र-वरुण तथा आदित्य जैसे महान् देवों के साथ हवि देने का विधान प्रस्तुत किया गया है जो क्रमश: कृषि के महत्त्व का परिचायक है। पंचविश ब्राह्मण के अनुसार कृषि के आधार पर ही आर्य और

व्रात्य के बीच अन्तर किया जाता था। खेती न करने वाले आर्यो को व्रात्य कहा जाता था और उन्हें हीन दृष्टि से देखा जाता था। एन.सी. बंद्योपाध्याय के अनुसार व्रात्य लोग पूर्णरूप से यायावरी जीवन का परित्याग नहीं कर पाये थे। तैत्तिरीय ब्राह्मण में आजीविका के साधन को 'उपजीवा' नाम दिया गया है। कृषि विशेषज्ञों को ''अन्नविद:'' नाम देते हुए कहा गया है कि सर्वप्रथम उन्होंने कृषि के नियम (याम) बनाये थे-''**यद् यामं चक्रुः निखनन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया।**''[२२]

इस मंत्र में कृषक के लिए 'कार्षीवण' शब्द का प्रयोग किया गया है। वैदिक कालीन कृषि की महत्ता का स्पष्ट उल्लेख तैत्तिरीय उपनिषद् में भी मिलता है जहाँ अन्न को ब्रह्म कहा गया है। अन्न से ही सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न होते हैं और अन्न से ही लोगों का जीवन चलता है। विनष्ट होकर सभी अन्न मिल जाते हैं और अन्न में ही एकरूपता प्राप्त करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि अन्नोत्पादन के लिए तत्कालीन समाज के लोग अधिक जागरूक थे तथा अधिक से अधिक अन्न उत्पादन करने में विश्वास रखते थे। यही कारण है कि उपनिषदों का वाक्य ''**अन्नं बहु कुर्वीत**'' का स्मरण किया जाता है।

यजुर्वेद में राजा के जिन चार प्रमुख कर्त्तव्यों का वर्णन मिलता है उनमें कृषि को उन्नत करना राजा का प्रमुख कर्त्तव्य बताया गया है। राजा के चार कर्तव्य हैं- (१) कृषि को उन्नत करना, (२) जन-कल्याण करना, (३) अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करना, (४) जनता को सुख सुविधा प्रदान करना।

अथर्ववेद के अनुसार राजा कृषि को विशेष रीति से बढ़ावे- ''**नो राजा नि कृषिं तनोतु।**''[२३] अथर्ववेद में अन्यत्र भी कहा गया है कि सरस्वती नदी के निकट देवताओं ने मनुष्यों को रसयुक्त यव दिया था, इन्द्र ने हल पकड़ा था ओर मरुद्गण कृषक बने थे। यथोक्तम्-**देवा इमं मधुना संयुतं यवं सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः। इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः॥**[२४]

यह विवरण इस बात का सङ्केत देता है कि वैदिक कालीन समाज में राजा के सहयोग एवं सक्रिय भागीदारी की अपेक्षा की जाती थी। अतः स्पष्ट है कि राजा का पहला कर्त्तव्य कृषि की उन्नति के लिए प्रयास करना था।

वास्तव में वैदिक काल में कृषि के महत्त्व में वृद्धि का एक विशेष कारण जनसंख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होना था जिसके कारण ऋषि का महत्त्व भी बढ़ता गया। यही कारण है कि आर्यों के जीवन में कृषि की उपयोगिता एवं महत्ता ने इसके दैवी विधान की अवधारणा को जन्म दिया। परिणामतः उत्तरवैदिक काल में अन्न को ''ब्रह्म'' की संज्ञा दी गई। साथ ही अन्नदात्री धरणी को माता एवं पुत्र को धरा-पुत्र उद्घोषित करने में गौरवानुभूति की गयी।

- वरिष्ठ अध्यापक (संस्कृत)
रा.व.मा.बाल विद्यालय, लिबासपुर, दिल्ली

संदर्भ सूची

१. ऋग्वेद, १०/३४/१३
२. तत्रैव, ८/२२/६,
तत्रैव, १/११७/२१
३. तत्रैव, ७/१००/४
४. अथर्ववेद, ८/१०/४२
५. तत्रैव, १२/१/१२
६. ऋग्वेद, १०/११७/७
७. तत्रैव, ४/५७/८
८. तत्रैव, १०/१०१/३-४
९. अथर्ववेद, २०/७६/४
१०. तत्रैव, ८/१०/४२
११. तत्रैव, ३/१७/१
१२. तत्रैव, ३/१७/४
१३. तत्रैव, १०/६/३३
१४. अथर्ववेद, ३/६०/२
१५.वर्तमान में क्षेत्रपति का ही परिवर्तित रूप खेतरपाल देवता है, जिसकी राजस्थान के कृषक समाज में मनौती मानी जाती है। गाँव के बाहर इसके मन्दिर भी मिलते हैं। उत्पन्न कृषि का प्रथम अंश इस देवता को समर्पित किया जाता है। राजस्थान के ग्राम्य लोकगीतों में भी खेतरपाल देवता की स्तुति की जाती है।
१६. ऋग्वेद, ४/५७
१७. यजुर्वेद, २३/४६
१८. तत्रैव, ९/२२
१९. तत्रैव, १२/२९
२०. तत्रैव, १८/९
२१. तत्रैव, १८/७
२२. अथर्ववेद, ६/११६/१
२३. अथर्ववेद, ३/१२/४
२४. अथर्ववेद, ६/३०/१

वेदों में कृषि-विज्ञान

❑ डॉ. भूपेन्द्र कुमार राठौर.....✍

मानवीय जीवन दर्शन का समृद्ध कोष वेद है। वेद मानव को सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक इत्यादि विषयों का ज्ञान ही नहीं देते अपितु प्राणिमात्र के प्रति सर्वांगीण विकास की शिक्षा प्रदान करते है। वेद आजीविका हेतु लिखता है– **df"kfer d"kLof** अर्थात् तु परिश्रम करके पृथ्वी पर कृषि कार्य कर क्योंकि जिसका जो कर्तव्य है, वही उसका सत्कर्म है। ऋग्वैदिक देव अश्विन् ने सर्वप्रथम आर्य लोगों को हल के द्वारा बीज बोने की कला सिखलाई है।[२]

वैदिक आर्यों के जीवन निर्वाह के लिए कृषि का इतना अधिक महत्व रहा है कि उन्होंने क्षेत्रपति नामक एक देवता की स्वतन्त्र सत्ता मानी है तथा उनसे क्षेत्रों के सस्य सम्पन्न होने की प्रार्थना की है। इस देव की स्तुति पशु एवं अश्व प्रदान करने के लिए एवं द्यावापृथिवी वनस्पति, सलिलों आदि को मधुर बनाने के लिए भी की जाती है। जैसे–

{k=L; ifruk o;a fgrsuso t;kef lA
xke'o ik"kf;Rok l uks eykrh n'k%AA[३]

अथर्ववेद में पृथ्वीवैन्य नामक राजा को हल से भूमि जोतने की विद्या का आविष्कारक माना गया है। अतएव भूमि एवं पर्जन्य (वर्षा) को प्रणाम किया है।[४]

कृषि कार्य गौरव का कार्य माना जाता है इन्द्र और पूषा देव भी इस ओर प्रवृत्त रहे हैं।[५] यजुर्वेद में राजा के प्रमुख चार कार्यों का वर्णन है, जिनमें कृषि को अधिक प्रमुखता मिल रही है। (क) कृषि की उन्नति (ख) जन कल्याण (ग) राष्ट्र की श्री वृद्धि व (घ) राष्ट्र को पुष्ट बनाना। शतपथ ब्राह्मण में सम्पूर्ण कृषि को चार शब्दों में वर्णित किया गया है – (क) कर्षक– खेत की जुताई करना (ख) वपन– बीज बोना (ग) लवन– पके खेत की कटाई करना (घ) मर्दन– मडाई करके स्वच्छ अन्न प्राप्त करना।[६] ऋग्वेद–यजुर्वेद और अथर्ववेद में कृषि कार्यों से सम्बन्धित अनेक सूक्त मिलते है। इनमें कृषि सम्बन्धी मुख्य बाते ये दी गई है– (क) बीज बोने से पहले खेत को उचित प्रकार से साफ करें। (ख) कृषि हेतु बैल, हल आदि उत्तम हो। (ग) उत्तम कोटि के बीज बोए जाएं (घ) अनुकूल ऋतु में बीज बोयें (ङ) यथा समय सिंचाई निराई करें (च) खेती तैयार होने पर कटाई मड़ाई करें।[७]

वैदिक काल के कृषि कर्म के प्रकारों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय खेती आज के समान ही होती थी। खेत को हलों से जोतकर बीज बोने के योग्य बनाया जाता था। हल का साधारण नाम 'लांगल' या 'सीर' था जिसके अगले नुकीले भाग को 'फाल' कहते थे। फाल बडा ही नुकीला तथा चौडा होता था। हल की मूँठ बड़ी चिकनी होती थी।[८] हल में एक मोटा बाँस बाँधा जाता था। जिसके ऊपर जुआ रखा जाता था, जिसमें रस्सियों से बैलों का गला बाँधा जाता था। हल खींचने वाले बैलों की संख्या छः, आठ, बारह अथवा चौबीस तक होती थी, जिससे हल के बृहदाकार होने का अनुमान किया जाता है। हलवाहा (कीनाश, किसान) अपने पैनों[९] से इन बैलों को हांकता था। वैदिक काल में वैश्य लोग ही अधिकतर खेती किया करते थे, क्योंकि 'अष्ट्रा'

उनका चिह्न बतलाया गया है। खेत उपजाऊ होते थे। उनके उपजाऊ न होने पर खाद डालने की व्यवस्था थी। खाद के लिए गाय का गोबर (करीष) काम में लाया जाता था।

फसल के पक जाने पर उसे हँसुआ से काटा जाता था,[१०] अनाज को पूलियों में बांधते थे तथा खलिहान में लाकर भूमि पर माँडते थे, जिससे अनाज डंठल से अलग हो जाता था। अनाज को बर्तनों से नापकर कोठिलों में रखते है। नापने वाले बर्तन को 'ऊर्दर' कहते थे।[११] जिस घर में अनाज रखा जाता था उसे 'स्थिवि' कहते थे।

अथर्ववेद– यजुर्वेद और तैतिरीय संहिता में भूमि के अनेक भेदों का उल्लेख है–उनमें तीन मुख्य भेद बताये है– उर्वरा (उपजाऊ), इरिण (ऊषर), शस्य (चरागाह के योग्य)[१२]। मिट्टी के भी विविध भेदों का नामोल्लेख इसमें वर्णित है– मृद् मृत्तिका (चिकनी मिट्टी), रजस् भूमि (सामान्य मिट्टी) अश्मा, अश्मन्वती (पत्थर वाली) किंशिल (छोटे कंकड वाली) ईरिण्य (ऊषर वाली) उर्वरा (उपजाऊ) सिकता (बालू)[१३]।

यजुर्वेद में कृषि के दो भेदों का उल्लेख है– वर्ष्य– वर्षा पर निर्भर रहने वाली कृषि तथा कूप, तालाब, नहर आदि सिंचाई के अन्य साधनों पर निर्भर नहीं रहने वाली कृषि। इससे भिन्न कृष्ट तथा अकृष्ट भेद भी मिलते है, जिसमें जुते खेत में कृषि द्वारा उत्पन्न अन्न जैसे चना, जो, बाजरा आदि जोत रहित भूमि में उत्पन्न अन्न में जंगली धान, फल फूल आदि आते है।[१४]

उस समय खेतों की सिंचाई का भी प्रबन्ध था। खनित्रिमा अर्थात् खोदने में उत्पन्न होने वाला जल तथा स्वयंजा अर्थात् अपने आप उत्पन्न होने वाला नदी का जल के भेद से जल का द्विधा विभाजन मिलता हैं। कूप तथा अवट का ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है। ऐसे कुओं का जल कभी कम नहीं होता। कुओं से पानी पत्थर के बने चक्कों से निकाला जाता है। जिनमें रस्सियों के सहारे जल भरने वाले कोश बंधें रहते थे।[१५] कुएं से पानी निकालने के पश्चात् लकड़ी के बने पात्र. में डाला जाता था। कूपों का उपयोग मनुष्यों तथा पशुओं के निमित्त जल निकालने के लिए ही नहीं किया जाता था अपितु इनसे सिंचाई कार्य भी होता था। कुओं का जल बड़ी नालियों से बहता हुआ खेतों में पहुंचता और उनको उपजाऊ बनाता था। वर्तमान में भी पंजाब तथा दिल्ली के आसपास इसी प्रकार की प्रक्रिया प्रचलित है।[१६]

यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में बोए जाने वाले अनाजों के नाम मिलते है। ऋग्वेद में यव तथा धान का उल्लेख है, किन्तु इनके अर्थ में मतभेद है। बोए जाने वाले अनाजों में व्रीहि (धान), यव (जौ), मुद्ग (मूँग), माष (उडद), गोधूम (गेहूं), नीवार (जंगलीधान), प्रियंगु (मसूर) श्यामक (सॉवा) तिल, बाजरा, खीरे (उर्वारु) का नाम भी मिलता है। व्रीहि ऋग्वेद में न होकर पिछले ग्रन्थों में उल्लिखित है।[१७]

तैत्तिरीय संहिता में काले तथा सफेद धान में अन्तर किया गया है तथा धान के तीन मुख्य भेद बताये गये है– कृष्ण (काला) आशु (जल्दी जमने वाला) तथा महाव्रीहि (बड़े दानों वाला)[१८]। अनाज बोने की भिन्न–भिन्न ऋतुओं का विशिष्ट वर्णन तैत्तिरीय संहिता में किया गया है। इसके देखने से बीज बोने का समय आज कल के समान ही जान पडता है। जौ को हेमन्त ऋतु में बोया जाता है और यह ग्रीष्मकाल में पकता था। तिल तथा दाल वाले अनाज शीतकाल में बोए जाते थे। फसल साल में दो बार बोई जाती थी। कौषीतकि ब्राह्मण के अनुसार शीतकाल में बोई गई फसल चैत्र मास में पक जाती थी। आजकल की तरह उस समय भी किसानों के सामने हानि पहुँचाने वाले कीडों से खेतो को बचाने

की समस्या उपस्थित थी। कृषि नाशक तत्वों को 'ईति' कहा है। अथर्ववेद में कृषि नाशक निम्न तत्वों का उल्लेख है –

¼f½ vfrof"V vkj vukof"VAf‘

¼,,½ rhoz/kqi vkj fgeikrA"Œ

¼…½ vk[kqA"f

¼†½ rnq] irax] tH;] miDolA""

छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है कि एक बार सम्पूर्ण कुरु प्रदेश की खेती को टिड्डियाँ खा गई थी। इन्हें 'मटची' कहा है।[२३] ऋग्वेद में उर्वरक के लिए 'क्षेत्रसाधम्' (खेत की शक्ति बढाने वाला शब्द) है।[२४] वेदों में खाद के लिए करीष, शकन्, शकृत् शब्दों का प्रयोग मिलता है।[२५] यह खाद गाय, बैल, भैस आदि की होती थी। वेदों में खाद के लिए गोमय शब्द का उल्लेख नहीं है।

कृषि से सम्बन्धित अन्य शब्दों में गणनीय है– कीनाश (किसान/कृषक) हल (लॉगल/सीर) सीता (फाल) शुकनासीर (हल की नोंक) ईषा (हल की लम्बी लकड़ी) युग (जूडा) वरत्रा (हल और जूडे को बांधने की रस्सी) अष्ट्रा (चाबुक) वाह (बैल)।[२६]

इस प्रकार संक्षेप में वर्णित है कि भारत आरम्भ से ही कृषि प्रधान देश रहा है। वैदिक युगीन सभ्यता कृषि पर अवलम्बित रही है। कृषि के आविष्कार के बारे में दो समर्थन प्राप्त है एक के अनुसार देवों ने जंगलों को काटकर भूमि को कृषि योग्य बनाया था। दूसरे मत में कृषि का आविष्कार बेनपुत्र पृथु द्वारा बताया गया है। इसका समर्थन महाभारत और श्रीमद्भागवत पुराण में भी मिलता है। वैदिक संहिताओं में कृषि के लिए भूमि तैयार करने बीजारोपण, सिंचन एवं फसल की कटाई तक करने के साधनों का बीजरूप में उल्लेख मिलता है। जलवायु की अनुकूलता और भूमि की उर्वरता को बनाए रखने के लिए भी परामर्श उपलब्ध होते हैं। क्षारमृत्तिका का उल्लेख यही सिद्ध करता है कि उन दिनों में भी लोग इन दोषों से परिचित थे। इसके लिए ईरिन् शब्द का प्रयोग किया है। कृषि के लिए वृष्टि के महत्व को आंकते हुए भूमि को पर्जन्य की पत्नी कहा गया है। यजुर्वेद में यज्ञ द्वारा कृषि वृद्धि की चर्चा यह सिद्ध करती है कि यज्ञ के माध्यम से लोग अच्छे उत्पादन में सफल होने का भरसक प्रयास करते थे। भूमि को नमस्कार किया गया है तथा हानिकारक जन्तुओं और कीटों को नष्ट करने का परामर्श भी उपलब्ध होता है। वेदों में सिंचाई के सम्यक् साधनों के उल्लेख के साथ–साथ फसलों के क्रम का उल्लेख तथा उन दिनों उत्पन्न किये जाने वाले अनाजों का वर्णन भी मिलता है।

अतः वैदिक कालीन कृषि के इस वर्णन से ज्ञात होता है कि हमारी कृषि पद्धति आज भी वैदिक ढंग पर ही चल रही है। परन्तु वर्तमान समय में कृषि कार्य में परिवर्तित जलवायु के कारण व्यापक समस्याएँ आ रही है। ऋतुचक्र पर्यावरण प्रदूषण के कारण असन्तुलित हो गया है। जिससे कृषि व्यवस्था में सन्तुलित परिणाम प्राप्त नहीं हो रहे है। आज जल का अभाव सर्वत्र है और इसकी भूमिका सृष्टि जगत् में सर्वाधिक है। इसी समस्या के कारण अनेक किसान तो आत्महत्या जैसा घृणित कृत्य भी कर रहे है, जबकि वेद इसकी स्वीकृति नहीं देता है।

vl;kuke rs ykdk vU/ku relkorkA
rkLrs iszR;fHkxPNfUr ;s ds pkReguks tukkAA"‰

आधुनिक वैज्ञानिक विचारधारा भी इसके समाधान में मूकसदृश है। वह समझ नहीं पा रही है कि इस घातक समस्या के निदान कैसे सम्भव होगा क्योंकि अन्तर्राष्ट्रिय स्तर पर भी यह चिन्ता का कारण बन गई है। परन्तु यह दोष तो मानव का ही है, जिसने प्राकृतिक संसाधनों का व्यापक दोहन कर स्वयं को ही काल का ग्रास बना लिया है।

इसी प्रसंग में यदि विचार करें तो ध्यान आता है कि भारत सरकार मृदापरीक्षण के माध्यम

से किसानों में चेतना जाग्रत कर रही है। विगत वर्ष प्रधानमन्त्री श्रीमान् नरेन्द्र मोदी ने राजस्थान में इस योजना का शुभारम्भ किया था, उन्होंने किसानों से जैविक खाद के उपयोग तथा खेतों में जल संरक्षण के प्रयास हेतु अनुरोध भी किया। क्योंकि भूमि का यूरिया आदि खाद से क्षरण हो रहा है। यह विचारधारा वेद में निहित है क्योंकि वेद प्रकृति को परमात्मा स्वरूप प्रस्तुत करता है। वह उसकी वन्दना हेतु निर्देशित करता है, प्रकृति जीवन का मूलाधार है। अतः हमारा भी परम कर्तव्य है कि हम प्रकृति का उचित संरक्षण करें, जिससे कृषि कार्य सहित सम्पूर्ण कार्यों में सफलता प्राप्त हो। पुनः सर्वत्र वेदवाणी प्रचलित हो –

lo HkoUr| l|f[ku% loHknkf.k i';Ur|A
lo lUr| fujke;k ek df'pr n|[kHkkXHkor AA

„@[k@„‰ Vhp l dkykuh]
d'koi|jk dkVk ¼jkt-½&…„†ŒŒ‹

lUnHk ldr&

१. ऋग्वेद – १०/३४/०७।
२. ऋग्वेद – १/११७/२१।
३. ऋग्वेद – ४ मण्डल ६७ सूक्त।
४. अथर्ववेद –१२/१/४२ ।
५. अथर्ववेद –३/१७/४ ।
६. शतपथ ब्राह्मण १/६/६/३।
७. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति पृ. २७२।
८. अथर्ववेद –३/१७/३ ।
९. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति पृ. ४५१।
१०. ऋग्वेद – १०/१०१/०३।
११. ऋग्वेद – २/१४/१४१।
१२. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति पृ. २७२।
१३. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति पृ. २७२।
१४. यजुर्वेद १८/१४। यजुर्वेद १६/३८।
१५. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति पृ. ४५२।
१६. ऋग्वेद – ८/६६/१२।
१७. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति पृ. २७२–७३।
१८. तैत्तिरीय संहिता – १/८/१०/१।
१९. अथर्ववेद –७/१८/१।
२०. अथर्ववेद –७/१८/२।
२१. अथर्ववेद –६/५०/१ ।
२२. अथर्ववेद –६/५०/२ ।
२३. छान्दोग्योपनिषद् १/१०/१।
२४. ऋग्वेद – ३/८/७।
२५. अथर्ववेद –७/१४/३।
२६. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति पृ. २७३।
२७. ईशावास्योपनिषद् मन्त्र सं. –३।

ईश्वर की स्तुति—वह परमात्मा सब में व्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान् जो शुद्ध, सर्वज्ञ, सबका अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयंसिद्ध, परमेश्वर अपनी जीवरूप सनातन अनादि प्रजा को अपनी सनातन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है, यह 'सगुण-स्तुति' अर्थात् जिस-जिस गुण से सहित परमेश्वर की स्तुति करना वह सगुण और (अकाय) अर्थात् वह कभी शरीर धारण वा जन्म नहीं लेता, जिसमें छिद्र नहीं होता और जो नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता, और कभी पापाचरण नहीं करता, जिसमें क्लेश, दुःख, अज्ञान कभी नहीं होता, इत्यादि जिस-जिस राग द्वेषादि गुणों से पृथक् मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है, वह 'निर्गुण-स्तुति' कहाती है। इसका फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं, वैसे गुण-कर्म-स्वभाव अपना भी करना। जैसे वह न्यायकारी है, तो आप भी न्यायकारी होवे। और जो केवल भाँड के समान परमेश्वर के गुणकीर्त्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता, उसका स्तुति करना व्यर्थ है।

– सप्तमसमु. सत्यार्थ-प्रकाश

वैदिककालीन कृषिसंरचना

❑ डॉ. सुमन शर्मा.....✍

मानव जीवन का आधार अन्न है। अन्नों की प्राप्ति कृषि से होती है। पृथिवी से अन्न, फल, कन्दादि की उत्पत्ति करना कृषि कर्म है। खेती[१], हल चलाना, उर्वर, क्षेत्रादि[२] शब्द कृषि के लिए प्रयुक्त होते हैं। आग्ंल भाषा में Ploughing, Agriculture[३] इत्यादि शब्द का प्रयोग कृषि के लिए होता है। वैदिक काल में कृषि-कार्य गौरव का कर्म माना जाता था। इसलिए इन्द्र और पूषा देवी को कृषि-कार्य में लगाया गया है।[४] ऋग्वेद में कहा गया है कि द्यूत आदि दुर्गुणों को त्यागकर सुख हेतु कृषि करो।[५] यजुर्वेद[६] में राजा के चार प्रमुख कर्मों में प्रथम कर्म 'कृषि की उन्नति' बताया गया है। कृषि को वेदों में सबसे अधिक प्रमुखता दी गई है। ऋग्वेद[७] और अथर्ववेद[८] में राजा वेन के पुत्र तथा पृथी (पृथु) को कृषि-विद्या का आविष्कारक बताया है। उसने कृषि विद्या के द्वारा विविध प्रकार के अन्न उत्पन्न किए। महाभारत[९] तथा भागवतपुराण[१०] में इस मत की पुष्टि हेतु समर्थन किया गया है। वेदों में कृषि-कर्म से सम्बद्ध अनेक सूक्त प्राप्त होते हैं।[११] इनमें कृषि-सम्बन्धी मुख्य बातें दी गई है - बीज होने से पहले खेत को ठीक ढंग से स्वच्छ करें, कृषि-हेतु बैल, हलादि उत्तम हों, उत्तम कोटि के बीज बोए जाएँ, अनुकूल ऋतु में बीज बोयें, यथासमय सिंचाई-निराई करें, खेती तैयार होने पर कटाई-मड़ाई करें इत्यादि। शतपथ ब्राह्मण[१२] में पूरे कृषि कर्म को चार शब्दों में वर्णन किया गया है।

वेद हमें कृषि-कर्म के लिए उत्तम रीति से मार्गदर्शन करते हैं। वेदों में कृषक के लिए 'कीनाश' शब्द प्रयोग हुआ है उससे ही किसान शब्द बना है। यजुर्वेद (३०.११) कहता है, ***इरायै कीनाशन्***। यहाँ कीनाश शब्द किसान वाचक है। इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है - ***कुत्सितं नाशयति इति कीनाशः*** अर्थात् जो बुरी अवस्था का नाश करता है उसको कीनाश कहते हैं। बुराई, अवनति, गिरावट, कमी, हानि आदि का नाश अन्न की समृद्धि से होता है। अतः अन्न को उत्पन्न करने वाला कीनाश है यही शब्द लोक में किसान रूप में प्रचलित हो गया। किसानों की स्तुति के लिए वेद कहता है - ***अन्नानां पतये नमः क्षेत्राणां पतये नमः।***[१३] अन्न को उत्पन्न करने वाले, खेतों की रक्षा करने वाले, खेतों के स्वामी कृषकों के लिए हमारा नमस्कार है। किसान ही राष्ट्र के अन्दर धान्य की तथा अन्नादि की समृद्धि करके लोगों को प्राण की हानि से बचाता है। यजुर्वेद (१३.३८) में कृषि के दो भेदों का उल्लेख है - 'वर्ष्य' अर्थात् वर्षा पर निर्भर रहने वाली कृषि तथा 'अवर्ष्य' वर्षा पर निर्भर न रहने वाली अर्थात् कूप, तालाब, नहरादि सिंचाई के अन्य साधनों पर निर्भर। जुताई द्वारा खेत से उत्पन्न अन्न को 'कृष्टपच्य' कहते हैं तथा बिना जुताई भूमि से उत्पन्न अन्न को 'अकृष्टपच्य' कहते हैं जैसे - जंगली धान, फल-फूल आदि।

कृषि के लिए पहली आवश्यकता भूमि की होती है। भूमि बिना कृषि सम्भव नहीं। यजुर्वेद के प्रसवीय सूक्त के प्रथम मन्त्र में कहा गया है। विविध प्रकार के अन्नों के उत्पादन के लिए निश्चय से कारणरूपा माता भूमि को हम वाणी से युक्त करें। जिस पृथ्वी में यह प्रत्यक्ष समस्त स्थूल जगत् व्याप्त है उस पृथिवी में समस्त ऐश्वर्ययुक्त शुद्ध स्वरूप ईश्वर तथा सविता देव हमारे उत्तम कृषि रूपी कर्म को उत्पन्न करें।[१४] अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त में भूमि को विश्वंभरा, वसुधानी, हिरण्यवक्षा, वैश्वानरी इत्यादि नाम अभिहित हैं। यजुर्वेद तथा तैत्तिरीय संहिता में भूमि के तीन भेदों का उल्लेख प्राप्त होता है - उर्वरा (उपजाऊ), इरिण (ऊषर), शस्य (चरागाह-योग्य)।[१५] वैदिक साहित्य में मिट्टी के भेदों का उल्लेख है - मृद् मृत्तिका[१६] (चिकनी मिट्टी), रजस् भूमि[१७] (सामान्य भूमि), अश्मन्वती[१८] (पत्थर वाली),

किंशिल[१९] (छोटे कंकड़ वाली), इरिण्य[२०] (खेती के लिए अनुपयुक्त), उर्वरा, उर्वर्य[२१] (उपजाऊ), सिकता, सिकत्य[२२] (बालू वाली मिट्टी) इत्यादि। कृषि की सुविधा के कारण भूमि को छोटे-छोटे खण्डों में विभाजित करके 'क्षेत्र' बनाये जाते थें।[२३] क्षेत्रों पर कृषि करने वाले का अधिकार होता था। अत: उसे 'क्षेत्रपति' कहा जाता था।[२४] वैदिक ऋषि अनुसार पृथिवी हमारी माता तथा पर्जन्य को पिता स्वीकार किया है। जिस पृथिवी पर अनाज व्रीहि और पंचकृष्टियाँ हैं, उसी पृथ्वी को जो पर्जन्य की पत्नी है, मैं नमस्कार करता हूँ।[२५] भूमि तैयार करना भी कृषि की एक कला है।

वैदिक काल में कृषि-कर्म पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय खेती आज की भाँति ही होती थी। भूमि को हलों से जोतकर बीज बोने योग्य बनाया जाता था। हल खींचने वाले बैलों की संख्या छ:, आठ, बारह या चौबीस तक होती थी[२६] जिससे हल में बृहदाकार तथा भारी होने का अनुमान किया जा सकता है। हल का साधारण नाम 'सीर' या लांगल था जिसके अगले भाग को 'फाल' कहते थे। फाल नुकीला तथा हल की मूँठ बड़ी चिकनी होती थी।[२७] खेत को हलों से जोतकर बीज वपन योग्य बनाया जाता था। बीज वपन को 'प्रवपन' कहा जाता था।[२८] बीज वपन के समय 'प्रवपणयज्ञ' किया जाता था।[२९] यह प्रथा आज भी 'मुठ लगना' शब्द से विख्यात है। बीज होने के पश्चात् सिंचाई का कार्य होता था। एक मन्त्र में जल दो प्रकार का बतलाया गया है - खनिमित्रा (खोदने से उत्पन्न जल) तथा स्वयंजा (अपने आप होने वाला, नदी जलादि)।[३०] कूप[३१], अवट[३२], अक्षित[३३] इत्यादि का उपयोग मनुष्यों तथा पशुओं के निमित्त जल निकालने के लिए ही नहीं किया जाता था, बल्कि कभी-कभी इनसे सिंचाई भी होती थी। कुओं का जल बड़ी-बड़ी नालियों से बहता हुआ खेतों में पहुँचता (ऋ., ८.६९.१२) और भूमि को उपजाऊ बनाता था। लोग कृषि कर्म के लिए वृष्टि पर ही अत्यधिक अवलंबित रहते थे। वैदिक देवता मण्डल में इन्द्र की प्रमुखता का रहस्य कृषिजीवी होने की घटना में छिपा हुआ है। तैत्तिरीय संहिता में दो फसलों का उल्लेख है इन्हें शारदीय (खरीफ) और वासन्ती (रबी) कहते हैं।[३४] जौ, औषधियाँ, चावल (व्रीहि) तथा माष-तिल (उड़द व तिल) आदि अन्नों का क्रमश: ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त-शिशिर में काटने का भी विधान प्राप्त होता है।[३५] व्रीहि (धान), यव (जौ), माष (उड़द), तिल, मुद्ग (मूंग), खल्व (चना), प्रियंगु (कंगुनी), अणु (पतला चावल), श्यामक (सावाँ), नीवार (कोदों, तिन्नी धान), गोधूम (गेहूं), मसूर इन १२ (बारह) अन्नों के नाम भी वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं।[३६] अनाज को बर्तनों से नापकर कोठिलों में रखते थे। नापने वाले बर्तन को 'ऊर्दर' कहते थे।[३७] जहाँ अनाज इकट्ठा रखा जाता था उस घर को 'स्थिवि' कहते थे।[३८] उर्वरक के लिए ऋग्वेद में 'क्षेत्रसाधस्' (खेत की शक्ति बढ़ाने वाला) शब्द है। खाद के लिए करीष, शकन्, शकृत् इत्यादि शब्द प्रयुक्त हैं।[३९] यह खाद गाय, बैल, भैंसादि पशुओं की होती थी। अथर्ववेद (३.१७.९) अनुसार विशेष परिस्थितियों में घी और मधु का खाद के रूप में प्रयोग होता था।

वर्तमान समय की भाँति वैदिक काल में भी किसानों के सामने हानि पहुँचाने वाले कीड़ों से खेती को बचाने की समस्या उपस्थित थी। कृषिनाशक तत्त्वों को 'ईति' कहते हैं। अथर्ववेद में इन कृषिनाशक तत्त्वों का उल्लेख है - अतिवृष्टि और अनावृष्टि अर्थात् विद्युत और सूर्य की कड़ी धूप को नष्ट न करें।[४०] अतिवृष्टि में बिजली गिरना तथा अनावृष्टि में तीव्र धूप कृषि का होना। तीव्र धूप और हिमपात कृषि को नष्ट न करें।[४१] आखु (चूहा) विशेष चूहा जो कृषि को नष्ट करता है इसे मारने का निर्देश है।[४२] तर्द (कठफोड़वा), पतंग (टिड्डी), जभ्य और उपक्वस ये सभी कृषि को नष्ट करने वाले कीट-पतंग है। छान्दोग्योपनिषद् (१.१०.१) में टिड्डी के लिए 'मटची' शब्द आया है। एक बार टिड्डियों के कारण समग्र गुरु जनपद की खेती नष्ट होने की घटना का उल्लेख मिलता है।

वैदिककालीन कृषि के वर्णन से विदित होता

है कि हमारी कृषि पद्धति वैदिक ढंग पर आज भी चल रही है। कृषि का इतना अधिक महत्त्व तथा उपयोग था कि उन्होंने 'क्षेत्रपति' नामक एक देवता की स्वतन्त्र सत्ता मानी है तथा उनसे क्षेत्रों के सस्य-सम्पन्न होने की प्रार्थना की है।[४३] वर्तमान समय में कृषि कर्म निष्कृष्ट समझते हैं। हम यह दुर्भाग्य से भूल गये है कि कृषि से आर्थिक आत्मनिर्भरता और सम्पन्नता के द्वार खुलते हैं। कृषि से उत्पन्न अन्न के कारण मानव कुपोषण एवं व्याधियों से मुक्त होकर सौ वर्ष तक की पूर्ण आयु प्राप्त करता है। अन्न के बिना कोई जीवन धारण नहीं कर सकता इसलिए अन्न का निरादर एवं निन्दा करने का निषेध किया गया है। कृषि का उत्तम रीति से विस्तार करते हुए सब इस कार्य की ओर उन्मुख हो। इसके लिए सरकार का भी उत्तरदायित्व है कि वह किसानों को आधुनिक ढंग से कृषि करने को प्रोत्साहित करे जिसके फलस्वरूप कृषि रूढ़िवादी प्रथाओं पर न होकर अपितु विद्या और विज्ञान के आश्रित नवीन-नवीन लाभकारी अनेक परीक्षणपूर्वक उपायों का अनुसरण करते हुए अधिक-से-अधिक अन्न उत्पन्न हो सके।

-संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय

संदर्भ-सूची :-

१. संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, स. २०१४, पृ. २९९.

२. ऋ., १.११०.५ क्षेत्रमिव विममुस्तेजनेन।

३. संस्कृत-हिन्दी अंग्रजी शब्दकोश, वामन शिवराम आप्टे, स. २०११, पृ. १६३.

४. अथर्व., ३.१७.४.

५. ऋ., १०.३४.७ अक्षैर्मा दीव्यां कृषिमित् कृषस्व।

६. यजु., ९.२२ कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा।

७. ऋ., ८.९.१० पृथी यद् वां वैन्यः।

८. अथर्व., ८.१०.४.११
तां पृथी वैन्योऽधोक्, तां कृषि सस्यं चाधोक्।

९. महा. (शा.प.), ५०.११३.११४.

१०. भा.पु., ४.१६-२३.

११. ऋ., १०.१०१, ४.५७, यजु., १२.६७-७१,अथर्व., ३.१७,१-९

१२. श.ब्रा., १.६.१.३ कृषन्तः, वपन्तः, लुनन्तः, मृणन्तः।

१३. यजु., १६.१८

१४. यजु., १८.३०
वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदिति नाम वचसा करामहे।
यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत्।।

१५. यजु., १६.३३.४२-४३, तै.स., ४.५.६-९

१६. वही, १८.१३ १७. वही, १६.८५

१८. अथर्व., १२.१.२६ १९. यजु., १६.४३

२०. वही, १६.४३-४४ २१. वही, १६.३३

२२. वही, १६.४३ २३. ऐत.ब्रा., ३४.६, कौ.ब्रा., ६.११

२४. कौ.ब्रा., ३०.११ २५. अथर्व., १२.१.४२
यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्य्यः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे।।

२६. अथर्व., ६.१११.१, ६.६०.१, तै.स., ५.२.५.२, बौ.ध.सू., ३.२.३

२७. अथर्व. ३.५७.३

२८. बौ.ध.सू., ३.२.३

२९. गौ.गृ.सू., ४.४.२९

३०. ऋ., ७.४९.२
या आपो दिव्या उत याः स्रवन्ति।
खनिमित्रा उत वा याः स्वयंजाः।।

३१. ऋ., १०.१०५.१७

३२. वही, १.५८१, १०.२५.४

३३. वही, १०.१०१.६

३४. तै.स., ५.१.७.३
द्विः संवत्सरस्य सस्यं पच्यते।

३५. वही, ७.२.१०.२
यवं ग्रीष्माय, व्रीहीन् शरदे।

३६. यजु., १८.१२, तै.स., ४.७.४.२, गो.गृ.सू., ४.४.२९, बौ.ध.सू., ३.२.२.२, मैत्राा.सं. १.२.८., शत.ब्रा., ५.२.१.६, ऐ.ब्रा., १.१, ३९.२.

३७. ऋ., २.१४.११ तमर्दूरं न पृणता यवेन।

३८. वही, १०.३८.३
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः।

३९. ऋ., ३.८.७, १.१६४.४३, १.१६१.१०, अथर्व., ३.१४.३

४०. अथर्व., ७.११.१
मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं, मोत वधीः सूर्यस्य रश्मिभिः।

४१. वही, ७.१८.२, न घ्रन् तताप न हिमो जघान।

४२. वही, ६.५०.१-२, हतं तर्दं .... आखुम्।

४३. ऋ., ४.६७.७-९, इन्द्रः सीतां............. शुनमस्मासु छत्र।

वैदिक कृषि में सिंचाई व्यवस्था

❑ अवधेश कुमार .....

देवगण आए, उनके पास अपनी-अपनी कुल्हाडियाँ (परशु) थी। उन्होंने जंगल काटकर साफ किए। उनके साथ नौकर भी थे। उन्होंने वक्षलों में लकडियों को रख दिया और जहाँ-जहाँ घास उगी थी, उसे जला दिया। यह ऋग्वेद में इस मन्त्र में कहा गया-

देवास आयन् परशूँरबिभ्रन् वनावृश्चन्तो अभिविड्भिरायन् । निसुद्रवं दधतो वक्षणासु यत्राकृपीटमनु तद्दहन्ति॥

(ऋ. १०/२८/८)

अभिप्राय यह है कि इस प्रकार वैदिक काल में जंगल साफ करके कृषि भूमि का आयोजन कर कृषि कर्म किया जाने लगा। वैदिक कृषि का अन्वेषण कर ज्ञात होता है कि तत्कालीन कृषि एक सुव्यवस्थित विज्ञान का आश्रय लेकर मानव जीवन का अभिन्न अंग रही है। यथा कृषि भूमि की जुताई, बीज वपन की विशिष्ट विधियाँ, कृषि यन्त्रों की पर्याप्त श्रृंखला, उर्वरकों का प्रयोग, सिंचाई के प्राकृतिक एवं कृत्रिम साधन इन सब का वैदिक साहित्य में पर्याप्त उल्लेख कृषि विज्ञान की उत्कृष्टता का द्योतक है। प्रस्तुत लेख में वैदिक कृषि में सिंचाई व्यवस्था पर विचार किया जा रहा है।

ऋग्वेद में चार प्रकार के जलों का उल्लेख मिलता है-

या आपो दिव्या उतवो स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः।[1]

१. दिव्य जल - यह वर्षा का जल है (विशेषतः स्वाति नक्षत्र में बरसा हुआ जल)।

२. स्रवणशील जल - यह नदियों का बहता हुआ जल है।

३. खनित्रिमा जल - खोदने से उत्पन्न हुआ जल अथवा कूप या बावडी का जल।

४. स्वंयजा जल - नदी आदि से स्वयं उत्पन्न होने वाला जल तथा निर्झर पर्वतीय जल।

इनमें वर्षा, नदियों और झरनों का जल प्राकृतिक जल है और खनित्रमा जल कृत्रिम विधि से प्राप्य जल है। इस प्रकार सिंचाई हेतु दोनों प्रकार की व्यवस्थाएं वैदिक कृषि में दिखाई देती थी। इसका प्रमाण यह भी है कि तत्कालीन उत्पन्न अन्नों में निम्न अन्न उपजते थे- व्रीही (धान), यव (जौ), मृद्ग (मूंग), माष (उडद), गोधूम (गेहूँ), नीवार (जंगली धान), प्रियंगु (मसूर), श्यामक (साँबा, तिल, खीरा इत्यादि।[2] इनमें वर्तमान में प्रचलित खरीफ की फसलों (वो फसलें जो जून-जुलाई में बोई जाती हैं तथा जिनकी बुवाई के समय अधिक ताप व आर्द्रता की आवश्यकता है जैसे-धान, मक्का, ज्वार, बाजरा, गन्ना, मूंग आदि) की निर्भरता वृष्टि पर थी क्योंकि ये वर्षाकाल में उत्पन्न होती हैं। परन्तु रबी की फसलों (वो फसलें जिनमें बुवाई के समय कम तापमान व पकते समय शुष्क व गर्म वातावरण की आवश्यकता होती है, ये फसलें अक्टूबर-नवम्बर के महीने में बोई जाती है, गेहूँ, चना, जौं, मसूर, सरसों, बरसीम आदि) के लिये अन्य स्रोतों पर निर्भरता स्पष्ट ही है।

अतः सिंचाई के साधनों को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है :-

प्राकृतिक साधन

वर्षा का जल-वर्षा का जल सिंचाई का प्रमुख साध

न था। वेद में प्रार्थना की गई है कि हम जब-जब इच्छा करें मेघ जल की वर्षा करें।[३] अथर्ववेद में कहा गया है-हे मरुद्गण! जिस देश में तुम जल-वृष्टि करते हो वहाँ तुम बलदायक अन्न एवं प्रजा का पोषण करते हो।[४] ऋग्वेद में वर्षा का देवता इन्द्र कहा गया है। इन्द्र ही वृत्रों (विघ्नों) को दूर करता हुआ वर्षा करता था। इन्द्र द्वारा वृत्रवध का वर्णन भी ऋग्वेद में प्राप्त होता है।[५] इन्द्र-वृत्र युद्ध से तत्कालीन कृषि में वर्षा का महत्व ज्ञात होता है। वर्षा के अभाव में वृष्टियज्ञों का भी वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद के एक सूक्त[६] के आधार पर यास्काचार्य ने अपने ग्रन्थ निरुक्त में वर्षा कामसूक्त नामक भाग में वृष्टियज्ञ द्वारा वर्षा कराये जाने के सम्बन्ध में देवापि और शान्तनु का कथानक दिया है जिसमें देवापि ने बृहस्पति को ब्रह्मा बनाकर वृष्टियज्ञ कराया जिससे प्रचुर वर्षा हुई।[७] शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ में वृष्टि की प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है:-

अग्नेर्वै धूमो जायते, धूमादभ्रम् अभ्राद् वृष्टिः।
अग्नेर्वा उवा जायन्ते तस्मादाह तपोजा इति॥[८]

यजुर्वेद में प्रार्थना की गई है कि-"हमारी वृष्टि, मेघों की वर्षण क्रिया, यज्ञ के द्वारा सम्पन्न होवे।[९] इस पृथ्वी को यज्ञ के जल से अच्छी प्रकार चारों ओर से आवृत्त कर दो।[१०]

वर्षा के जल को दिव्य कहा गया है। यज्ञ द्वारा उसकी दिव्यता में और अधिक वृद्धि हो जाती है, चूंकि यज्ञ द्वारा होने वाली वर्षा का जल सुसंस्कारित होता है तथा इस प्रकार के जल द्वारा उत्पन्न अन्न, रस, दूध, घृत, फल आदि सभी उत्तम संस्कारित तथा दिव्य होते हैं। ऐसे दिव्य जल के रोगनाशन सामर्थ्य के लिये यजुर्वेद में **दिव्या वृष्टिः सचताम्** कहा गया है।[११]

स्वयंशील और स्वयंजा जल- सिंचाई के प्राकृतिक स्रोतों में वर्षा के जल के अतिरिक्त नदियों और पर्वतीय झरनों के जल से भी सिंचाई का उल्लेख मिलता है। वैदिक साहित्य में लगभग ३१ नदियों का उल्लेख प्राप्त होता है, जिनमें से २५ नदियों का उल्लेख तो ऋग्वेद में ही मिलता है।[१२] नदियों में सिन्धु नदी सर्वाधिक गतिशील सर्वाधिक जलयुक्त कही गई है। अन्य नदियाँ उसकी ओर इस प्रकार बहती हैं जैसे रंभाती गायों अपने बछड़े की ओर दौड़ती हैं।[१३] पांच नदियों से सिंचित जो वर्तमान पंजाब कहलाता है उसका उल्लेख भी पाया जाता है।[१४]

उक्त रीति से नदियाँ सिंचाई का प्राकृतिक उत्तम साधन रही है।

कृत्रिम साधन- "वेदों में सिंचाई से सम्बन्धित यत्र-तत्र जो उल्लेख मिले है उनसे भी परोक्षतः यही संकेत मिलता है कि जिस भूमि में वर्षा से पर्याप्त धान्य उत्पन्न हो जाए वहाँ वृष्टि से ही उत्पादन करना चाहिए, परन्तु जहाँ वृष्टि पर्याप्त नहीं होती, वहाँ अन्य स्थानों से नहरों द्वारा जल लाकर कृषि करनी चाहिये। केवल वृष्टि पर ही अवलम्बन करने वाले देश में उत्तम कृषि सम्भव नहीं है, अतः नहर जलाशय आदि प्रबन्ध द्वारा जल का योग्य संग्रह करके धान्यादि की उत्तम पैदाइश करने का उपदेश वेद भी देता है।[१५]

वेद में पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध होते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज कृत्रिम साधनों से सिंचाई करता रहा है और कृत्रिम साधनों से प्राप्त इस जल को **खनित्रिमा जल** की संज्ञा दी गई है। कृत्रिम जल के कुछ साधनों का उल्लेख मिलता है-

सिंचमहा अवतय उद्रिणं वयं सुषेकमनुपक्षितम्। इष्कृताहावमहतं सुबरत्रं सुषेचनम्, उद्रिणं सिंचे अक्षिताम्। द्रोणाहाव भवतम् अश्मचक्रं असंत्रकोश सिंचता नृपाणाम्॥[१६]

अवत पोखरा (गड्ढा या बावडी), द्रोण आहाव (काठ के बने हुए बड़े-बड़े पात्र) बरत्र (उत्तम रस्सियों से युक्त) अक्षित (कभी समाप्त न

होने वाले) जल युक्त, उद्रिण (ऊपर निकाले हुए जल युक्त), अश्म चक्र (पत्थर के बने चक्र) वाले साधनों से सिंचाई करूँ।

ये सब कुएं, बावडी, बड़े-बड़े पात्र, भिन्न-भिन्न प्रकार के रहे हैं। केवल ऋग्वेद में ही कुएँ के बारह पर्यायों का उल्लेख मिलता है-कूप[१७], कर्त[१८], बव्र[१९], काट[२०], खात[२१], अवत[२२], क्रिवि[२३], सूद[२४], उत्स[२५], कारोतर[२६], ऋश्यदात[२७] और केवट[२८]।

इन सभी को सामान्य कुएँ नहीं माना जा सकता। यह कहना कठिन है कि उपरोक्त विभिन्न शब्दों का प्रयोग किस प्रकार के कुओं के लिये हुआ है। काट, खात, अवत और ऋश्यदात आदि से ज्ञात होता है कि कुछ कुएँ न होकर गड्ढे ही रहे होंगे। इनमें से कुछ का प्रयोग तो धाराओं से पानी निकालने के लिये धाराओं से सटाकर खोदे गए गड्ढों या तालाबों से पानी निकालने के प्रयोजन से किया जाता होगा। मजदूरों एवं बैलों की सहायता से कुएँ से पानी निकालने के लिये प्रायः चमड़े की वस्त्र (रस्सी), लकड़ी की बाल्टी (कब्) और अश्मचक्र (प्रस्ता से बने हुए चक्र) आदि का उपयोग किया जाता था। वरत्रा के एक किनारे पर बाल्टी बांधकर पहिये या चक्र के सहारे पानी कुएँ से निकालने के लिये ऊपर उठाया जाता था। वरत्रा के अतिरिक्त पानी निकालने के लिये लकड़ी के एक लम्बे डण्डे के एक सिरे पर बाल्टी व दूसरे सिरे पर भारी वजन लटकाकर भी चक्र की सहायता से पानी निकाला जाता था।[२९]

कूप के अतिरिक्त नहरों द्वारा भी सिंचाई की जाती थी। ऋग्वेद में प्रार्थना की गई है-हे नदियों! उत्तम अन्न को पैदा करके ऐश्वर्य बढ़ाने वाली नदियों को पानी से भरपूर कर दो, परिपूर्ण कर दो और बहो।[३०] यहाँ पर खोदकर बनाई गई नहर के लिये 'वक्षणा' शब्द का प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद में राजा द्वारा नहरों के खुदवाये जाने की प्रेरणा का वर्णन मिलता है।[३१]

इन्द्रस्य नु वार्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री। अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभ्रिनत् पर्वतानाम्॥

"जिन प्रकृष्ट कर्मों को यह इन्द्र करता है उन पराक्रम युक्त कर्मों का मैं वर्णन करता हूँ, यह शिला, भूमि आदि जल के गतिरोधक पदार्थों को काटकर नष्ट कर देता है और फिर जलों को उनके लिये मार्ग खोदकर बहा देता है। यह पर्वतों में से नदियों को खोद निकालता है।" वज्रधारी, सुखों का वर्षक इन्द्र (सम्राट्) जिन्हें खोदकर बहाता है, वो कृष्यादि व्यवहारोपयोगी जल मेरी अर्थात् राष्ट्र की रक्षा करें।[३२]

इसके अतिरिक्त यजुर्वेद में भी सिंचाई के कृत्रिम साधनों का उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होता है-सुत्थार (नाला), कुल्या (नहर), वैशन्त (तालाब), काट्य (बम्बा या मूल जिसमें से पानी काटकर खेत में सिंचाई करते हैं), सर (तालाब), कुप्य (कुएं का जल), आवटय (गड्ढों, पोखरों का जल), मेध्य (मेघजल) तथा आवर्ष्य (बिना वर्षा का जल) आदि का वर्णन है।[३३]

ऋग्वेद में भी तालाब के विषय में वर्णन आया है-वेगवती जलधाराएं समुद्र को जाती हैं, नाले, तालाब को प्राप्त करते हैं, आकाश से होने वाली वृष्टि रूपी दान से किसान यव आदि बढ़ाते हैं।[३४]

इस प्रकार सिंचाई के उक्त प्राकृतिक और कृत्रिम द्विविध साधनों के भिन्न-भिन्न प्रकार तत्कालीन समाज की कृषि व्यवस्था को समुन्नत किए हुए थे। सिंचाई की प्रक्रिया की एक ओर विशेष विशिष्ट विधि प्राप्त होती है। जल से तो फसलों को सींचा ही जाता था परन्तु औषधी-गुणयुक्त-अन्न एवं फलों के उत्पादन का विधान भी प्राप्त होता है। यदि हम किसी धान्य को या फल को किसी औषधी विशेष के गुण से या अन्य किसी पदार्थ विशेष के गुण से युक्त उत्पन्न करना चाहते हैं तो उस औषधि के रस

से हमें उस बीज को भावित करके बोना चाहिये एवं बोने के पश्चात् भी समय-समय पर उसके रस से युक्त जल से उन पौधों या वृक्षों को सींचते रहना चाहिये।[३५] इस प्रकार उक्त साक्ष्य इस तथ्य को प्रतिपादित करते हैं कि वैदिक सिंचाई व्यवस्था वैज्ञानिक दृष्टि से पर्याप्त उन्नत रही है।

शोधछात्र, संस्कृत विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

सन्दर्भ-सूची :-

१. ऋग्वेद ७/४९/२
२. व्रीहयश्च में यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियांगवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।। (यजुर्वेद १८/१२)
३. निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु। (यजुर्वेद २२/२२)
४. अथर्ववेद ६/२२/१-२
५. ऋग्वेद ७/११०/३, १०/५०/३, १०/१०५/३
६. ऋग्वेद १०.९८
७. निरुक्त २-३
८. शतपथ ब्राह्मण ५/३
९. वृष्टिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् (यजुर्वेद १२/१८)
१०. अभ्यावर्त्तस्व पृथ्वी यज्ञेन पयसा सह। (यजुर्वेद १२/१०३)
११. यजुर्वेद १३/३०
१२. ऋग्वेद १०/७५/५-६-७-८
१३. ऋग्वेद १०.७५
१४. ऋग्वेद १०/७५/५
१५. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, वेद में कृषि विद्या पृष्ठ-१८
१६. ऋग्वेद १०/१०१/५-६
१७. ऋग्वेद १०/१०५/१७
१८. ऋग्वेद २/३४/६
१९. ऋग्वेद ५/३२/८
२०. ऋग्वेद १/१०६/६
२१. ऋग्वेद ४/५०/३
२२. ऋग्वेद ४/१७/१६
२३. ऋग्वेद ५/४४/४
२४. ऋग्वेद १०/३९/८
२५. ऋग्वेद २/१६/७
२६. ऋग्वेद १/११६/७
२७. ऋग्वेद १०/३९/८
२८. ऋग्वेद ६/५४/७
२९. निराहा वानकृष्णोतन सं वरत्रा दधातन।
सिंचमहा अवतमुद्रिणं वयं सुषेकमनुपक्षितम्।।
ऋग्वेद १०/१०१/५
३०. प्र पिन्वध्यवमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम्। ऋग्वेद ३/३३/१२
३१. ऋग्वेद १/३२/१
३२. इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु। त्वं सिन्धूर सृजस्ततस्भानात् त्वमपो अजयो दासपत्नीः।। ऋग्वेद ७/४९/१
३३. यजुर्वेद १६/३७-३८
३४. आपो न सिन्धुमभिः यत्समक्षरन्सोमास इन्द्रं कुल्या इवह्रदम्। वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यव न वृष्टिर्दिष्येनदानुना।। ऋग्वेद १०/४३/७
३५. सं. वपामि समाप औषधीभि समोषधयो रसेन। यजुर्वेद १/२१

प्रश्न—मुक्ति एक जन्म में होती है, वा अनेक जन्मों में?

उत्तर—अनेक जन्मों में। क्योंकि—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे पराऽवरे॥ १॥

—मुण्डक [२। खं० २। मं० ८]॥

जब इस जीव के हृदय की अविद्या-अज्ञानरूपी गांठ कट जाती, सब संशय छिन्न होते और दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं, तभी उस परमात्मा जोकि अपने आत्मा के भीतर और बाहर व्याप रहा है, उसमें निवास करता है। **-सत्यार्थ-प्रकाश**

वैदिक कृषि विज्ञान पद्धति

❑ कु. पुष्पा भोज.....✍

कृषि और मनुष्य का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। मानव की प्रतिदिन की अनेक आवश्यकताएँ कृषि से ही पूर्ण होती हैं। कृषि समस्त प्राणी मात्र का आधार है। वैदिक काल से ही मनुष्य कृषि कार्य किया करते थे। कृषि कार्य का उल्लेख हमें वेदों में भी प्राप्त होता है। अनेक प्रकार के अन्न, फल, फूल तथा औषधियों को वैदिककाल में उत्पन्न किया जाता था। अथर्ववेद में कृषि तथा कृषि कार्य में प्रयुक्त होने वाले साधनों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है–

सीरा युंजन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया।।[१]

अर्थात् बुद्धिमानी ज्ञानी दैवी सुख प्राप्त करने के उद्योग में हलों को जोतते हैं। और जुओं को अलग करके फैलाते हैं।इस प्रकार इस ऋचा में हल और जुआ का वर्णन किया गया है। हल और जुओं का प्रयोग वर्तमान में भी कृषि कार्य के लिए किया जाता है।

कृषि कार्य में किस प्रकार के साधनों का प्रयोग तथा कैसे कार्य किया जाए जिससे अधिक उपज की प्राप्ति हो सकें, ऐसी पद्धति का वर्णन भी वेद में इस प्रकार प्राप्त होता है–

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम्। गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्य पक्वमायवन्।।[२]

अर्थात् विशेष शोभा वाले किसान हल जोतो जुओं को फैलाओ, लकीर बनाने के बाद बीज बोऐं और हमारी अन्न की उपज भरपूर होवे। हंसुए पके अन्न को अधिक समीप जावें। इस प्रकार खेती करने के लिए किसान और बैल दोनों का महत्वपूर्ण स्थान हैं। इनके महत्व को चि्त्रित करते हुए वेद में कहा गया है–

लांगलं पवीरवत् सुशीमं सोममत्सरु।
उदिद्वपतु गामविं प्रस्थवद्रथवाहनं पीवरीं च प्रफर्व्यम्।।[३]

अर्थात् अच्छे फल वाला, सुख देने वाला, लकडी की मूठवाला हल की रक्षा करने वाला अर्थात् अन्न को उत्पन्न करता हुआ बैल तथा खेती करने वाले किसान ये दोनों उत्तम अन्न को सब प्रकार से प्राप्त करते हैं। वेदों में अन्न पैदा करने की विधि के साथ ही साथ अनाज के सुरक्षा के लिए फसल को काटने के लिए हंसिए का प्रयोग तथा फसल को उत्तम समय में काटने का निर्देश भी दिया गया है। धान की खेती के सन्दर्भ में ऋग्वेद में कहा गया है–

युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् । गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इतसृण्यः पकमेयात्।।[४]

अर्थात् हल चलाइए जोडियों को जोतिए। जमीन तैयार करने पर उसमें बीज बोइए और धान्य काटने के हंसिया को निश्चय करके पके हुए धान्य के पास ही ले जावें। अर्थात् धान पकने के बाद ही उसे काटा जाये। इससे प्रशंसायुक्त भरण–पोषण के साथ हम सबको सुख प्राप्त होगा। इसी तरह कृषि में प्रयोग होने वाले फावडे का वर्णन करते हुए वायु और सूर्य की उपयोगिता का वर्णन करते हुआ कहा गया है–

शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनुयन्तु वाहान्। शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला होषधीः कर्तमस्मै।।[५]

अर्थात् सुन्दर फाल भूमि को उत्तम प्रकार से खोदें। किसान बैलादि वाहनों के पीछे आनन्द से चलें। अन्न से सन्तुष्ट करने वाले वायु और सूर्य इस पुरुष के

लिए उत्तम फलवाली वनस्पतियाँ प्रदान करें। इसी प्रकार वैदिक काल में खेती के लिए प्रयुक्त होने वाले साधन बैल, हलवाला, रस्सी, चाबुक तथा हल की फाल का वर्णन करते हुए कहा गया है–

शुनं वाहाः शुनं नर शुनं कृषतु लांगलम्।
शुनं वस्त्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गयः।।[६]

अर्थात् बैल आदि पशु सुख से रहें। किसान तथा अन्य मनुष्य आनन्द से रहें। हल सुखपूर्वक जोते जायें, हल की रसियॉ सुख से बॉधी जायें। चाबुक आनन्द से प्रेरित किया जायें। इसी प्रकार वेदों में पशुपालन का वर्णन भी किया गया है क्योंकि पशु खेती के लिए गोबर आदि खाद प्रदान करते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि वैदिक काल में जैविक खेती की जाती थी। जिससे भूमि को किसी प्रकार का नुकसान नही होता था, इसी सन्दर्भ में कहा गया है–

संजग्माना अविभ्युषिरस्मिन्गोष्ठे करीषिणीः।
बिभ्रतीः सोम्यं नध्वनमीवा उपेतन।।[७]

अर्थात् इस गौशाला में निर्भय होकर रहने वाली मिलकर भ्रमण करने वाली गोबर उत्पन्न करने वाली खाद उत्पन्न करने वाली अमृत रूप मधु मीठा रस–दूध धारण करने वाली गौवें निरोग होकर हमारे पास भी आ जाए।

वैदिक ऋषि गायों व पशुओं के महत्व को जानते थे। इसीलिए गायों के संरक्षण के लिए उत्तम गौशालाओं की व्यवस्था करने का निर्देश भी वेदों में दिया गया है–

सं वो गोष्ठेन सुशदा सं रयया सं सुभूत्या।
अहर्जातस्य यन्नाम तेना वः सं सृजामसि।।[८]

अर्थात् जिसमें स्वच्छ बैठने का स्थान है, ऐसी गौशाला से शोभा और उत्तम सुख के साथ गायों को मिलाकर रखना चाहिये। दिन के समय उत्पन्न होने वाले प्रकाश का जो यश है,वह गायों को सुखपूर्वक मिलाकर रखता है। इसी प्रकार खेती करने के लिए बीजों की आवश्यकता होती हैं। बीजों के बिना खेती का कार्य सम्भव नहीं हो सकता है। किस प्रकार के बीजों का प्रयोग कृषि कार्य के लिए करना चाहिए इसका निर्देश देते हुए कहा गया है कि खेतों में उत्पन्न हुए 'यव'आदि अन्न जो पदार्थ हैं। इनमें पका हुआ बीज का ही प्रयोग करें–

नेदीय इतसृण्य पक्वमेयात्।[९]

कृषि के लिए जल की आवश्यकता होती हैं। बिना जल के बीज नही उग सकते हैं। इसलिए वेदों में भूमि के सिचाई किये जाने का वर्णन भी प्राप्त होता है–

तेन मामुप सिंचतम्।[१०]

अर्थात् इस भूमि को सींचो ।

कृत्रिम सिचाई साधनों का वर्णन भी हमें वेदों में प्राप्त होता है, जिनमें कूपों का उल्लेख किया गया है–'**कूपाभ्यां स्वाहा**'[११] '**नमःकूप्या**'[१२] वस्त्र का उपयोग करके बाल्टियों में रस्सी बांध कर कूपों से पानी खींचने का चित्रण भी किया गया है इनसे सिंचाई भी होती थी–

निराहावान् कृणोतन संवरआदधातन।
सिंचामहा अवतमुद्रिभवयं सुशेकमनुपक्षितम्।।[१३]

कृषि के महत्व को समझते हुए वैदिक ऋषियों द्वारा यज्ञ किये जाते थे। यज्ञ की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि यज्ञ के द्वारा द्युलोक को प्रसन्न किया जाता है और द्युलोक वर्षा के द्वारा पृथ्वी को तृप्त करता है। यज्ञ से मेघ बनते हैं और मेघ से वर्षा होती है वर्षा से ही पृथिवी में अन्न तथा औषधि उत्पन्न होती है,जो प्राणियों के जीवन का आधार है–

भूमिः पर्जन्या जिन्वन्ति दिव जिन्वन्याग्नय।।[१४]

इसी प्रकार फसल को काटने –दांवने तथा 'भूसा' को अन्न से अलग करने का वर्णन भी वेद में प्राप्त होता है–'**दान्तमनु पूर्व वियूय**'[१५]

इस प्रकार वैदिक काल में कृषि के महत्व को समझते हुए ऋषि–मुनियों द्वारा कृषि कार्य के लिए उत्तम एवं सुरक्षित पद्धति का विकास किया गया है। वैदिक काल में पूर्णरूप से जैविक कृषि पद्धति का उल्लेख प्राप्त होता है। इस प्रकार कृषि से भूमि तथा पर्यावरण को किसी प्रकार का नुकसान नही होता था। वर्तमान में

जनसंख्या बढ़ने के कारण कृषि पद्धति में भी बदलाव आया है। भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के लिए अनेक प्रकार के कृत्रिम रासायनिक खादों तथा यन्त्रों का प्रयोग कृषि कार्यो में किया जाने लगा है अर्थात् वर्तमान में पूर्णरूप से अजैविक कृषि की जाती है, अनेक प्रकार के उर्वरकों का प्रयोग करने से अनेक प्रकार के विशैली गैसों का उत्र्सजन होता हैं। जिससे वायुमण्डल प्रदूषित होता जा रहा है ,इससे भूमि तथा प्रकृति का विनाश होता जा रहा है, जिसके परिणास्वरूप जीव-जन्तु, मानव को हानिकारक दुष्प्रभावों का सामना करना पड़ रहा है। इसलिए भूमि एवं पर्यावरण की सुरक्षा के लिए वैदिक कृषि पद्धति का अनुसरण करने की आवश्यकता है।

-जियारानी छात्रा-छात्रावास,
शोबन सिंह जीना परिसर अल्मोड़ा,
पिन-२६३६०१

सन्दर्भसूची-

१. अथर्ववेद ३/१७/१,ऋग्वेद १०/१०/१४
२. अथर्ववेद ३/१७/२
३. वही ३/१७/३
४. ऋग्वेद १०/१०/१३
५. अथर्ववेद ३/१७/५
६. वही ३/१७/६
७. वही ३/१४/३
८. वही ३/१४/१
९. यर्जुवेद
१०. ऋग्वेद ४/५७/२
११. यर्जुवेद २२/२५
१२. वही १६/३८
१३. ऋग्वेद १०/१०/५
१४. वही १/१६४/५४
१५. यर्जुवेद १०/३२

प्रश्न—द्विज अपने हाथ से रसोई बना के खावें, वा शूद्र के हाथ की बनाई खावें ?

उत्तर—शूद्र के हाथ की बनाई खावें, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यवर्णस्थ स्त्री-पुरुष विद्या पढ़ाने, राज्यपालने और पशुपालन, खेती और व्यापार के काम में तत्पर रहैं और शूद्र के पात्र [में] तथा उसके घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के विना न खावें। सुनो प्रमाण—

आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्तारः स्युः।

— यह आपस्तम्ब का सूत्र है [आपस्तम्ब धर्मसूत्र। प्रश्न २। पटल २। खण्ड ३। सूत्र ४]॥

आर्यों के घर में 'शूद्र' अर्थात् मूर्ख स्त्री-पुरुष पाकादिसेवा करें परन्तु वे शरीर, वस्त्र आदि से पवित्र रहैं। आर्यों के घर में जब रसोई बनावें तब मुख बांध के बनावें। क्योंकि उनके मुख से उच्छिष्ट और निकला हुआ श्वासा[दि] भी अन्न में न पड़े, आठवें दिन क्षौर नखच्छेदन करावें। स्नान करके पाक बनाया करें। आर्यों को खिलाके आप खावें।

- सत्यार्थ-प्रकाश

कृषि-उत्पाद में वैदिक दृष्टिकोण

❑ अमित धीमान, शोधच्छात्र.....✍

वेद मानव जीवन के लिए उपयोगी विविध ज्ञान विज्ञान की अमूल्य निधि है। सृष्टि के आदि काल में परमपिता परमेश्वर ने मानव मात्र के लिए वेदों का कल्याणकारी ज्ञान दिया। वेदों में ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, कृषिविज्ञान, वाणिज्यविद्या, भैषज्यविद्या, राजविद्या आदि विद्याओं के मूल उत्स प्रस्फुटित हो रहे हें। वेदों को आधार बनाकर ही धर्म, दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान, कला-साहित्य के क्षेत्र में भारत के असाधारण उपलब्धि प्राप्त की है। मनु महाराज वेद की महत्ता के विषय में स्पष्ट लिखते हैं :-

सर्वज्ञानमयो हि सः (मनु० २.६)

अर्थात् वेद विविध ज्ञान-विज्ञान का भण्डार है। वेदों में ज्ञान-विज्ञान के सम्बन्ध में सहस्रों मन्त्र अलग-अलग विषयों में आये हैं वहीं पर कृषि विज्ञान की उपयोगिता एवं महत्ता को लेकर विस्तृत चर्चा की गई है। कृषि विज्ञान जीवन से साक्षात् संयुक्त है। क्योंकि कृषि कर्म के द्वारा ही हमें अन्न प्राप्त होता है। जो सबके जीवन का आधार हो जिसके बिना जीवन चल ही नहीं सकता। वैदिक वाङ्मय मे अन्न को सभी जीवधारियों का आत्मा, सबका जीवन तथा साक्षात् ब्रह्मस्वरूप कहा गया है-

अन्नं वै सर्वेषां भूतानामात्मा (गो० ब्राह्मण १/५)

वेद में कृषि कर्म का आदेश है कि

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः। तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः॥

अर्थात् धनार्जन के लिए कृषि ही सर्वोत्तम है। कृषि को ही करो उससे प्राप्त धन को बहुत मानते हुए उसी में रमण करो। उपार्जन हेतु जुआ आदि निन्दित कर्मों का सहारा मत लो। यजुर्वेद में उत्तम अन्नों की कृषि का आदेश दिया गया है-

सुसस्याः कृषीस्कृधि (यजु. ४.१०)

अर्थात् उत्तम-उत्तम धान्य उत्पन्न करने का खेती वा खेंचने वाली क्रियाओं का सेवन कराओ। कृषि के आधारभूत तत्त्वों में भूमि, जल, बीज व खाद आदि का विशेष महत्त्व है जिनका वर्णन वेदों में सुव्यवस्थित रूप से प्राप्त होता है। कृषि कर्म के सर्वप्रथम भूमि का स्थान अपेक्षित होता है। जो कृषि उत्पाद का सर्वप्रमुख साधन होता है। यजुर्वेद में बताया गया है कि -

सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत्।

यजु. २३/४६

अर्थात् सूर्य अपनी परिधि में घूमता है। चन्द्रमा उसी सूर्य के प्रकाश से उत्पन्न होता है। अग्नि ही शीत का नाशक और सब बीजों के बोने को बड़ा क्षेत्र भूमि ही है। एक मन्त्र में धरती माता को यह कहकर प्रणाम किया गया है कि हे पृथिवी माता हम कृषि के लिए, कल्याण के लिए, रक्षा के लिए, ऐश्वर्य के लिए और पोषण के लिए तुम्हारा नमन करते हैं।

नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्याऽइयं ते राडयन्तासि यमनो ध्रुवाऽसि धरुणः। कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा। यजु० ९/२२

अन्न की उत्पत्ति के लिए भूमि माता को वाणी से युक्त करने अर्थात् स्तुति द्वारा उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने व उसका उपयोग करने की कामना की गई है।

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा

करामहे। यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत्।। यजु. १८/३०

अथर्ववेद के प्रसिद्ध भूमि सूक्त में पृथिवी को 'विश्व का भरण पोषण करने वाली, समस्त ऐश्वर्यों को धारण करने वाली, सबकी आधारशिला सुवर्णादि को अपने वक्षस्थल में धारण करने वाली, वैश्वानर करने वाली तथा शक्तिशाली सम्राट् वाली यह पृथिवी है।

विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी। वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्र ऋषभा द्रविणे नो दधातु।। अथर्व १२/१/६

उपर्युक्त विशेषणों के अतिरिक्त भूमि का ''विश्वम्भरा'' विशेषण कृषि की दृष्टि से अधिक प्रासंगिक व सार्थक है क्योंकि कृषि द्वारा अन्न उत्पादन का प्रमुख आधार भूमि ही है और अन्न द्वारा ही सबका भरण-पोषण होता है। पृथिवी को 'विमृग्वरी' अर्थात् शोधन करने वाली कहा गया है-

विमृग्वरी पृथिवीमा वदामि।

अथर्व १२/१/२९

जिससे पर्यावरण प्रदूषण को दूर करने से पृथिवी की महत्ता द्योतन होती है। साथ ही पृथिवी के शिला, भूमि, अश्मा, पासु आदि नाना भेदों को भूमि सूक्त के मन्त्रों में उल्लिखित किया गया है -

शिला, भूमिरश्मा पासुः सा भूमिः संधृताः धृता।

अथर्व १२/२६

भूमि के साथ-साथ कृषि का दूसरा आधारभूत तत्त्व जल है जिससे फसलों की सिंचाई होती है। यजुर्वेद में कृषि क्षेत्र को पृथिवीस्थ जलों से संकृष्ट करने (सींचने) का वर्णन है।

सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सं का सृजाम्यद्भिरोषधीभिः। सोऽहं वाजं सनेयमग्ने।।

यजु. १८/३५

अथर्ववेद में आठ प्रकार के जलों का वर्णन है। हैमवतीः- हिमालय पर बर्फ के रूप में, उत्स्याः - स्रोतों के रूप में, सनिष्यदाः - सदा बहने वाले, वर्ष्या : वर्षा के रूप में बरसने वाले, धन्वन्याः मरुस्थल में प्राप्त, अनूप्याः जलाशयों में उपलब्ध, खनित्रिमाः भूमि खोदकर कुएँ आदि में प्राप्त तथा कुम्भेभिराभृताः घड़े में भरकर रखे गए। ये आठों प्रकार के जल विविध भूमियों में विविध फसलों में एवं विविध रूपों में कृषि के लिए लाभकारी है। **अतः शं त आपो हैमवती** इत्यादि रूप में इनसे कल्याण की कामना की गई है। वेद में नदियों के जल से भी सिंचाई का वर्णन है। जिसका संकेत मन्त्र में है।

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमाः।

ऋ. 7/४९/२

वैदिक ऋषियों की यह मान्यता है कि नदी आदि के स्वच्छ जल से ही कृषि की उन्नति सम्भव है। अतः यदि नदियों का जल विषाक्त व प्रदूषित हो जाय तो उस जल प्रदूषण को दूर करने का निर्देश भी मन्त्रों में प्राप्त होता है।

यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परिजायते विषम्। विश्वे देवा निरितस्तत् सुवन्तु। ऋ. 7/५०/३

सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु। ऋ. 7/५०/४

वस्तुतः **''सुसस्याः कृषीस्कृधि''** की सार्थकता तभी सम्भव है जब खेतों में बोए हुए अन्न को उत्तम खाद और स्वच्छ जल से बढ़ाया जाय और इस प्रकार उत्पन्न अन्न ही स्वास्थ्यप्रद प्राणदायक सिद्ध हो सकता है। अन्नोत्पादन के लिए सर्वाधिक उपयोगी जल वर्षा को ही माना गया है जिसके अन्न के साथ-साथ वृक्ष-वनस्पतियाँ, लताएँ व औषधियाँ भी फलवती हो। एतदर्थ वेद में यथासमय यथोचित वर्षा की कामना की गई है-

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न औषधयः पच्यन्ताम्। यजु. २२/२२

भूमि और जल के अतिरिक्त खेत में लहलहाती फसल के लिए सूर्य रश्मियों की आवश्यकता

भी प्रत्यक्षसिद्ध है जिसका उल्लेख यजुर्वेद १८/३१ में स्पष्ट रूप से किया गया है। अग्रिम मन्त्र में अन्न की रक्षा और वृद्धि के लिए एक साथ सभी प्रकार की वायुओं तथा समस्त अग्नियों का आह्वान किया गया है–

विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः। विश्वे नो देवा अवसाऽऽगमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे॥

यजु. १८/३१

अर्थात् प्रार्थना की गई है कि कृषि द्वारा प्राप्त अन्न से वे हमें सभी प्रकार के ऐश्वर्यों की प्राप्ति करने वाले हों।

बीज– जैसा बीज होगा वैसी ही फसल होगी। कृषि का यह महत्वपूर्ण सिद्धान्त साधारणतः सर्वविदित है और इस वैज्ञानिक सिद्धान्त का मूल ऋग्वेद के निम्न मन्त्र में दिखाई देता है– जहाँ स्पष्ट रूप से उत्तम किस्म **अक्षितं बीजम्** के प्रयोग का उल्लेख है–

येन तोकाय तनयाय धान्यं बीजम् अक्षितम्।

ऋ. ५/५३/१३

उत्तम खेती के लिए यजुर्वेद की औषधियों से जल एवं उनके मधुर रसो के साथ बीज बोने का वर्णन है।

सं वपामि समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन। सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्। यजु. १/२१

फसल बोते समय बीज को औषधियों के मधुर रस से संयुक्त करने तथा तत्पश्चात् वैसे ही जलों से कृषि को सम्पृक्त व सिंचित करने का यह वैदिक सिद्धान्त नितान्त वैज्ञानिक है। क्योंकि जिन औषधियों के रसों से भिगोकर बीज बोए जायेंगे वैसे ही औषधीय गुण उक्त विधि से उत्पन्न अन्न फल व सब्जियों में निश्चित रूप से आ जायेंगे। उक्त वैज्ञानिक प्रक्रिया से एक ही प्रकार के अन्न को नाना प्रकार के गुणों से संयुक्त करके रोगनाशक व पुष्टिदायक अन्न तथा फलादि की फसल पैदा की जा सकती है। जिससे सुसस्याः कृषीस्कृधि क उपर्युक्त वैदिक संदेश को साकार किया जा सकता है।

उत्तम खेती के लिए उत्तम प्रकार के बीज बोने की वैदिक पद्धति के अनुसार ही कौटिल्य अर्थशास्त्र में सभी प्रकार के बीजों को बोते समय बीज की पहली मुट्ठी स्वर्णयुक्त जल से तर करके बोने का वर्णन है।

सर्वबीजानां तु प्रथमवापे सुवर्णोदकसंप्लुतां पूर्वमुष्टिं वापयेत्। कौ.अर्थशास्त्र २/२४/३१

इसी प्रकार वहाँ खेतों में बोए जाने वाले धान व मूँग-उड़द आदि के बीजों को पहले सात, पांच या तीन राशि तक ओस में फैलाने (तुषार पायन) और फिर उतने ही दिन तक धूप में फैलाने (उष्णशोषण) का उल्लेख है।

कृषि के विकास के लिए खाद एक अनिवार्य घटक है। खाद को वस्तुतः कृषि भूमि का भोजन कहा जा सकता है। इसीलिए यजुर्वेद में भूमि को उत्तम खाद आदि द्वारा दृढ़ एवं परिपुष्ट करके तथा पृथिवी की हिंसा न करने का स्पष्ट आदेश दिया गया है–

पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृह पृथिवीं मा हिंसीः।

यजु. १३/१८

गोबरखाद– ओषधियों से निर्मित इसी खाद के अतिरिक्त वेद में गोबर की खाद का भी उल्लेख है क्योंकि इसी के प्रयोग से स्वास्थ्यप्रद एवं बलवर्धक अन्न उत्पन्न किया जा सकता है। अथर्ववेद में वर्णन है–

सं जग्माना अविभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः। बिभ्रती सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन॥

अर्थात् गोशाला में निर्भय होकर एवं परस्पर मिलकर रहती हुई तथा श्रेष्ठ गोबर का खाद उत्पन्न करने वाली और शान्त व मधुर रस (दूध) का धारण करती हुई और गौएँ नीरोग स्थिति में हमारे समीप आएँ।

यजुर्वेद में कृषि भूमि को घी, दूध एवं शहद से सींचने का आदेश है।

घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः। ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्याववृत्स्व॥ यजु. १२/७०

सब विद्वानों को चाहिए कि किसान लोग विद्या के अनुकूल घी, मीठा और जलादि से संस्कार कर स्वीकार की हुई खेल की पृथिवी से अन्न को सिद्ध करने वाली करे। जैसे बीज सुगन्धि आदि युक्त करके बोते हैं, वैसे पृथिवी को भी संस्कारयुक्त करें। इसी विषय को आगे बढ़ाते हुए कहा कि-

लाङ्गलं पवीरवत् सुशेवं सोमपित्सरू। तदुद्वपति गामविं प्रफर्व्यं च पीवरीं प्रस्थावद् रथवाहणम्॥ यजु. १२/७१

अर्थात् किसानों को उचित है कि मोटी मिट्टी अन्न आदि की उत्पत्ति से रक्षा करने हारी पृथिवी की अच्छे प्रकार परीक्षा करके हल आदि साधनों से जोत, समतल कर, सुन्दर संस्कार किये बीज का वपन करके उत्तम धान्य उत्पन्न कर भोगें।

उपर्युक्त सन्दर्भों से यह प्रमाणित होता है कि वैदिक ऋषियों को कृषि की वैज्ञानिक रीति व तदर्थ प्रयुक्त किए जाने वाले उपकरणों का भी विस्तृत ज्ञान था।

-संस्कृत-विभाग
गु.कां.वि.वि. हरिद्वार

प्रश्न—मुक्ति किसको कहते हैं?

उत्तर—'**मुञ्चन्ति पृथग्भवन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः**' जिसमें छूट जाना हो, उसका नाम मुक्ति है।

प्रश्न—किससे छूट जाना?

उत्तर—जिससे छूटने की इच्छा सब जीव करते हैं।

प्रश्न—किससे छूटने की इच्छा करते हैं?

उत्तर—जिससे छूटना चाहते हैं।

प्रश्न—किससे छूटना चाहते हैं?

उत्तर—दुःख से।

प्रश्न—छूट कर किसको प्राप्त होते और कहां रहते हैं?

उत्तर—सुख को प्राप्त होते और ब्रह्म में रहते हैं।

प्रश्न—मुक्ति और बन्ध किन-किन बातों से होता है?

उत्तर—परमेश्वर की आज्ञा पालने, अधर्म्म, अविद्या, कुसङ्ग, कुसंस्कार, बुरे व्यसनों से अलग रहने और सत्यभाषण, परोपकार, विद्या, पक्षपातरहित न्याय-धर्म की वृद्धि करने, पूर्वोक्त प्रकार से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और 'उपासना' अर्थात् योगाभ्यास करने; विद्या पढ़ने-पढ़ाने और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने; सबसे उत्तम साधनों को करने और जो कुछ करे वह सब पक्षपातरहित न्यायधर्मानुसार ही करे, इत्यादि साधनों से '**मुक्ति**' और इनसे विपरीत ईश्वराज्ञाभङ्ग करने आदि काम से '**बन्ध**' होता है।

-पञ्चमसमु., सत्यार्थ-प्रकाश

वैदिक वाङ्मय में कृषि विज्ञान

आशीष कुमार, शोधच्छात्र[१].....

भूमि पर फसल एवं इसके उत्पादन से सम्बन्धित क्रमबद्ध ज्ञान को कृषि विज्ञान कहा जाता है। जमीन को जोतकर उस पर फसलों और पेड़ पौधों को उगाने के मानवीय प्रयत्न को कृषि कहा गया है।[२] अतः पृथ्वी पर इस कृषि विद्या का किस प्रकार विकास हुआ, इस विषय में रोचक प्रसंग वेदों से प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद के कथनानुसार सर्वप्रथम देवगण आगे आए। अतः उनके पास अपनी-२ कुल्हाड़ियां थी। उन्होंने जंगलों को काटकर साफ किया। उनके साथ उनके कुछ सहयोगी परिजन भी थे। उन्होंने उपयोगी लकड़ियों (बल्लियों आदि सहु) हो नदियों के किनारे रख दिया और जहाँ कहीं घास-फूस (कृपीट) था, उसे जला दिया गया।[३] इससे ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक अवस्था में जंगलों की अधिकता थी। जंगलों को काटा गया, भूमि को समतल किया गया और फिर इसके बाद कृषि कार्य प्रारम्भ किया गया। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि राजा वेन का पुत्र राजा पृथी (प्रभु) या इसी को कृषि विद्या का प्रथमकर्त्ता अथवा आविष्कारक माना जाता है। उसने ही सर्व प्रथम कृषि विद्या के द्वारा विविध प्रकार के अन्नों के उत्पादन का रहस्य ज्ञात किया। ऋग्वेद में वेन के पुत्र राजा प्राची वैन्य का केवल उल्लेख मात्र है।[४] अथर्ववेद में भी इसी राजा का वर्णन किया है-**तस्या मनुर्वै वस्वतो वत्स आसीत्, पृथिवी पात्रम्।[५] ताँ पृथी वैन्योऽधोक् तां कृषिं शस्यं चाधोक्।।**

अर्थववेद का कथन है कि वैवस्वत मनु की परम्परा में वेन का पुत्र पृथी राजा हुआ। उसने कृषि करके अन्न उत्पादन किए। अतः अथर्ववेद में स्पष्ट रूप से पृथी वैन्य को कृषि विद्या का आविष्कारक माना गया है।

ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या उपजीवन्ति, कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति।[५]

कृषि और अन्न पर सभी मनुष्यों का जीवन निर्भर है। इसलिए कृषि विद्याविद् की शरण में सभी लोग जाते हैं। अथर्ववेद में वर्णन मिलता है कि सरस्वती नदी के किनारे उपजाऊ भूमि में माधुर्य युक्त जौ की खेती हुई। इस कृषि कार्य के अधिष्ठाता इन्द्र थे तरु मरुत् आदि देवों ने किसान का कार्य किया। वेदों में कृषि का महत्व बताते हुए और कृषि को गौरव का कार्य मानते हुए कृषि को मानवीय कल्याण का साधन माना गया है। अथर्ववेद में राजा का प्रमुख कर्त्तव्य बताया गया है कि वह कृषि की उन्नति करे जनकल्याण करे और धन धान्य की वृद्धि करे।[६] शतपथ ब्राह्मण में पूरे कृषि कार्य का चार शब्दों में वर्णन किया गया। ये चार शब्द इस प्रकार से है कि कर्षणः वयनः, लवनः और मर्दनः। इनका अर्थ है कि- कर्षणः खेत की जुताई करना। बपनः बीज बोना, लवणः पके खेती की कटाई करना। मर्दनः मड़ाई करके स्वच्छ अन्न को प्राप्त करना।[7] अथर्ववेद में कहा गया है कि अन्न मनुष्य के जीवन का आधार है। अतः अन्न के बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता है।[८] इसी अन्न की आवश्यकता को देखते हुए वेद में अन्न को विश्व की प्रमुख समस्या बताया गया है। इस बात से यह स्पष्ट होता है कि कृषि कार्य एक महत्वपूर्ण कार्य है और इस कार्य को नियम से करना चाहिए। यजुर्वेद में एक प्रश्न किया गया है कि बीज के लिए सर्वोत्तम स्थान क्या है? इसका उत्तर यह दिया गया है कि भूमि ही बीज बोने के लिए सर्वोत्तम स्थान है।[९]

वेदों में कृषि के साधनों का भी वर्णन मिलता है। हल के लिए लांगल और सीर शब्द है।[१०] सीता, फालः हल के नुकीले भाग के लिए सीता

और फाल शब्द है।[११] ईषा, वत्रा: हल में जो लम्बी लकड़ी लगी रहती है। उसके लिए ईषा शब्द है। इसके निचले भाग में लोहे की फाल होती है। इसके ऊपर जुआ (युग) रखा जाता है। हलस और जूए को रस्सी से बांधा जाता है।[१२] बैल के लिए बाह शब्द है।[१३] अथर्ववेद और काष्क संहिता ६, ८ और १२ जुओ वाले बड़े हलों के वर्णन हैं। एक जुए में दो (२) बैल लगते हैं। इस प्रकार १२, १६, और २४ बैल वाले बड़े हल भी काम में आते थे।[१४] कृषि के लिए उत्तम भूमि के साथ ही उत्तम बीज, हल, बैल और किसान की आवश्यकता होती है। अत: अथर्ववेद में नौ मन्त्रों के एक पूरे सूक्त में कृषि कर्म से सम्बन्धित जानकारी दी गई है। इनमें अधिकांश मन्त्र ऋग्वेद और यजुर्वेद में भी आए हैं। अथर्ववेद का कथन है कि विद्वान् लोग सुख प्राप्ति के लिए हलों को जोड़ते हैं और जूओं को पृथक्-पृथक् बांधते हैं। **सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नयौ।**[१५] **लांगलं पवीरवत् सुशीमं सोममत्सरु:।**[१६] हल व्रज के तुल्य कठोर, चलाने में सुखद और लकड़ी की मूठ वाला हो। यह हल से अन्न समृद्धि के द्वारा गाय, बैल, आदि को पुष्ट करता है।

युनक्त सीरा वि युगा तनोत, कृते योनौ वपतेह बीजम्।[१७] **विराज: श्नुष्टि सभरा असन्नो, नेदीय इत सृण्य: पक्वमायवन्।।**

हल को तैयार करो, जुए में बैलों को बांधो। तैयार की हुई भूमि में बीज बोओ अन्न की उपज हमारे लिए भरपूर हो। कृषि तैयार होने पर उसे हंसुओं में काटकर परिपक्व अन्न घर ले जाओ। वर्षा के विषय अथर्ववेद में कहा गया है कि-

इन्द्र: सीतां निगृह्णातु तां पूषाऽभिरक्षतु।[१८]
सा न: पयस्वती दुहाम्, उत्तरामुत्तरां समाम्।।

वर्षा के विषय में कहा गया है कि इन्द्र वृष्टि के द्वारा जुती हुई भूमि को पुष्ट करे और सूर्य उसकी रक्षा करे। वह भूमि हमें प्रतिवर्ष उत्तम रसयुक्त धान्य दे।

शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं, शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान्।[१९] **शुनासीरा हविषा तोशमाना, सुपिप्पला ओषधी: कर्तमस्मै।।**

अर्थात् हल की फाल सरलता से भूमि को खोदे। किसान बैलों के पीछे चले। इसी से प्रसन्न होकर वायु और सूर्य फलयुक्त धान्य उत्पन्न करे।

शुनं वाहा: शुनं नर: शुनं कृषतु लांगलम्।[२०]
शुनं वस्त्रा बध्यतां, शुनमष्ट्रामुदिङ्गय।।

अथर्ववेद में वर्णन किया गया है कि बैल सुधी रहें। मनुष्य सुखी रहें। हल सरलता से कृषि करें। रस्सियां ठीक ढंग से बाँधी जाएँ और चाबुक का ठीक उपयोग करे। अथर्ववेद में कृषि के योग्य उपजाऊ भूमि के लिए उर्वरा शब्द आया है। अत: ऐसी भूमि को हल से जोता जाता है और उसमें उत्तम बीज बोया जाता है। यथा **बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति।**[२१] और उर्वरा भूमि में उत्पन्न होने वाले अन्न उर्वर्य कहते हैं।[२२] तथा जिस भूमि में अन्न नहीं बोते हैं उसे खल कहते हैं। यह बिना जुती हुई भूमि खलिहान का काम करती हैं। इसमें कृषि से उत्पन्न अन्न को साफ किया जाता है। भूसी आदि हटाकर भण्डारण के योग्य किया जाता है।[२३] खलिहान में रखे हुए अन्न के लिए ''खल्य'' शब्द आया है।[२४] खलिहान में नमी आदि के कारण कुछ कीड़े भी अन्न में लग जाते हैं। उन्हें खलज कहा गया है। इनको मारने का विधान भी कहा गया है।[२५] वेदों में कृषि में बीज बोने का विधान किया गया है। वेदों में कहा गया है कि बीज बोने से पहले भू-परिष्कार आवश्यक होता है और भूमि को समतल किया जाता है।

यजुर्वेद में कहा गया है कि **''कृते योनौ वपतेह बीजम्''।**[२६] अर्थात् भू परिष्कार के बाद ही बीज बोया जाए। खाद के विषय में यजुर्वेद में कहा गया है कि-

घृतेन सीता मधुना समज्यताम्।[27]
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना।।

बीज बोने से पहले जुती हुई भूमि में खाद

के रूप में घी, दूध और मधु का प्रयोग किया जाए। इससे भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। यजुर्वेद में बीज के विषय में कहा गया है कि **सं वपामि समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन।**[२८] बीज को पानी से भिगोया जाए और उसमें ओषधियों को भी डाला जाये। इससे बीज में ओषधियों की शक्ति आ जाएगी और उसकी गुणवत्ता बढ़ जाएगी। कृषि के लिए यज्ञ का बहुत महत्त्व है। अतः वेदों में कृषि के लिए यज्ञ को बहुत महत्त्व दिया गया है। यज्ञ को विष्णु (परमात्मा) का रूप माना गया है। **यज्ञो वैः विष्णु।**[२९] यज्ञ को संसार का केन्द्र कहा गया है।[३०] इसलिए कहा गया है कि सारा सृष्टि चक्र यज्ञ के द्वारा चल रहा है। यह यज्ञ प्रकृति में स्वभाविक रूप से हो रहा है। अतः इसमें वसन्त ऋतु घी का कार्य कर रही है। ग्रीष्म ऋतु समिधा और शरद ऋतु सामग्री का कार्य कर रही है।[३१] यजुर्वेद में कहा गया है कि यज्ञ से उत्तम कृषि की पैदावार होती है। **वाजश्च मे प्रसवश्च में।**[३२] यज्ञ से अन्न और फल-फूल की वृद्धि होती है। **सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे।**[३३] बीज का अंकुरित होना और फल धारण करना। हल से धान्य की उत्पत्ति और अच्छी फसल के बाधक तत्त्वों का विनाश होता है। ऋग्वेद में उल्लेख किया गया है कि यज्ञ में मेघ (बादल) बनते हैं। और वे मेघ आकाश में रहते हैं। वर्षा के रूप में भूमि पर लौटते हैं।[३४] वे समुद्र से जल को धूप या भाप के रूप में ऊपर खींचती है और उसी से वृष्टि होती है। इस यज्ञ से ही बादल उत्पन्न होते हैं। बादलों से वृष्टि और उससे अन्न होते हैं।

इस प्रकार समस्त वेदों में कृषि विज्ञान का वर्णन है। वेद तो समस्त विद्याओं का भण्डार है। इनको **सर्वज्ञानमयो हि सः** कहा हैं। वेद में कृषि विज्ञान को हमने विभिन्न स्थानों पर पाया है। जो उपर्युक्त उल्लिखित है। वेद में कृषि विज्ञान की उपयोगिता एवं स्पष्टता वर्णित है।

सन्दर्भ-सूची :-

१. श्रद्धानन्द शोध संस्थान, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
२.समसामयिकी महासागर, सामान्य विज्ञान, भाग-२ (जीव विज्ञान) पृ० १३7
३. देवास आयन् पर शूरं विभ्रन्, वना वृश्चन्तो अभि विऽभिरायन्। नि सुहव दधतो वक्षणासु यत्रा कृपीटमनु तद् दहन्ति।। ऋग. १०/२८/८
४. पृथ्वी यद् वा वै०। ऋग्वेद ८/९/१०   ५. अथर्ववेद ८/१०/११
५. अथर्ववेद ८/११/१२
६. कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रम्यै त्वा पोषाय त्वा। यजुवेद ९/२२
7. कृषन्तः वपन्तः, लुनन्तः, मृणन्तः। शतपथ १/६/२/३
८. जीवन्ति स्वधयाऽन्नेन मर्त्याः। अथर्ववेद १२/१/२२
९. किं वावपनं महत्। भूमिरावपनं महत्। यजुर्वेद २३/४५-४६
१०. अथर्ववेद ३/17/१-३
११. अथर्ववेद ३/17/५-८
१२. अथर्ववेद ३/17/६
१३. अथर्ववेद ३/17/६
१४. अथर्ववेद ६/१/१
१५. अथर्ववेद ३/17/१
१६. अथर्ववेद ३/17/३
17. अथर्ववेद ३/17/२
१८. अथर्व. ३/17/४, ऋग.४/५7/7
१९. अथर्ववेद ३/17/५
२०. अथर्ववेद ३/17/६
२१. अथर्ववेद १०/६/३३
२२. नमः उर्वराय। यजु० १६/३३
२३. खले न पर्षान्। ऋग्वेद १०/४८/7
२४. खल्याय च। यजु १६/३३
२५. खल्जाः तान् नाशय। अथर्ववेद ८/६/१५
२६. यजु० १२/६८
२7. यजु० १२/7०
२८. यजु० १/२१
२९. शतपथ ब्रा० १/१/२/१३
३०. यज्ञो वै भुवनस्य नाभिः। तैत्तरीय ब्रा० ३/९/५/५
३१. यजु० ३१/१४
३२. यजु० १८/१
३३. यजु० १८/7
३४. ऋग्वेद ८/१४/५

अथर्ववेद में निहित कृषि का स्वरूप

❑ कु. मिताली.....✍

वैदिक काल से ही भारतवर्ष कृषि प्रधान देश रहा है। वेदों के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि वैदिक काल में कृषि एवं पशुपालन ही लोगों का मुख्य व्यवसाय एवं आजीविका का साधन रहा है। वस्तुतः सभी सभ्यता के विकास का आधार उसकी आर्थिक संरचना पर केन्द्रित होता है और उसी क्रम में कृषि का अन्यतम योगदान है। विशेषकर भारत जैसे देश के लिए जो कि आज भी ग्राम प्रधान देश है जहाँ कृषि ही मुख्य व्यवसाय है।

वेदों में अनेक स्थल पर कृषि एवं कृषि के अनेक तत्त्वों उल्लेख प्राप्त होता है परन्तु मेरा शोध–पत्र अथर्ववेद में निहित कृषि पर केन्द्रित है, जिसके अन्तर्गत कृषि के स्वरूप एवं उसका महत्व, भूमि एवं मृदा के प्रकार तथा कृषि प्रक्रिया एवं उसके विभिन्न साधनों का उल्लेख किया गया है।

Ñf"k dk vFk

कृषि शब्द की व्युत्पत्ति कृष् धातु एवं इक् प्रत्यय से युक्त होकर हुआ जिसका अर्थ है हल चलाना, खेती अथवा काश्तकारी (वामन आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृष्ठ 298)।

तैत्तिरीय संहिता में कृषि के लिए छन्द शब्द का प्रयोग है जिसके दो अर्थ ग्रहण किये जा सकते हैं– (1) आच्छादन, (2) संगीत।

पहला आच्छादन अर्थात् जीवन को सुख से आच्छादित करने वाला तथा दूसरा संगीत जो कि जीवन को आनन्दमय बनाने वाला हो।

वेदों में प्रायः कृष्टी शब्द का प्रयोग मिलता है जिसका प्रयोग कृषक अर्थ में हुआ है। ऋग्वेद के 6.21.2 पर सायण भाष्य में कृष्टी का अर्थ किसान करते हुए भूस्वामियों अथवा भूश्रमिकों के मध्य तनावपूर्ण सम्बन्ध को इंगित किया है। अथर्ववेद कृषिसूक्त (3.17.5) में कृषक के लिए किनाश शब्द का प्रयोग मिलता है तथा पृथ्वी सूक्त (12.1.4) में कृष्टि शब्द का प्रयोग मिलता है इसके अतिरिक्त कतिपय स्थान पर कार्षीवण शब्द भी प्रयुक्त किये गये हैं जिसका अर्थ अन्न–विशेषज्ञ है। जिसको भूमि जोतने और बीज बोने का कार्य करने वाले के रूप में बतलाया गया है यथा– **^'kqu fduk'kk vu ;Ur okgku*A** कार्षीवण के अतिरिक्त भी क्षत्रस्य पत्नी का भी प्रयोग जो स्त्री को क्षेत्र (खेत) की स्वामिनी होने का संकेत देता है।

Ñf"k dh mRifÙk] Lo:i ,o egÙo

ऋग्वेद में अश्विन देवता के द्वारा सर्वप्रथम आर्यों को वृक (हल) के द्वारा बीज बोने की कला सिखलाने का उल्लेख है यथा–

;o o`d.kkf'ouk oiUr"k ngUrk eu"kk;
nL«kkA (1.117.21)

,o~p] n'kL;Urk ekuo i"; fnfo ;o
o`d.k d"k;% (8.22.6)

अथर्ववेद (8.10.11) में पृथ्वी वैन्य राजा को कृषि विद्या का आविष्कारक होने का स्पष्ट उल्लेख है :–

^rk i`Foh oU;¨·/k¨d rk Ñf"k p lL;
pk/k¨d*A

''श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार कृषि कर्म के अयोग्य पथरीली भूमि को जोतकर समतल

बनाने का श्रेय राजा पृथु को है जिस कारण से भूमि का नाम पृथ्वी पड़ा।'' इस प्रकार कृषि की उत्पत्ति के सन्दर्भ में अनेक मत दृष्टिगोचर होते हैं।

ऋग्वेद में वैदिक आर्य कृषीव समाज के रूप में चित्रित किये गये हैं। वे लोग कृषि को विशेष महत्व दिया करते थे। यजुर्वेद (9.22) में **¼Ñ";S Rok {k©ek; Rok½** में कृषि को मानव कल्याण का उत्कृष्ट माध्यम कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में तो कृषि को यज्ञ के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त थी जिसका चातुर्मास्य यज्ञ प्रत्यक्ष उदाहरण है।

पराशर स्मृति में कृषि के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि अन्न का उत्पादन कर तथा खल–यज्ञ पूर्ण करने के पश्चात् मनुष्य सुखोपभोग–सामग्री से सम्पन्न हो जाता है। खल यज्ञ से तात्पर्य है अन्न उत्पन्न होने के पश्चात् खलिहान में देवार्चन तथा अतिथि अभ्यागतों एवं याचकों का अन्नदान द्वारा सत्कार। उसी क्रम में यह भी उल्लेख है कि यदि मनुष्य धर्मानुसार कृषि कार्य करता है तो कृषि से बढ़कर न कोई धर्म है और न लाभ और न ही उससे बढ़कर कोई सुख का साधन :–

Ñ"¨jU;«k u¨ /ke¨Z u YkkÒ% Ñf"kr¨·U;r%A
l|[k u Ñf"kr¨·U;«k ;fn /keZ.k orZrA

(पराशर स्मृति 5.185)

इस प्रकार कृषि का प्रत्येक मानव के जीवन में विशिष्ट योगदान है यतोहि; **^voL«kRoZ fujéRoa Ñf"kr© uk© tk;rA*** (पराशर स्मृति 5. 186)

Òfe dk egÙo ,oa mlds Ádkj

भूमि ही सकल प्राणियों का सुस्थिर एवं सुदृढ़ आधार है जिससे समस्त प्राणियों की जीविका के सम्पूर्ण साधन अन्न आदि पदार्थों की उत्पत्ति होती है। भूमि के इसी महत्त्व को दृष्टि में रखकर कौटिल्य ने भूमि को ही मुख्य अर्थ माना है–

eu";k.kka o`fÙk vFk%A eu";orh
ÒfefjR;Fk%A (अर्थशास्त्र, 15.1)

महर्षि शुक्राचार्य के अनुसार भी भूमि समस्त प्राणियों के सुखों का खान है जिसके लिए देवता और दैत्यों के मध्य अनेक संग्रामों का वर्णन भी प्राप्त होता है। उनके अनुसार जो व्यक्ति अपने उपभोगार्थ धन और जीविका को तो सुरक्षित रखता है परन्तु यदि अपन भूमि की सुरक्षा नहीं करता तो उसके धन और जीविका का भी नाश हो जाता है–

miÒ¨xk; ; /kua thforaA ;| u jf{kreA
u jf{krk u Òa;|u fda rL; /kuthfor%AA

(शुक्रनीति, 1.79)

भूमि से तात्पर्य से पृथ्वी से है जो मुख्य अर्थ स्वरूप है। अथर्ववेद के भूमिसूक्त (12.1) में भी भूमि का तात्पर्य पृथ्वी से ही है जिसमें भूमि अथवा पृथ्वी के महत्त्व को विस्तारपूर्वक उपन्यस्त किया गया है।

इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में ही सत्य, ऋत, तप, ब्रह्म एवं यज्ञ द्वारा पृथ्वी को धारण करने का उल्लेख है। वस्तुतः सम्पूर्ण पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी के आविर्भाव, स्वरूप एवं महत्त्व को प्रकाशित किया गया है। प्रलयावस्था में सृष्टि के पूर्व सम्पूर्ण पृथ्वी को जलमग्न बतलाया गया है–

^;k.kZo·f/k lfYkYkex vkl hn* (12.1.8)

तथा इस पृथ्वी का अन्वेषण स्वयं भगवान् विश्वकर्मा रूप विष्णु ने किया था–

^ÒE;ka ;L;ka ;Ka rUora fo'odek.k*

(12.1.3)

पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी के अनेक कार्यों का

वर्णन है जिससे उसकी महत्ता स्वयंसिद्ध है जिनमें से कतिपय मन्त्रों को हम इस प्रकार देख सकते हैं:–

^ukukoh;kZ vk"k/kh;kZ fcÒfrZ i`fFkoh u%* (12.1.2)

^;k fcÒfrZ cgq/kk Ák.kns tr* (12.1.4)

^fo'oLoa ekrje¨"k/khuka /kzqoka Òfea i`fFkoh /keZ.kk /k`rke*~

^ÒE;k noH;¨ nnfr ;KA (12.1.17)

ÒE;k eu"";k thofUr Lo/k;kéu eR;k%A* (12.1.22)

सम्भवतः अथर्वा ऋषि ने पृथ्वी के ऐसे अनेक गुणों एवं स्वरूपों का अनुभव कर ही **^ekrk Òfe% iq«k¨ vga i`fFkO;k*** ऐसा उल्लेख किया है।

e`nk d s Ádkj %&

'अथर्ववेद, यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में मिट्टी के कतिपय भेदों की चर्चा है। ये इस प्रकार हैं– मृद्–मृत्तिका (चिकनी मिट्टी), रजस भूमि (सामान्य मिट्टी), अश्मा अश्मन्वती (पत्थरवाली), किशिल (छोटे कंकड़ वाली), दूरिव्य (ऊसरवाली, श्वेती के अनुपयुक्त मिट्टी), उर्वश, उर्वर्य (उपजाऊ, खेती के योग्य), सिकता, सिकत्य (बालू वाली मिट्टी)।' (अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी, पृ0 128)

Òfe d s Ádkj %&

वेदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भूमि के विविध भेद हैं–

यथा– **moZ;kZ;0 'k"l;k;0 bfj.;k;A**

(यजुर्वेद 16.33, 42 एवं 43)

अर्थात् – उर्वरा भूमि (उपजाऊ)

शष्प्य (चारागाह योग्य)

इरिण (ऊसर)

अथर्ववेद में उर्वरा (**ch teoZjk;ka Ñ"Vs dkY"u j¨gfr**, 10.6.33)

तथा इरिण (**onUrq i`f'uckgo¨ e.Mdk bfj.kku] of"V lä**, 4.15.12)

के अतिरिक्त अरण्य भूमि का भी उल्लेख किया गया है। यथा– **fgeoUrh vj.;a rs i`fFkoh L;¨ueLrq** (पृथ्वीसूक्त 12.1.11)

कृषि के दृष्टि से भी भूमि का विभाजन दो प्रकार से किया गया है–

^Ñ"ViP;a p es·Ñ"ViP;a p es*~

(तैत्तिरीय संहिता, 4.7.5.1)

अथर्ववेद में भी अकृष्टपच्य भूमि का उल्लेख किया गया है–

^{khja ek eU;a nnEÒkÑ"ViP;a v'ku c/kkU;a g;%* (5.29.7)

Ñf"k ÁfØ;k ,oa mlds Áeq[k lk/ku %&

वेदों में कृषि प्रक्रिया के साथ–साथ कृषि के अनेक साधनों का भी उल्लेख किया गया है।

वैदिक काल के कृषि–कर्म की प्रक्रियाओं एवं प्रकार पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि आज की कृषि वैदिक काल से ही साम्य रखती है। ऋग्वेद में कृषि प्रक्रिया को हम इस प्रकार दृष्टिपात कर सकते हैं:–**^^;uä lhjk fo ;qxk ruq/oa Ñrs ;¨u© oirsg cht e**

तात्पयार्थ, हल जोती, जाड़ियाँ ठीक करो तथा भूमि तैयार करने के पश्चात् बीज का वपन करो अर्थात् बीज बो दो।

शतपथ ब्राह्मण में तो कृषि प्रक्रिया का वैज्ञानिक स्वरूप उपस्थित है–**^Ñ"kUr% oiUr% YkqUr% e.kUr%*** (शतपथ 1.6.1.3)

तात्पर्यार्थ, कृषन्तः (कर्षण कार्य), वपन्तः (बीज बोने का कार्य)। लुनन्तः (लवन अर्थात् पके खेत की कटाई) एवं मृणन्तः अर्थात् मड़ाई में धान्य को कूट कर स्वच्छ अन्न को प्राप्त करना।

अथर्ववेद में वर्णित कृषि प्रक्रिया वर्तमान प्रक्रिया से पर्याप्त साम्य रखती है जिन्हें हम निम्न मन्त्रों द्वारा इस प्रकार देख सकते हैं–

^'kqu lqQkYkk fo rqnUrq Òqfee* (3.1.7.5)

rRi'pkr oiu dk;Z %&

^;Fkk chteqoZjk;k Ñ"V QkY¨u j¨gfr* (10.6.3)

वपनोपरान्त जल द्वारा सिञ्चन के कार्य का भी महत्व बतलाया गया है–

^vki% fpnLe ?krfer {kjfUr* (7.18.2)

वपन एवं सिञ्चनोपरान्त निराई को भी आवश्यक बतलाया गया है जिसके द्वारा अनावश्यक तृण आदि को हटाकर खेत एवं फसल दोनों की रक्षा की जाती है। निराई के पश्चात् कटाई को भी अत्यन्त महत्वपूर्ण बतलाया गया है। धान्य काटने के पश्चात् उसकी गठरी को बाँधकर उठाते हैं जिसे पर्ष कहा जाता है।

Ñf"k d fofÒé lk/ku %&

कृषि रूपी यज्ञ को सफल बनाने हेतु अनेक साधनों की आवश्यकता होती है। वैदिक काल में भी अनेक साधनों का उपयोग हुआ करता था जो वर्तमान समय से कतिपय भिन्न थे तो कतिपय समान भी थे। वर्तमान समय में आधुनिक तकनीकियों एवं उपकरणों का उपयोग किया जाने लगा है जो एकपक्ष में सुविधाजनक तो है पर उनके अनेक नकारात्मक प्रभाव भी है परन्तु वैदिक कृषि पद्धति के प्रयोग से हमारा पर्यावरण सदैव शुद्ध एवं सुरक्षित रहा करता था।

वेदों में अनेक कृषि साधनों का उल्लेख है। यथा–

¼1½ Òqfe& जिसका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है।

¼2½ gYk ,o cSYk& वेद में हल के अर्थ में सीर, वृक एवं लाङ्गल शब्द आते हैं जिनमें से अथर्ववेद में सीर एवं लाङ्गल दोनों ही शब्द का प्रयोग देखने को मिलता है।

^;qua lhj fo ;qxk ru¨r Ñrs ;¨u© oirg chte* (3.17.2)

^Ykkÿ³Yka iohjor' lq'khea l¨elRI#* (13.17.3)

^,oÿp 'kqua Ñ"krq Ykkÿ³ye* (3.17.6)

हल के अगले एवं नुकीले भाग के लिए सीता, काल एवं स्तेग शब्द प्रयुक्त किये गये हैंः–

^bUæ% lhrka fu xàrq* (3.17.4)

^'kqua lqQkYkk fo rqnUrq Òqfe* (3.17.5)

वेद में बैल के लिए वृषभ एवं वाह शब्दों का प्रयोग मिलता है। उदाहरणार्थ **'kqu okgk%** (3.17. 6)। हल चलाने के लिए ईषा, युग (जुआ), वरत्रा (रस्सी) एवं अष्ट्रा (तोद, तोत्र अथवा पैना) तथा वाह (बैल) की आवश्यकता होती थी जिसमें हल खींचने वाले बैलों की संख्या छः, आठ, बारह या चौबीस तक होती थी। अथर्ववेद के एक मन्त्र में लगभग हल के समग्र स्वरूप का उल्लेख देख सकते हैं–

'kqu% okgk% 'kqu% uj% 'kqua Ñ"krq Ykkÿ³ye

'kqua oj«kk c/;Ur«kk 'kqu% jk"Vªkefnÿ³;A (3.17.6)

¼2½ [kkn& खाद कृषि का भोजन माना जाता है। अथर्ववेद में श्वाद के लिए करीष, शक तथा शाक शब्द आये है। पं0 श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने अपनी पुस्तक वेद में कृषि विद्या में वेद के निम्नलिखित मन्त्रों के आधार पर कृषि के लिए खाद का वर्णन

किया है।

(1) **vk fuep% 'kÑnd¨ vikÒjrA**

(ऋग्वेद, 1.161.10)

(2) **vfLeu x¨"B¨ djhf"k.kh%A**(अथर्ववेद, 3.14.3)

(3) **bg¨o xko ,rug¨ 'kd¨o i¨";rA**

(अथर्ववेद, 3.14.5)

(4) **f'ko¨ o¨ x¨"B®Òoro 'kkjh'kkdso i¨";rA**

(अथर्ववेद, 3.14.5)

(5) **;nL;k% iRiYku¨ 'kÑn nklh leL;frA**

(अथर्ववेद, 12.4.9)

¼3½ tYk ¼Ñf"k dk thou:i½ जल जिस प्रकार समस्त प्राणियों के जीवन का आधार है उसी प्रकार कृषि के लिए भी जीवनाधायक तत्त्व है।

अथर्ववेद में कृषि के लिए कई स्रोतों से जल प्राप्त करने की बात कही गई है जिसमें वृष्टि अथवा वर्षा प्रमुख है। अथर्ववेद (4.15 एवं 7.20) में वर्षा के महत्त्व का वर्णन करते हुए वर्षा को सिंचाई का मुख्य साधन माना है—

o"kL; lxk¨ e/;Ur¨ Òofe¨ iFkx
tk;Ure¨"k/k;¨ fo'o:ik% (4.15.2)

इसी सूक्त में उत्तम कृषि के लिए वर्षा की उपयोगिता भी बतलाई गई है। ऋग्वेद के 7.49.2 मन्त्र में सिंचाई के काम आने वाले चार प्रकार के जल का उल्लेख किया गया है यथा—

;k vki¨ fnO;k mr ok lzofUr [kfuf«kek
mr ok Lo;at% leqækFkk ;k 'kqp;%
ikodLrk vkI;¨ Lo;at% nohfjg ÒkeoUr%A

यहाँ दिव्या से तात्पर्य वर्षा के जल से, खनित्रिमा का तात्पर्य कुएँ एवं नहरों आदि के जल से, स्वयंजा से तात्पर्य है प्राकृतिक स्त्रोत आदि का जल यथा झरना तथा समुद्रार्था से तात्पर्य है समुद्र में मिलने वाली नदियों से जल से। इसी प्रकार अथर्ववेद में भी विभिन्न प्रकार के जलों से सिंचाई का उल्लेख मिलता है।

उदाहरणार्थ— **dqY;k bo âne** (20.17.7)

(नहरों से सिंचाई)

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वैदिक काल का कृषि ही वर्तमान कृषि का आधार है।

'kks/kPNk=k] laLd`rfoHkkx]
dyk ladk;] dk'kh fgUnw fo'ofo|ky;

lUnÒZ xzUFk&lwph %&

1. Atharvaveda Samhita, Edited and Revised by K.L. Joshi, Vol. I, II & III. Parimal Publication, Delhi (year 2000).
2. अथर्ववेद भाष्य, सायणाचार्यकृतभाष्ययुत,विश्वबन्धुविश्वेश्व—रानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, वि0 2017
3. अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी, विश्व भारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर, भदोही, सन् 2012
4. अथर्ववेदे राजनीति : डॉ0 विनायकरामचन्द्ररटाटे, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण
5. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, 37 बी, रवीन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी, पंचम संस्करण 2010
6. शुक्रनीति, मनोज पब्लिकेशन्स, 761, मेन रोड बुराड़ी, दिल्ली—110084, नौवां संस्करण—2013
7. मनुस्मृति, टीकाकार गणेशदत्त पाठक, श्री ठाकुर पुस्तक भण्डार, कचौड़ी गली, वाराणसी—221001
8. धर्मशास्त्र का इतिहास, डॉ0 पाण्डुरंग वामन काणे, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ—226001
9. गोपथ ब्राह्मण, मू0 नारायण प्रेस, कलकत्ता, 1861
10. आपस्तम्बधर्मसूत्रम् (पालन्दसंग्रह)
11. शतपथ ब्राह्मणम् (सायण भाष्य), लक्ष्मी व्यंकटेश प्रेस, कल्याण, 1940

कृषि–व्यवस्था

(वैदिक वाङ्मय के सन्दर्भ में)

❑ **उपमा राय....**✍

कृषि एक उत्तम उद्योग है। कृषि से ही मानव–जाति का कल्याण होता है। प्राणों के रक्षक अन्न की उत्पत्ति कृषि से ही होती है। ऋतु की अनुकूलता, भूमि की अवस्था तथा कठोर श्रम कृषि–कार्य के लिए आवश्यक है।

कृषि शब्द 'कृष्' धातु तथा 'इक्' प्रत्यय के योग से बना है। जिसका अर्थ है– हल चलाना, खेती या काश्तकारी।[१] वैदिक संस्कृति, कृषि संस्कृति है। संहिता काल तक आर्य लोग ग्राम और नगरों में बस गये थे और उन्होंने कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य आदि द्वारा अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को पूर्ण करना आरम्भ कर दिया था। यजुर्वेद में कृषि की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि कृषि का महान् स्थान भूमि है, हम इस पर अपने पराक्रम और सौभाग्य का वपन करें और बहु उपजवाली कृषि करें। क्योंकि परमात्मा ने हमें ऐश्वर्य और कृषि के लिए उत्पन्न किया है यह सम्मानजनक, प्राकृतिक और कार्य–कारण व्यवस्था है। अतः कृषि को अपने अर्थ तन्त्र का आधार मानते हुए वैदिक आर्य सस्यश्यामला भूमि को सौभाग्य की सहस्र धाराओं का पान कराने वाली माता के समान देखते थे।[२] अथर्ववेद में कृषि–सूक्त के ऋषि विश्वामित्र ने कृषि को सौभाग्य को बढ़ाने वाली बताया है।[३]

वैदिक कृषि से सम्बन्धित यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है कि कृषि एवं पशुसम्पदा में, समाज के भरण–पोषण में किसकी भूमिका कितनी थी। कृषि की वह प्रगति कब हुई, जब वह भरण–पोषण का प्रमुख साधन बन गयी, वैदिक काल में कृषि व्यवस्था अर्थात् सिंचाई का माध्यम, कृषि श्रमिक और सुरक्षा के क्या उपाय थे?

{k= ¼[kr½&ऋग्वेद में क्षेत्र (खेत) शब्द का प्रयोग इस बात का स्पष्ट संकेत करता है कि अलग–अलग खेतों का अस्तित्व था।[४] कुछ स्थलों पर यह शब्द 'भूमि' का द्योतक है।[५] अथर्ववेद में और बाद के ग्रन्थों में भी इस शब्द से पृथक् एक अन्य प्रकार के खेत का आशय स्पष्ट होता है।

खेत दो प्रकार के होते थे– उपजाऊ (अप्रस्वती) तथा बंजर (आर्तना)।[६] ऋग्वेद के अनुसार खेत सतर्कतापूर्वक नये होते थे। यह तथ्य कृषि के लिए भूमि पर वैयक्तिक प्रभुत्व का स्पष्ट संकेत करता है। इस तथ्य की पुष्टि ऋग्वेद के एक सूक्त द्वारा भी होती है, जिसमें अपाला का अपने पिता की उर्वरा भूमि पर प्रभुत्व उसी समान माना गया है जैसे उसके सिर के बाल उसके व्यक्तिगत अधिकार में थे।[७]

flpkbZ O;oLFkk& जल कृषि का प्राण है। भरपूर फसल के लिए सिंचाई आवश्यक है। तथा उस समय सिंचाई के प्रमाण भी मिले हैं। ऋग्वेद में सिंचाई के दो प्रकार के जलों का उल्लेख है। एक ''खनित्रिमा'' जो भूमि खोदकर प्राप्त होता है। दूसरा 'स्वयंजा' जो नदी नाले और वर्षा आदि से उपलब्ध है।[८]

ऋग्वेद में ऐसे भी संकेत हैं, जिनके अनुसार रस्सी, डोल और रहट आदि द्वारा कुओं से जल निकालना सूचित है। कुंओं का जल सिंचाई हेतु नालियों (सुषिरा) द्वारा खेतों तक पहुंचाया जाता था। इसके लिए कुल्या (नहर) के जल का उल्लेख

भी है।[६] अथर्ववेद में हल से जोती गयी भूमि को इन्द्र वर्षा के द्वारा सींचने को कहा गया है, तथा यह बताया गया है कि जब भूमि घी और शहद से योग्य रीति से सिंचित होती है और जलवायु आदि देवों की अनुकूलता उसको मिलती है, तब वह हमें उत्तम मधुर रसयुक्त धान्य और फल देती रहती है।

?kru lhrk e/kuk leDrk fo'onsojuerk e#fö% lk u% lhrs i;lkH;kooRLok tLorh /kkror fiUoekukAA[fŒ]

इसी प्रकार ऋग्वेद में ही एक और वर्णन प्राप्त होता है कि कुओं से पानी पत्थर के बने चक्के (अश्मचक्र) से निकाला जाता था, जिनमें रस्सियों के सहारे जल भरने वाले कोश थे।[11]

df"k Jfed& वैदिक युग में लोग कृषि में अत्यधिक रुचि रखते थे और इसे धन–सम्पत्ति, पशु और पक्षी आदि ऐश्वर्यों का स्रोत मानते थे।[12] कृषि कार्य श्रम साध्य है और उन्नति कृषि परिश्रम से ही सम्भव है। अतः वेदों में कृषि सम्बन्धित श्रमिकों का अनेकत्र उल्लेख है। 'किसान' हल जोतने वाला, 'वप' बीज बोने वाला और 'धान्यकृत' अन्न ओसाने या स्वच्छ करने वाला कहा गया है।[१३] अथर्ववेद के कृषि सूक्त में कहा गया है कि हल के सुन्दर फाल भूमि की खुदाई करें, किसान बैलों के पीछले चलें। हमारे हवन से प्रसन्न हुए वायु एवं सूर्य इस कृषि से उत्तम फलवाली रसयुक्त औषधियाँ देवे। बैल सुख से रहे, सब मनुष्य आनन्दित हों, उत्तम हल चलाकर आनन्द से कृषि की जाय।[१४]

uhjhfrdk,¡ ,o df"k&lja{kk& कृषि के लिए पशु–पक्षी, कीड़े–मकोड़े के अतिरिक्त अनावृष्टि एवं अतिवृष्टि आदि ईतियाँ (बाधायें) बड़ी समस्यायें रही हैं। इन छः इतियों से कृषि को बचाना नीरीति कहा गया है। ऋग्वेद में इन्द्र और वृत्त के युद्ध का आलंकारिक वर्णन है।[15] जो मेघ और अवर्षण का संघर्ष माना जाता है। आस्तिक आर्य अनावृष्टि को हटाने और वर्षा आदि के लिए यज्ञों द्वारा इन्द्रों की स्तुति करते थे। अति वृष्टि और विद्युव्यात आदि संकटों से कृषि को बचाने हेतु वे तन्त्र–मंत्रों का अभिचार करते दिखाई देते हैं। अथर्ववेद में वर्णन प्राप्त होता है कि– वायु और सूर्य मेरे हवन को स्वीकार करें और जो जल आकाशमण्डल में है, उसकी दृष्टि से इस पृथिवी को सिंचित करें।[१६]

_rq& कृषि की ऋतुओं का तैत्तिरीय संहिता में संक्षिप्त उल्लेख है।[१७] 'जौ' ग्रीष्म ऋतु में पकता था और इसे जाड़े में बोया जाता था। धान (चावल) शरद् ऋतु में पकता था तथा वर्षा के आरम्भ में बोया जाता था, परन्तु माष और तिल ग्रीष्म–ऋतु की वर्षा के समय बोया जाता था और जाड़े में पकता था। तैत्तिरीय संहिता के अनुसार वर्ष में दो बार फसल (सस्य) काटी जाती थी।[१८] कौषीतकि ब्राह्मण के अनुसार जाड़े की फसल चैत्र महीने तक पक जाती थी।[१६] कृषकों की अनेक कठिनाइयाँ होती थीं।

{ks=ifr& वैदिक आर्यों के जीवन–निर्वाह के लिए कृषि का इतना अधिक महत्त्व एवं उपयोग था कि उन्होंने 'क्षेत्रपति' नामक एक देवता की स्वतंत्र सत्ता मानी है तथा उनसे क्षेत्रों के सस्य–सम्पन्न होने की प्रार्थना की है। क्षेत्रपति का वर्णन ऋग्वेद में इस प्रकार प्राप्त होती है– हमारे फाल सुखपूर्वक पृथिवी का कर्षण करें। हलवाहे (कीनाश) सुखपूर्वक बैलों से खेत जोतें। मेघ मधु तथा जल से हमारे लिए सुख बरसाये तथा शुनासीर हम लोगों में सुख उत्पन्न करें।[२०]

i'kq lEink & कृषि में जिस प्रकार उपकरणों एवं भू क्षेत्रों की संख्यात्मक, तकनीकी एवं मात्रात्मक प्रगति हो रही थी, उसके विश्लेषण से कुछ संकेत मिलते हैं, ऋग्वेद के काल तक ६, ८ या १२ तक बैल एक हल में जोते जाते थे। जबकि उत्तर–वैदिक काल में एक हल में २४ की संख्या तक बैल जोते

जाते थे। ''कृषन्तः, वपन्तः, लुनन्तः, मृणन्तः— जुताई, बुआई, कटाई, मड़ाई में प्रयोग होने वाले उपकरणों की कल्पना भी की जा सकती है।[२१] ऐसे हलों के आकार—प्रकार की कुछ कल्पना भी की जा सकती है, जिनमें दो से २४ तक बैल जोते जाते थे।

vuk t& ऋग्वेद में 'यव' तथा 'धान' का उल्लेख है, परन्तु इनके अर्थ पर मतभेद है। ये अनाज के साधारण नाम माने जाते हैं। बोए जाने वाले अनाजों के नाम हैं— व्रीहि (धान), यव (जौ), मुद्ग (मूँग), माष (उड़द), गोधूम (गेहूँ), नीवार (जंगली धान), प्रियंगु (मसूर), श्यामक (साँबा), तिल।[२२] खीरे (उर्वारू या उर्वारुक) का भी नाम मिलता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि उस समय खेती आज की ही भाँति होती थी।

'kks/kPNk=k]
ofnd n'ku foHkkx]
lLd`r fo|k /keZ foKku ladk;]
dk'kh fgUnw fo'ofo|ky;]
okjk.klh&„„ƒŒŒ‡

lnHk xUFk lwph

१. संस्कृत—हिन्दी शब्दकोश : वामन शिवराम आप्टे
२. अथर्ववेद— १२/१/१२
३. 'सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।' अथर्व वे0 ३/१७/८
४. ऋक्0 — १०/३३/६
५. ऋक्0—१/१००/१८
६. ऋक्0—१/१२७/६
७. ऋक्0—८/११/५
८. ऋग्वेद— १०/३४/१३
९. ऋग्वेद— १०/६४/१३
10. अथर्ववेद— ३/17/5—6
११. ऋग्वेद— २/12/११—12
12. अथर्ववेद ३/१७/७
13. ऋग्वेद—७/४६/२, १०१/५—६, ४/१७/१६, १/५५/८
14. ऋग्वेद— ३/४५/३, १०/६६/४
15. अथर्ववेद— ३/१७/१६
१६. ऋग्वेद— ११/२५/४
17. तैत्तिरीय संहिता ७/२/10/२
18. तैत्तिरीय संहिता ५/१/७/३
19. कौषीतकि ब्राह्मण १६/२
२0. ऋग्वेद— ४/५६/८
२१. वैदिक एज (सं0आर0सी0 ०६ मजुमदार), पृ0 ४६४, उद्धृत अथर्ववेद, श0ब्रा0 आदि।
२२. बाज0सं0 १८/१२

आर्यवाचो म्लेच्छवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः॥ १॥

—मनु0 [तु०—१०।४५]॥

म्लेच्छदेशस्त्वतः परः॥ २॥

—मनु० [२।२३]॥

जो आर्य्यावर्त्त देश से भिन्न देश हैं, वे 'दस्युदेश' और 'म्लेच्छदेश' कहाते हैं। इससे भी यह सिद्ध होता है कि आर्य्यावर्त्त से भिन्न पूर्व देश से लेकर ईशान, उत्तर, वायव्य और पश्चिम देशों में रहने वालों का नाम 'दस्यु' और 'म्लेच्छ' तथा 'असुर' है। और नैर्ऋत, दक्षिण तथा आग्नेय दिशाओं में आर्य्यावर्त्त देश से भिन्न रहने वाले मनुष्यों का नाम 'राक्षस' है।

– अष्टम समुल्लास,
सत्यार्थ-प्रकाश

वेदों में कृषि-विज्ञान

❑ कु.प्रियंका पाठक.....✍

भारतीय संस्कृति का मूलाधार ग्रन्थ वेद ही है। भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों का पूज्य एवं पवित्र स्थान है। वेद आर्यजाति के प्राण हैं। वेदों के विषय में मनु का यह कथन बहुत ही सारगर्भित है– **^^lo'Kkue;k fg l%**** मनु.२.७

अर्थात् वेदों में सभी विद्याओं के सूत्र विद्यमान हैं। वेदों में जहाँ धर्म, आचारशिक्षा, नीतिशिक्षा, सामाजिक जीवन, राजनीतिकशास्त्र, अर्थशास्त्र, आयुर्वेद आदि से सम्बद्ध पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है, वहीं विज्ञान के विविध अङ्गों से सम्बद्ध सामग्री भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। वेदों में भौतिकी, रसायन–विज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, जन्तुविज्ञान, प्रौद्योगिकी, कृषि, गणितशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, वृष्टिविज्ञान, पर्यावरण एवं भूगर्भ विज्ञान से सम्बन्धित सामग्री भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त है।

वैदिक आर्य उस अवस्था को पार चुके थे जिसमें मनुष्य अपनी क्षुधाशक्ति के लिए फल–मूल पर ही निर्भर रहा करता था, अथवा पशुओं का शिकार कर मांस से अपनी उदराग्नि को ज्वाला को शान्त करता था। वे लोग एक सुव्यवस्थित तथा एक स्थान पर रहने वाले समाज में सुसंगठित हो गये थे, खानाबदोश फिरकों की तरह एक जगह से दूसरी जगह पर अपना निवास स्थान बदला नहीं करते थे। उस समय उनकी जीविका का प्रधान साधन कृषि तथा पशुपालन था। वे कृषीवल समाज के रूप में ऋग्वेद में चित्रित किये गये हैं। आर्य कृषि को बहुत महत्त्व देते थे। जुए में पराजित द्युतकर को ऋषि ने उपदेश दिया कि जूआ खेलना छोड़ दो और खेती करने का अभ्यास करो– **v{kek nh0;% df"kfer d"kLo** – ऋ० १०/३४/७

df"k dk egÙo %

सम्पूर्ण मानव जीवन अन्न पर निर्भर है। अन्नों की प्राप्ति कृषि से होती है अतः कृषि मानव मात्र के जीवन का आधार है। सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही अन्न की समस्या उत्पन्न हुयी। इसके निवारणार्थ कृषि का आविष्कार हुआ। कृषि–कार्य गौरव का कार्य माना जाता था, इसलिए इन्द्र और पूषा देवों को इसमें लगाया गया।

bUn% lhrk fuxg.kkrqŒA –अ० ३/१७/४

कवि और विद्वान् लोग भी कृषि–कार्य करते थे। (अथर्व ३/१७/१) ऋग्वेद के अनुसार अश्विन ने सर्वप्रथम आर्य लोगों को हल (वृक) के द्वारा बीज बोने की कला सिखायी।

n'kL;Urk euos iO;a fnfo ;oa o`d.k d"kFk%

–ऋग्वेद ८/२२/६

;oa o`d.kkf'ouk oiUrs"ka ngUrk eu"kk; nlk

–ऋग्वेद १/११७/२१

अथर्ववेद में वर्णन है कि विराट् ब्रह्म जब मनुष्यों के पास पहुँचा तो उन्होंने उसे इरावती (अन्नसमृद्धि) कहा। इस इरावती को दुहकर उन्होंने कृषि और सस्य (अन्न) प्राप्त किया। कृषि और अन्न से ही मनुष्यों का जीवन यापन होता है।

rs df"ka p lL;a p eu";k mi thofUrA

–अथर्ववेद–८/१०/२४

जो कृषि विद्या में निपुण होते थे, उन्हें कृष्टराधि और उपजीवनीय (सफल आजीविका वाला) कहा जाता था।

d"Vjkf/k#i thouh;ks HkofrA

–अथर्ववेद–८/१०/२४

कृषि–विशेषज्ञों को 'अन्नविद्' नाम देते हुये कहा गया है कि उन्होंने ही कृषि के नियम (याम) बनाये थे।

;n ;ke pØ%& vUufon%

–अथर्ववेद–६/११६/१

कृषि को मानवीय कल्याण का साधन माना गया है। यजुर्वेद में राजा का प्रमुख कर्त्तव्य बताया गया है कि वह कृषि की उन्नति करें, जल का कल्याण करे और धन्य–धान्य की वृद्धि करें।

d";S Rok {kek; Rok j¸;S Rok ik"kk; RokA

–यजुर्वेद–९/२२

ऋग्वेद में खेत के लिए 'उर्वर' तथा 'क्षेत्र' शब्द साधारणतया प्रयुक्त किये गये हैं। खेत दो प्रकार के होते थे– उपजाऊ (अप्नस्वर्त) तथा पड़ती (आर्तना, ऋ० १/११७/६)। खेतों के माप का भी वर्णन ऋग्वेद में मिलता है। खेत बिल्कुल एक चकला ही नहीं होता था, बल्कि उन्हें नाप–जोख कर अलग–अलग टुकड़ों में बाँट दिया करते थे, जो विभिन्न कृषकों की जोत में आते थे।

{ks=feo foeeLr tuuA –(ऋ० १/११०/५)

खेतों के स्वामित्व के विषय में विद्वानों में काफी मतभेद है, किन्तु ऋग्वेद के अनुशीलन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि खेत पर किसी जाति विशेष का अधिकार नहीं होता था। यह वैयक्तिक अधिकार का विषय था। वैदिक काल के कृषि–कर्म के प्रकारों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय खेती आज की भाँति ही होता थी। खेत (उर्वर–क्षेत्र) को हलों से जोतकर बीज बोने योग्य बनाया जाता था। वैदिक काल में वैश्य लोग ही अधिकतर खेती किया करते थे।

पक जाने पर फसल को हँसुआ (कतनी–ऋ० १०/१०/३३, दात्र ऋ० ८/७८/१०) से काटते थे। अनाज को पुलियों में बाँधते थे तथा खलिहान में लाकर भूमि पर माड़ते थे जिससे अनाज डंठल से अलग हो जाता था।

शतपथ ब्राह्मण में पूरे कृषिकार्य को चार प्रकारों में वर्णित किया गया है–

१. कर्षण– खेती की जुताई करना।
२. वपन– बीज बोना।
३. लवण– पके खेत की कटाई करना।
४. मर्दन– मड़ाई करके स्वच्छ अन्न को प्राप्त करना।

d"kUr% oiUr% yquUr% e.kUr%

–शतपथ–१/६/१/३

मर्दन के बाद चलनी (तितउ) अथवा सूप (शूर्प) से अनाज भूसे से अलग किया जाता था।

cht] Hkfe vkj o"kk %

ऋग्वेद का कथन है कि उत्कृष्ट अन्न के लिये उत्तम कोटि का बीज बोना चाहिए। अतएव किसान उत्तम बीज बोते हैं। **oiUrk chtfeo /kkU;kdr%**– ऋ० १०/९४/१३ अथर्ववेद में अन्न के लिए उत्तम भूमि और वर्षा की आवश्यकता बताई गई है।

बीज बोने से पहले भू–परिष्कार आवश्यक है, अर्थात् भूमि से घास–फूंस, कंकड़, पत्थर आदि को निकाला जाय और भूमि को सम किया जाय। मिट्टी को मुलायम बनाया जाय। इसके लिए यजुर्वेद में कहा गया है– **^d`r ;kuk*** भू–परिष्कार के बाद ही बीज बोया जाय।

यजुर्वेद और अथर्ववेद का कथन है कि जुती हुयी भूमि में खाद के रूप में घी, दूध और मधु का प्रयोग किया जाय। इससे भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है।

/kkru lhrk e/kuk leT;rke]
ÅtLorh i;lk fiUoekukA

–यजु० १२.७०/अ० ३/१७/९

बोए जाने वाले अनाजों के नाम मन्त्रों में मिलते हैं। ब्रीहि (धान), यव (जौ), मुद्ग (मूंग), माष (उड़द), गोधूम (गेहूँ), नीवार (जंगली धान), प्रियंगु

(मसूर), श्यामाक (सांवा), खीरे (उर्वारु या उर्वारुक) का नाम मिलता है।

तैत्तिरीय संहिता में कुछ अन्य अनाजों के नाम मिलते हैं। कृष्ण व्रीहि–काला धान–इसका छिलका काला होता है, परन्तु चावल लाल होता है।

आशु व्रीहि– जल्दी पकने वाला धान। यह सम्भवतः साठी धान है। पाणिनी ने इसको षष्टिका (६० दिन में पकने वाला कहा है।) (अष्टाध्यायी ५/१/९०)

egkohfg& यह बड़े दाने वाला चावल है। (बासमती)

xoh/k|d& यह जंगली गेहूँ है।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि वेदों में कृषि का अत्यधिक महत्त्व था। आज की ही भाँति उस समय भी फसल बोने का वही तरिका था। विविध प्रकार के फसल उगाते थे। सिंचाई के लिए वर्षा, कुआ तथा समुद्र जल पर आश्रित रहते थे। वेदकालीन कृषि आज की ही भाँति उन्नत थी।

'kk/kPNk=k]
fodfr foKku foHkkx]
vk;|osZn laLFkku; (IMS)
dk'kh fgUnw fo'ofo|ky;]
okjk.klh&„„ƒŒŒ‡

प्रश्न—जन्म एक है वा अनेक?

उत्तर—अनेक।

प्रश्न—जो अनेक हों, तो पूर्व जन्म और मृत्यु की बातों का स्मरण क्यों नहीं?

उत्तर—जीव अल्पज्ञ है, त्रिकालदर्शी नहीं, इसलिये स्मरण नहीं रहता। और जिस मन से ज्ञान करता है, वह भी एक समय में दो ज्ञान नहीं कर सकता। भला पूर्व जन्म की बात तो दूर रहने दीजिये, इसी देह में जब गर्भ में जीव था, शरीर बना, पश्चात् जन्मा, पाँचवें वर्ष से पूर्व तक जो-जो बातें हुई हैं, उनका स्मरण क्यों नहीं कर सकता? और जागृत वा स्वप्न में बहुत सा व्यवहार प्रत्यक्ष करके जब 'सुषुप्ति' अर्थात् गाढ़ निद्रा होती है, तब जागृतादि व्यवहार का स्मरण क्यों नहीं कर सकता? और तुम से कोई पूछे कि बारह वर्ष के पूर्व तेरहवें वर्ष के पाँचवें महीने के नवमें दिन दस बजे पर पहिली मिनट में तुमने क्या किया था? तुम्हारा मुख, हाथ, कान, शरीर किस ओर किस प्रकार का था? और मन में क्या विचार था? जब इसी शरीर में ऐसा है तो पूर्व-जन्म की बातों के स्मरण में शङ्का करनी केवल लड़केपन की बात है। और जो स्मरण नहीं होता है, इसी से जीव सुखी है, नहीं तो सब जन्मों के दु:खों को देख-देखकर दु:खित होकर मर जाता। जो कोई पूर्व और पीछे जन्म के वर्त्तमान को जानना चाहै, तो भी नहीं जान सकता, क्योंकि जीव का ज्ञान और स्वरूप अल्प है। यह बात ईश्वर के जानने योग्य है, जीव के नहीं।

- नवम समु. सत्यार्थ-प्रकाश

अथर्ववेद में कृषि का स्वरूप

❑ अनघा गावस्कर.....✍

वेद हिन्दू धर्म के मूलस्थानी है । इसलिए कहा गया है – **वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।** *मनु.स्मृ.२.६* भारतीय संस्कृति में वेदों का स्थान श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण है । वेदों में अथर्ववेद की व्याप्ति मनुष्यजीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हैं । इसमें चारों वर्णो, आश्रमों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – इन चारों वर्गो से सम्बन्धित सामग्री हैं । अथर्ववेद मनुष्य को प्रेरणा देता है कि हे पुरुष, तेरा उत्थान अथवा उन्नति हो, तेरा अध:पतन न हो।[१] भारत प्रारम्भ से ही कृषि प्रधान देश रहा है। अधिकांश लोगों के जीवन–यापन का स्रोत कृषि ही रहा है। समाज में जीने के लिये मानव को अपनी आवश्यक जरुरतों – भोजन, वस्त्र और आवास के लिये धन का होना आवश्यक है। धन के बिना किसी भी प्रकार के कार्य सम्भव नही हैं। वैदिक काल में समाज का भरण–पोषण करनेवाले वर्ग को 'कृष्टि' या 'विश्' नाम दिया है। 'कृषि' यह शब्द – कृष् विलेखने, इससे व्युत्पन्न हुआ है । **कृषति भूमिं य: –कृषक:।**[२] इस वर्ग का मुख्य कार्य कृषि एवं पशुपालन था । सभी व्यवसायों में सम्भवत: कृषि ही प्रधान थी।[३] अथर्ववेद में इन सब का विवरण किया गया है । प्रस्तुत निबन्ध में अथर्ववेद में कृषि के स्वरूप का विवेचन किया गया है।

कृषिजीवन –

भारतीय समाज की समृद्धि के लिए आर्थिक जीवन अच्छा होना महत्त्वपूर्ण है। उसमें कृषिकार्य सबसे महत्त्वपूर्ण है। सभी व्यवसायों में सम्भवत: कृषि ही प्रधान थी। ऋग्वेद में (१०.३४) में सभी कर्मो को छोडकर कृषि करने की सलाह दी गयी है। (कृषिमित् कृषस्व)[४] ऋग्वेद काल से ही यह कृषि व्यवसाय चलता आ रहा है यह ज्ञात होता है। खेती में परिश्रम करने वाला किसान तेजस्वी दिखाई देता है तथा वह विष्णु का साम्य करता है।[५] इस तरह अथर्ववेद में कृषिकार्य का वर्णन किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि उस काल में कृषिविज्ञान की पूर्ण जानकारी उन लोगों को थी।

भूमि का विकास – किसान की अपने जीवन में यह एक मुख्य अभिलाषा होती है की खेती फलवती हो,धान्य से सम्पन्न हो, खेती को हानी पहुँचने वाली विभिन्न विपत्तियों का चित्र भूमि सूक्त में (१२.१) मिलता है। पृथिवी को ही 'धर्मणाधृता' कहा गया है । इस वेद के एक मन्त्र में सत्य, ऋत, दीक्षा, तप, ब्रह्म आदि को पृथिवी के धारक तत्त्व माना गया है।[६] इसका आशय यही है कि हम इन तत्त्वों से युक्त जीवन यापन करें, तभी संसार की स्थिति सम्भव हैं।[७] कृषिकार्य में भूमि का पर्याप्त योगदान है। अपनी आवश्यकता के अनुरूप किसी भी समाज को अपने खाद्य की पूर्ति के लिये प्रयत्न करना पड़ता है। इस सूक्त का उच्चारण नि:सन्देह किसान कृषिकर्म का आरम्भ करने से पूर्व भूमि की पूजा के समय करता रहा होगा, क्योंकि कृषि के लिए पहली आवश्यकता भूमि की है। भूमि संरक्षण के लिए वृक्ष के काटने का निषेध किया है।[८] क्योंकि वृक्ष को काटने से भूमि का क्षरण होता है। कृषिकार्य के लिए वृक्षरोपण महत्त्वपूर्ण है।उक्त सूक्त से पता चलता है कि किसान को भूमि को उर्वरा बनाने का बडा ध्यान रहता था। बार–बार की बुआई से भूमि की उर्वरा– शक्ति धीरे–धीरे क्षीण हो जाती है , अत: इस वेद में वैज्ञानिकों और शकों को प्रेरणा की गयी है कि उन्हे भूमि की शक्ति पर विशेष ध्यान रखना चाहिए।[९] भूमि का विकास करने पर वह ध्यान देते थे।

विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।। (अथर्व -१२-१-६)

पृथ्वी के विशेषण कृषि कार्य की दृष्टि से भी सार्थक कहे जा सकते हैं। क्योंकि विश्व का भरण-पोषण कृषि की अनुकूलता पर निर्भर है।

बीज बोने की पद्धति - कृषिकार्य में बीज बोने के समय एक संक्षिप्त विधि में बताया गया है कि सब बीजों को पहली बार बोने के समय बीज की पहली मुट्ठी सुवर्ण स्पृष्ट जल में भिगोकर बोनी चाहिए और निम्नलिखित अर्थ वाला मन्त्र बोलना चाहिए । ''प्रजापति और काश्यप देव अर्थात सूर्यपुत्र मेघ को सदा हमारा नमस्कार हो। बीजों और धनों में मेरे लिए सीता देवी (कृषि की देवी) समृद्ध हो।[१०] आकाश में वर्तमान जलदेवता है वो वृष्टि से जुती हुई भूमि को गीली करने के लिये शुनासीर देवता और सीता देवी को प्रणाम करते है।[११] बीज बोने की विधि बतायी है।[१२] इस वेद में उसका विस्तार से विवेचन किया गया है।

खेती के उपकरण - उस में खेती की साधन उपकरणों की और पद्धतिओं की चर्चा की है। जैसे अनेक हल, ईशा (हलस),अष्टा (चाबुक), बैल इत्यादि।[१३] हल को लाङ्गल कहा गया है। जिसका संदर्भ ऋग्वेद में भी मिलता है।[१४] उसके अग्र भाग को फाल कहते है। (ऋ ४-५७-८, १०-१११-७) कृषि सूक्त में बुद्धिमान् पुरुष लांगलों को जोतने के लिए दो बैल लगाते हैं। बुद्धिमान् पुरुष देवविषयक सुखदायक हविरूप अन्न को पाने के लिए दो बैलों के कंधों पर हल धरते हैं।[१५] अथर्ववेद में छः बैलों और कई बैलों के द्वारा चलाये जाने वाले हलों का वर्णन है।[१६] भूमि को गहराई तक खोदने के लिये एक से अधिक बैलों का प्रयोग किया जाता था। बैल सुख से रहे। जोतने वाले पुरुष चैन से रहें। वे फलों से सुखपूर्वक भूमि को जोते। यह वर्णन भी प्राप्त होता है।[१७] यहाँ चाहे बैल हो, भूमि हो या कृषीवल हो सबके सुख की कामना की हैं। समाज की उन्नति यह उद्देश्य दिखाई देता है। अर्थववेद में चार प्रकार के अनाजों का विवरण मिलता है - यव, माश, व्रीहि तथा तिल आदि।[१८] ईक्षु की खेती करने का वर्णन उपलब्ध होता है।[१९] यव उनका प्रमुख धान्य था। किसान प्रार्थना करते हैं - यवकी जिस भूमि पर प्रार्थना कर रहे है उसमें वह आकाश की तरह उन्नत बने और सागर की तरह क्षयरहित रहे।[२०] कृषि को उपजाऊ बनाने के लिये खादका प्रयोग किया जाता था। खाद कृषि का भोजन है इसलिये खेतों में उपज बढाने के लिये गोबर (करीश) की खाद देते थे।[२१] गोबर सर्वोत्तम खाद होता है। अर्थववेद से इस बात की पुष्टि होती है की खेतों के लिये मवेशियों के खाद का ही प्रयोग होता था और सिंचाई भी करते थे।

सिंचाई - कृषि के लिये जल अत्याधिक आवश्यक है। जब जल नही बरसता है तब सभी किसान वर्षा के लिये आसमान में निहारते रहते हैं । बारिश ज्यादा होने के लिये अर्थववेद में तीन सूक्तों का वर्णन पायाजाता है । (४-५५) इस सूक्त में पर्जन्य देवता और मरूत देवता की स्तुति की गयी है। जल पृथ्वी को तृप्त करे, बरसती हुई वर्षा की धाराएँ पृथ्वी को आर्द्र करती हुई बरसे। सिंचाई उत्तम फसल के लिये आवश्यक है। इस तथ्य को स्वीकार करते हुये वैदिक आर्य पानी के प्राकृत स्रोत के अलावा अपनी भूमि को सिंचित करने के लिये कृत्रिम सिंचाई के साधनों का प्रयोग करते थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने कुओं एवं नहरों की व्यवस्था की थी।[२२] 'कूप' का संदर्भ ऋग्वेदकाल से ही प्राप्त होता है। वे कहते हैं - वालुकामय प्रदेश, कुओं, कुम्भ और पर्जन्य यह जल मुझे सुखकारक हो।[२३] जिसके आधार परकहा जा सकता है की वैदिक आर्य कुओं का निर्माण करना जानते थे। इस वेद में गड्ढ़े से प्राप्त जल को कल्याणकारी कहा है। नदियों से नहर निकालकर भूमि को सिंचित करने की कला से भी वे पूर्णतः परिचित थे।[२४]

कृषि के शत्रु -कृषि को हानि पहुँचा सकते हैं, ऐसे तत्त्वों का वर्णन भी वेद में मिलता है। कृषि के शत्रुओं से भी ये लोगपरिचित थे। बीजों के अंकुरित होने पर किसान को यह भय होता है कि कही चूहे आदि जन्तु खेती को खाकर नष्ट न कर दें। इन विपदाओं से बचने के लिये

वह आश्विन देव की स्तुति उससे प्रार्थना करते है। खेती के शत्रु प्रमुख रूप से निम्न हैं - अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि, धूप तथा हिम, आखु (चुहा), तर्द (कठफोडवे), पतंग (टिड्डा), जभ्य (घुन) तथा उपक्वस (जहरिला कीडा) आदि।[२५] खेत पर चूहें- कीटक, व्यद्वर (खूब खाने वाले) न हाने के लिये उनको डराने वाले सूक्त गाये जाते थे।[२६] टिड्डियों, कीट-पतंगों के द्वारा होनेवाले विनाश से दुर्भिक्ष की आपत्ति का सामना करना पडता है इसकी लोगों को जानकारी थी। धान्य के पक जाने पर दात्र से काटकर गठ्ठों में बान्धकर लेते और खलियान में लाकर और मलकर, सूप की साहायता से अन्न को भूस से अलग करते थे। इस तरह कृषि कार्य संपन्न होता था।

उपरि सन्दर्भों के आधार पर कहा जाता है कि आर्यों का मुख्य कार्य कृषि ही था। कृषि कर्म के साथ क्षेत्र में उन्हें विस्तृत तथा सुसम्बद्ध ज्ञान था। वे कृषि के विकसित स्वरूप से परिचित थे।

शोधच्छात्रा,
मुम्बई विद्यापीठ

सन्दर्भ सूची-

१. अथर्व.८.१.६ उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षताति कृणोमि। आ हि रोहेमममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ।।
२. राधाकान्तदेव, शब्दकल्पद्रुमः, द्वितीयो भागः , चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, ०११, पृ. १८०
३. महादेवशास्त्री जोशी, होडारकर पद्मजा, भारतीय संस्कृतिकोष -खंड-१ , भारतीय संस्कृतिकोष मंडल, पुणे, १९८२, प.-२५४
४. ऋ. १०.३४.१३ कृषिमिति कृषष्व ।
५. अथर्व.-०.५.३५. विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा प्राणसंषितः पुरुषतेजाः ....निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टी यं वयं द्विष्मः ।।
६. वही. १२-१-१ सत्यं बृहतमुग्रं दिक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
७. रघुवीर वेदालंकार, वैदिक निबन्ध, न्यु भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली, २००७ पृ.१२८
८. अथर्व १२-१-१७ ध्रुवांभूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् । शिवां स्योनामतु चरेम विश्वहा ।
९. वही. १२.१.७ यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् । सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ।।
१०. कौ. अ.२-२४-४१-३६-३७. सर्वबीजानां तु प्रथमवापे सर्वर्णोदकसंप्लुतां पूर्वमुष्टिं वापयेदमु च मन्त्रं ब्रुयात्.....प्रजातये काश्यपाय देवाय च नमः सदा। सीता मे ऋध्यतां देवी बीजेषुच धनेषु च ।।
११. अथर्व.३.१७.७,८ शुनासीरेह स्म जुषेथाम्। ....सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।।
१२. वही.६.१४२.१,२ उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव । मृणीहि विश्वा पात्राणि मा त्व दिव्याशनिर्वधीत्। तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः ।
१३.वही.२.८.४ ईशायुगेभ्यः। अथर्व.३.१७.६ शुनम् अष्ट्राम् उदिङ्गय।
१४. ऋ.४-५७-४ शुनं वाहा शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् । शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ।।
१५. अथर्व. ३-१७-१ सीरां युञ्जन्ति कवयों युगा वि तन्वते पृथक। धीरा देवेषु सुम्नयौ ।।
१६. अथर्व.६.१९.१,८.९१.१६. - शड् जाता भूता प्रथमजतस्य शड सामानि शडहं वहन्ति ।।
१७. अथर्व. ३.१७.६ शुनं वाहा शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् । शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ।।
१८. वही. ६. १४०.२ व्रीहिमतत्रत्तं यवमत्तम् अथो माषम् तिलम्।
१९. वही. १.३४.४ मधोरस्मि मधुतरो वनाः शाखा मधुमतीमिव ।।
२०. वही. ६.१४२.२ आश्रुन्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाच्छावदामसि। तदुच्छ्रयस्व दयौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः ।।
२१. वही.१९.३१.३ करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरा च नो गृहे ।
२२ . ऋ. १०.६८.१
२३ . अथर्व. १.६.४ शं न आपो धन्वन्याः शनु संत्वनूप्याः । शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः ।।
२४ . ऋ. १०.९३.१३ , १०१.७
२५. अथर्व. ७.११.१ मा नो वधीर्विद्युता रश्मिभिः सूर्यस्य । वही.७.१८.२ न घ्रंस्तताप न हिमो न जघान ।
२६. वही.६.५०.१-३ हतं तर्द समङ्कम् आखुमश्विना छिन्तं शिरो अपि पृष्टीः शृणीतम् । य आरण्या व्यद्वरा ये के च स्थ व्यद्वरास्तान्त्सर्वान् जम्भयामसि ।।

'आर्ष-ज्योतिः' के अंकों को घर बैठे पढ़ने के लिए क्लिक करें
www.pranwanand.org

श्रेष्ठकृषि के उपाय

❑ शिवानी शर्मा.....

चिरकाल से ही भारत एक कृषिप्रधान देश रहा है और वर्तमान में भी भारत की लगभग ६० प्रतिशत जनसंख्या कृषि सम्बन्धिकार्यों में लगी हुई है। भारतीय प्रथम पञ्चवर्षीय योजना का विषय भी कृषि क्षेत्र में सुधार था लेकिन आजादी के ६९ वर्ष बीत जाने के बाद भी ना तो कृषि क्षेत्र प्रगति कर पाया है और न ही भारतीय किसान की जीवनशैली में अपेक्षित सम्पन्नता आ पाई है।

आज के इस प्रगतिशील युग में भी कृषक परिवार की स्थिति को उद्घाटित करने में केदारनाथ अग्रवाल जी की पंक्तियाँ सक्षम प्रतीत होती हैं–

बस यही नहीं, जो भूख मिली।
सौ गुनी बाप से अधिक मिली।
अब पेट खलाए फिरता है।
चौडा मुंह बाए फिरता है।
वह क्या जाने आज़ादी क्या ?
आज़ाद देश की बातें क्या?

और यही नहीं, प्रतिदिन सामाचार पत्रों के लाल पन्ने भी गरीब किसानों की आत्महत्या ही दु:खद घटनाओं से सने दिखाई देते हैं।

कृषिक्षेत्र का घटता महत्त्व और अन्नदाता की दयनीय दशा, स्पष्टत: हमारी सरकारों और उनकी नीतियों का नाकारा साबित कर देती हैं। अनेक प्रयासों के बाद भी स्थिति में सुधार के आयास नजर नहीं आते, इसलिए कृषि को श्रेष्ठ बनाने के उपायों पर ध्यान देने की आवश्यता अनुभवित होती है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में तो 'जल-संकट' ही कृषि क्षेत्र की अविकसितता का कारण बना हुआ है। अधिक दूर क्यों जायें, इस वर्ष ही भारत में जो भारी सूखा और जल संकट दिखाई पड रहा है, उससे इस कथन पर विश्वास हो उठता है कि 'तृतीय विश्वयुद्ध जल ही के कारण होगा'। सम्पूर्ण पृथ्वी पर ७० प्रतिशत जल है किन्तु पीने योग्य जल कुछ प्रतिशत ही है। उस जल का भी जो दुरुपयोग हो रहा है, उसी का परिणाम आज प्रत्यक्ष है। सबसे पहले तो इस संकट के निवारण की आवश्यकता है। इसके लिए सभी लोगों को जल के उचित प्रयोग हेतु जागरुक किया जाना चाहिए। होली तथा अन्य त्यौहारों पर जल की बर्बादी तथा व्यर्थ की चकाचौंध के आवरण में लिपटे लोगों द्वारा 'कृत्रिम रेन डांस', 'स्विमिंग' जैसे कार्यों के माध्यम से हाने वाली जल की बर्बादी पर पूर्णत: प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए।

आज भी भारत मे बहुलतम कृषि क्षेत्र वर्षा पर निर्भर है। इसके लिए सिंचाई की उचित व्यवस्था होनी चाहिए, जिसके निमित्त आधुनिक सिंचाई तकनीकों का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त अधिक कीटनाशकों का उपयोग भी कृषि के लिए अभिशाप बन जाता है। जैविक खाद के प्रयोग को बढाकर तथा कीटनाशकों का उपयोग को कम करके इस समस्या से निजात पा सकते हैं।

खेतों में कटाई के बाद अवशेषों को जलाने से पर्यावरण भी प्रदूषित होता है और भूमि की उर्वरता भी क्षीण हो जाती है। इसे प्रतिबन्धित करने के बाद भी, इसकी रोकथाम नहीं हो पाई है, जिसके लिए कृषकों को जागरूक करके उन्हें विभिन्न कृषि विकल्पों की जानकारी देनी चाहिए। कृषि मौसम आधारित व्यवसाय है, जिसमें सदा सम्भावनाओं की स्थिति बनी रहती है। इसके लिए सरकार को चाहिए कि किसानों से उनकी फसल खरीद को सुनिश्चित करके उनके उचित मूल्य निर्धारित करें तथा मध्यस्थरूपी रोगों को जड से समाप्त करने के कारगर उपाय करें।

'किसान फसल बीमा' जैसी योजनाओं में किए गए सुधार स्वीकार्य हैं किन्तु ऐसी सभी योजनाओं का धरातल पर भी सटीक क्रियान्वयन होना चाहिए।

इन उपयों को सार्थक रूप से लागू करके श्रेष्ठ कृषि के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है, जिससे कृषकों की स्थिति व भारतीय अर्थव्यवस्था भी स्वत: सुधर जाएगी।

-विधिशास्त्री,
भगत फूल सिंह महिला विश्वविद्यालय, खानपुर

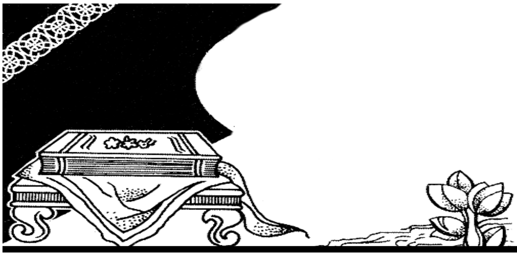

कृषिः वेदानामेव विज्ञानम्

❑ आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा.....✍

कृषिः, इक्[1], इन्[2], इञ्[3] प्रत्ययान्तः शब्दो वर्तते। यस्य प्रकृतिः भ्वादितुदादिगणीयो कृष विलेखने धातुरस्ति। कृषिः शब्दस्य व्युत्पत्तयः सन्ति–

d"k.ke bfr Ñf"k%A
Ñ";r fofy[;r ;k lk Ñf"k%A
d"kfr vkd"krhfr Ñf"k%] onn dkf"k%A

अर्थात् विलेखनकरणम् कृषिरुच्यते, यद्विलेखनं भवति तत् वा कृषिसंज्ञको भवति अथवा यत् कार्यं विलिखति तत् कृषिः कथ्यते। इत्थं खननं खननक्रियाः खननसाधनानि कृषिपदाभिधेयाः भवन्ति।

Ñf"k% onkDr oKkfud de&कृषिकर्म वेदविहितं वेदोक्तञ्च सुवैज्ञानिकं कार्यं वर्तते। वेदेषु कृषिकर्मणः विभिन्नानि प्रकाराणि प्रतिपादितानि। मनुष्यः कृषिकर्मणि प्रवृत्तो भवेत् एतन्निर्दिशता वेदेन उक्तम्–

v{kek nh0;% Ñf"kfer Ñ"kLoAA

ऋ• १०/३४/१३।।

अर्थात् अये मनुष्य! अक्षैः=द्यूतपाशैः, मा=नहि, दीव्यः= क्रीड, कृषिम्= कर्षणकार्यम्, इत्= निश्चयेन कृत्वा, कृषस्व= अन्नमुत्पादय।

Ñ"k% lk/kue&कृषिकरणस्य अर्थात् अन्नोत्पादनस्य साधनं किं स्यात्? एतत् निर्दिशता वेदेन प्रतिपादितम्–

Hkfejkoiu egrAA यजु• २३/४६।।

तात्पर्यमभूत् भूमिः=पृथिवी, आवपनम्= बीजारोपणस्य, महत्=विस्तीर्णं स्थलं वर्तते।

Ñ"k% chtkfu&भूमौ आरोप्यमाणानि बीजानि कथं स्युः? इति संकेतं कुर्वता ऋग्वेदेन उक्तम्–**;o od.kkf'ouk oiUr'keAA** –ऋ•१/११७/२१।।

अर्थात् अश्विना=कृषिकर्मकर्तारौ, वृकेण=छिन्नभिन्नकारकेण हलेन, यवम्=यवादिकम्, इषम्=अन्नम्, वपन्ता=वपेताम्।।

मन्त्रे यवपदं क्षेत्रे वपनयोग्यानां बीजानां उपलक्षकं वर्तते। तात्पर्यमिदं भूमौ यवम्=जौसदृशानि गोधूमः, चणकम्, मकायः, वृत्ततण्डुलः, ज्वारान्नम् इत्याद्यन्नानां बीजानि उप्येरन्।।

Ñf"kdel.k mi;kfxuh Hkfe%&कृष्यै कीदृशी भूमिः उपयुक्ता भवति, अस्य संकेतः अथर्ववेदे विद्यते। यथा–**nok be e/kuk l;r ;o ljLoR;k& ef/ke.kkopÑ"k%A** –अथर्व• ६/३०/१।।

अर्थात् देवाः=जलम्, वायुः इत्यादिभिः तत्त्वैः, मधुना=माधुर्येण, इमम्=एतम्, यवम्=जौ नामकमन्नम्, संयुतम्=मिश्रितम्, निश्चितं च, ते च, मणौ= मणिरुपायाः, सरस्वत्याम्=जलपूर्णायाः नद्याः तटे (सरस्वत्यः इति नदीनाम, निघ• १/१३), इदं यवान्नम्, अवचर्कृषुः=कृषिकर्मणा प्राप्तवन्तः।

मन्त्रस्य तात्पर्यमिदं यत् सरस्वत्याः=नद्याः तटे ये यवम्=यवाः उत्पद्यन्ते, ते भक्षणे मधुररसवन्तः भवन्ति, यतोऽहि नद्याः जलं माधुर्यपूर्णं भवति। मन्त्रस्य अपरं तात्पर्यमिदं यत् नदीः निकषा भूमिः उत्पादनक्षमा भवति।

Hkfe% lehdj.ke&कृषये भूमिः समा स्यात्, तस्याः मानं समरस्थं भवेत् इत्यावश्यकम्। अतः वेदे उक्तम्–**{k=feo fo eeLrtuuA**

ऋ• १/११०/५।।

अर्थात् क्षेत्रम् इव=भूमिम् इव, तेजनेन=रज्जुः, पट्टिका, सरकण्डा आदीनां मानदण्डेन (तिज निशाने), वि ममुः=विशेषं मानं कुर्यात्।

मन्त्रेण स्पष्टं यत् कृषेः योग्या भूमिः क्षेत्रम् वा परिमित्य पृथक् पृथक् क्रियेत, भूम्यादेः विभागः

भवेत्, एतेन करणेन सिञ्चनम् कर्त्तनम् आदिषु सौविध्यं जायते।

Hke% i:dkjk%&भूमेः अनेकाः प्रकाराः सन्ति। तेषाम् अनेकानां भूमिप्रकाराणां प्रतिपादनं वेदेषु विद्यते। यथा–

mo:;k:;A–यजु• १६/३३।।
“k"l;k;A–यजु• १६/४२।।
bfj.;k;A–यजु• १६/४३।।

अर्थात् उर्वर्याय=उर्वरायै=उत्पादनक्षमायै, शष्प्याय=तृणादिप्रभूतायै, इरिण्याय=ऊषरभूम्यै योग्यं जनं प्राप्नुयात्।

मन्त्राणां तात्पर्यमस्ति यत्– भूमिः उर्वरा, इरिण्या, शष्प्या त्रिप्रकारकी भवति। सा भूमिः उर्वरा भवति, या खननाय, विलेखनाय, बीजवपनाय योग्याऽस्ति। उर्वरा भूमिः अप्नस्वती अपि कथ्यते[3]।

इरिण्या भूमिः क्षारमृदा ऊषरभूमिः भवति। ऊषरा भूमिः आर्तना[3] अपि गद्यते।

शष्प्या भूमिः चरागाह=गोचरभूमिः भवति, अस्यां तृणादयः अधिकाः भवन्ति। एतासु तिसृषु भूमिषु उर्वरा भूमिरेव कृषियोग्या वर्तते।

e`fÙkdk Hkn%&मृत्तिकायाः अनेकाः भेदाः सन्ति। मृत्तिकायाः स्निग्धा श्लक्ष्णा वा सोपला सशर्करा आदयः ये भेदाः वर्तन्ते, तेषां भेदानां वेदेषु सम्यग् वर्णनं वर्तते। यथा–

e`fÙkdkA यजु• १८/१३।।
v"eUorhA ऋ• १०/५३/८।।
jtL;k;A यजु• १६/४५।।
fdf'kyk;A यजु• १६/४३।।
fldR;k;A यजु• १६/४३।।
bfj.;k;A यजु• १६/४३।।
mo:;k:;A यजु• १६/ ३३।।

अर्थात् मृत्तिका=श्लक्ष्णामृत्, अश्मन्वती=सप्रस्तरा, रजस्याय=परमाणुवत्यै, किंशिलाय=लघुशर्करा मयायै, सिकत्याय=बालुकावत्यै, इरिण्याय=ऊषरभूम्यै, उर्वर्याय=उत्पादने योग्यायै प्रवीणं प्राप्नुयात्।।

उपर्युक्तेषु मन्त्रेषु मृत्तिकायाः विविधाः प्रकाराः निर्दिष्टाः सन्ति।

“kL; Hknk%&लोके कृषिकर्मणः रविखरीफजायद–नाम्ना त्रीणि शस्यानि=फसलानि प्रसिद्धानि। तेषां शस्यानां प्रकाराणाम् उद्गमः वेदः एव वर्तते। यथा–**o";k; pko";k; pA** यजु• १६/३८।।

अर्थात् वर्ष्याय=वर्षासु भवाय, अवर्ष्याय=अविद्यमानासु वर्षासु भवाय, प्राप्नुयात्।।

मन्त्रस्य वर्ष्याय पदेन वर्षासु निर्भरायाः कृषेः संकेतः वर्तते। वर्षासु निर्भराणि व्रीहिः, मकायः, कार्पासः, वृत्ततण्डुलः=ज्वारान्नम्, इक्षुः, वज्रकः इत्यादीनि शस्यानि भवन्ति, यानि खरीफशस्यानि कथ्यन्ते। एतच्छस्यं जूनजुलाईमासयोः उप्यते, अक्टूबरमासे कर्त्त्यते, अस्य खरीफशस्यस्य वेदे वर्ष्याय पदेन निर्देशः जातः।

मन्त्रस्य अवर्ष्याय पदं वृष्टिं विना जायमानस्य कृषेः संकेतकरम्। अस्य शस्यस्य गोधूमः यवः, चणकम्, तैलमयम् इत्यादीनि अन्नानि भवन्ति, एतानि रविशस्यानि कथ्यन्ते। रविशस्यम् अक्टूबरनवम्बरमासयोः उप्यते, मार्च–अप्रैलमासे च कर्त्त्यते। मन्त्रस्य अवर्ष्याय पदं रविशस्यस्य द्योतकम्।

तृतीयं शस्यं जायद वर्तते। यस्य संकेतकं वेदस्य कृष्टपच्याः पदमस्ति। मन्त्रः विद्यते–**Ñ"ViP;k'p e·Ñ"ViP;k'p e---;Ku dYiUrkeA** –यजु• १८/१४।।

अर्थात् कृष्टपच्याः=कृष्टेषु क्षेत्रेषु भूमौ वा पचन्ति अन्नानि, यज्ञेन=पदार्थमेलनेन, कल्पन्ताम्=सिद्धाः स्युः।।

कृष्टेषु क्षेत्रेषु पचन्ति अन्नानि=भक्ष्यानि कर्कटी, त्रपुषम्, कालिङ्गं, दशाङ्गुलम् इत्यादीनि भवन्ति। तानि भक्ष्यानि जायद कथ्यन्ते। कर्कटी, त्रपुषम् आदीनां कृषिः शस्यं वा मार्चमासे उप्यते, मईजूनमासयोः कर्त्त्यते, प्राप्यते च।।

मन्त्रस्य कृष्टपच्याः पदं जायदशस्यस्य संकेतकरमस्ति।

मन्त्रे अकृष्टपच्याः पदमपि वर्तते। एतदकृष्टपच्याः पदं कर्षणरहितानाम् अरण्ये भूतानां धान्यानां सूचकम्। अरण्ये कृषिकर्म विना नीवारव्रीहयः, कुद्रवः इत्यादीनि धान्यानि अन्यफलानि पुष्पाणि च उत्पद्यन्ते, ते अकृष्टपच्याः कथ्यन्ते।

Ñf"kdel k/kdk% o"kHkk%& शस्यप्ररोहस्य प्रक्रिया कृषिरुच्यन्ते। तस्यां प्रक्रियायां हलस्य उपयोगः भवति। हलस्य वोढारः वृषभाः बलिवर्दाश्च वा भवन्ति। ते बलिवर्दाः सुष्ठु स्युः, अनेकेषु योगेषु= जोड़े इति हिन्द्यां च स्युः इत्यादेः प्रतिपादनं वेदे वर्तते। यथा–

"kqu okgk%A अथर्व॰ ३/१७/६।।

अर्थात् वाहाः=हलवोढारः, शुनम्=सुखकारकाः, सुदृढाः, सबलाः, सरलाश्च (शुनमिति सुखनाम, निघ॰ ३/६) स्युः।

मन्त्रे शुनं पदं सबलस्य उत्तमादेश्च वाचकम्। वाहाः पदं बलिवर्दस्य वाचकं विद्यते।

be ;oe"Vk;kx% 'kMÓkxfHkjpÑ"k%A

अथर्व॰ ६/९१/१।।

अर्थात् इमम्=एतम्, यवम्=यवान्नम्, अष्टायोगैः=अष्टयुगैः वर्गैर्वा, षड्योगेभिः=षड्युगैः, अचर्कृषु=कृषिकर्मणा उत्पादयेयुः।

मन्त्रेऽस्मिन् अष्टायोगैः षड्योगेभिः पदे बलिवर्दानाम् अष्टयोगस्य षड्योगस्य च सूचके स्तः।

एकस्मिन् युगे द्वौ बलिवर्दौ युज्येते, चतुर्षु युगेषु अष्ट, त्रिषु युगेषु षड् युज्यन्ते। मन्त्रेणानेन ज्ञायते यत् बृहतां क्षेत्राणां कर्षणाय अनेकाः बलिवर्दाः क्षेत्रकर्षणे नियोजनीयाः।

मन्त्रस्य एषोऽपि संकेतः, यत् अनेकेषु बलिवर्देषु सत्सु भूमिलेपः= खाद अपि प्रभूतं प्राप्यते। अद्य हलस्य कार्यं टैक्टरयन्त्रेण क्रियते, एतेन भूमिलेपस्य प्रबन्धः पृथक्रूपेण अपेक्षते, अन्यच्च टैक्टरयन्त्रेण प्रदूषणमपि प्रतिपद्यते। बलिवर्दैः क्षेत्रकर्षणे गोमयं प्रभूतमात्रायां प्राप्यते, तेन च गोमयेन क्षेत्रम् अधिकम् उर्वरकं संजायते। मन्त्रस्य एतदपि विशिष्टं विज्ञानं वर्तते।

Hkfeyis [kk|: ok&कृषिकर्मणे भूमिलेपः खाद्यं वा अत्यन्तम् उपयोगी भवति। भूमिलेपाय वेदे शकृत् एवं करीषः[6] एतौ शब्दौ स्तः। यथा च शकृत्–**"kÑndk vikHkjrA** ऋ॰ १/१६१/१०।।

अर्थात् एकः कोऽपि जनः, शकृत्=गोमयं मलं वा, अप आभरत्=नीचैतः सम्यग्रूपेण उत्थापयति।

मन्त्रे शकृत् शब्दः गोमयस्य मलस्य च वाचकः।

भूमिलेप उपयोगितमं करणाय वेदे अनेके उपायाः निर्दिष्टाः। तथा च मन्त्रः–

?kru lhrk e/kuk leT;rk
fo'onsojuerk e#fnHk%A
ÅtLorh i;lk fiUoekukLekUR lhrs
lk;lkH;k ooRLoAA

यजु॰ १२/७०, अथर्व॰ ३/१७/९।।

अर्थात् विश्वैः देवैः=कृषिविद्यायाः विद्वद्भिः, मरुद्भिः=मनुष्यैः, अनुमता=अनुज्ञया, सीता=पटेला इत्याख्यं साधनं, घृतेन मधुना=आज्येन, क्षौद्रेण, समज्यताम्=संयुज्येत, पयसा=दुग्धेन जलेन वा, ऊर्जस्वती= ऊर्जावान्, पिन्वमाना=सिक्तः सन्, यः पटेलाख्यं वर्तते, सः, सीते=पटेलाख्यम्, अस्मान्=क्षेत्राधिकारिणः पयसा=दुग्धेन जलेन वा, अभि आ ववृत्स्व=पौनः पुण्येन प्राप्येत।

अस्मिन् मन्त्रे पुष्टिकरस्यान्नस्य उत्पत्तये भूमिं श्लक्ष्णां मधुरां च करणस्य निर्देशः। भूमिः श्लक्ष्णा मधुरा च कथं क्रियेत, अस्य विधानं वेदेन कृतम्, यत् पटेलायन्त्रे घृतस्य मधुनः लेपनं कर्त्तव्यम्, अन्यच्च तस्योपरि दुग्धं जलं वा प्रक्षिप्य सः क्षेत्रे चाल्येत, एतेन कर्मणा मृद् श्लक्ष्णा मधुरगुणवती च भविष्यति। भूमिलेपस्य गुणवृद्धौ वेदाक्तं इदं विज्ञानम्।

ykdi pyue&वेदस्यास्य विज्ञानस्य लोके भिन्नप्रकारेण प्रचलनं वर्तते। गोधूमादीनाम् अन्नानां पक्वे सति यदा क्षेत्रं कर्त्यते, तदा तस्मिन् कर्त्तनकर्मणि क्षेत्रस्य एकस्मिन् कोणे किंचित् गोधूमादीनां समूहः त्यज्यते, यस्य सर्वान्ते गुडेन घृतेन च पूजार्चनं

क्रियते, ततः कर्त्त्यते। एतद् कार्यं लोके सीरवृद्धिः कथ्यते।

इत्थमेव अलावुः, कुष्माण्डुः इत्यादयः यदा न फलन्ति, तदा तेषु दुग्धस्य प्रक्षेपः लोके प्रसिद्धः। एष दुग्धादेः प्रयोगः लोकेन वेदादेव शिक्षितः। कृषिकर्मणि दुग्धादेः प्रयोगार्थम् अथर्ववेदस्य तृतीयकाण्डस्य सप्तदशं काण्डं पठनीयम अस्ति।

t yf l pufof/k%&कृषये जलम् अत्यधिकम् अपेक्षते। जलं च वर्षाभिः, प्रणालिभिः[७]=नहरनदीभिः[८], सरोवरैः[६], कूपैः[६] आदिभिश्च प्राप्यते। जलस्य एतेषां सर्वेषां साधनानां वेदे निर्देशः विद्यते। वर्षाजलाय मन्त्रः वर्तते–

“kukl hjg Le e t'kFkkeA
;fnnfo pØFk Ik;Lrueke i flpreAA

अथर्व• ३/१७/७।।

अर्थात् शुनासीरा=वाय्वादित्यौ, इह स्म=अस्मिन् कृष्टक्षेत्रे विद्यमानौ स्तः, मे=मम आहुतिम्, जुषेथाम्=सेवेताम्, दिवि=द्योतनशीले अन्तरिक्षे, यत्=यत्, पयः=दुग्धं जलं वा स्तः ते, एतौ वाय्वादित्यौ, चक्रतुः=उत्पादितवन्तौ, तेन=ताभ्याम्, इमाम्=कृषिभूमिम्, उपसिंचतम्=उपसिंचताम्।।

अथर्ववेदे अन्यदपि उक्तम्–**vkif'pnLe ?krfeR{kjfUrAA** अथर्व• ७/१८/२।।

अर्थात् आपः चित्= जलान्यपि, अस्मै= भूमये, घृतम् इत्=आज्यसदृशमेव क्षरन्ति=प्राप्नुवन्ति।

मन्त्रस्य तात्पर्यमिदं वर्षतौ यदा जलं प्राप्यते, तदा तज्जलं पृथिव्याः संवर्धनाय घृतम् इव भवति। कृषौ जलसिंचनं घृततुल्यं वर्तते, कृषेः वर्धकं च भवति (घृ क्षरणदीप्त्योः)। अद्य तु कृषये जलप्रापणम् अति कठिनम्, तस्माद्धेतोः कृषेः कार्यं सविघ्नमेव विद्यते। कृषकाः आत्महत्याः कुर्वन्तः दृश्यन्ते।

xkMu fuLr.kdj.k p& क्षेत्रे गोधूमः, चणकम् इत्यादीनां वपनानन्तरं क्षेत्रस्य समृद्धये तृणस्य अवकरस्य च निस्सारणाय गोडनं निस्तृणकरणं च क्रियते। गोडनं निस्तृणकरणं च कर्मणः संकेतको मन्त्रोऽस्ति–**dfon ³x ;oeUrk ;o fp|Fkk nkUR;uiio fo;;A** अथर्व• २०/१२५/२।।

अर्थात् अङ्ग=हे प्रिय! राजन्, यथा= यादृशम्, यवमन्तः=यवान्नादेः क्षेत्रस्य स्वामिनः, वियूय= तृणमवकरं च अपसार्य, अनुपूर्वम्=क्रमशः, कुवित्=बहु परिमाणे, यवं चित्=यवान्नादिकम्, दान्ति=कर्त्तयन्ति प्राप्नुवन्ति वा, तथैव व्यवस्था क्रियताम्।

मन्त्रे वियूय पदं गोडनार्थे निस्तृणकरणार्थे च वर्तते।

[kyk/kkue¾[kfygku&अन्नस्य पक्वे सति गोधूमः इत्यादयः प्रकर्त्त्य खलाधाने स्थाप्यन्ते। अकर्षिता भूमिः खलः उच्यते, सा खलभूमिः एव खलाधानं निगद्यते। खलाधाने कृषेरुत्पन्नमन्नं निस्तुषं क्रियते। खलाधाननिर्देशकः मन्त्रः–**[ky u Ik'kku ifr gfUeA** ऋ• १०/४८/७।।

अर्थाद्यथा खले पर्षान्=अन्नस्य पूलकाः, पादादिभिः आहन्यन्ते, तथैव शत्रून् हन्मि।

मन्त्रे खले शब्दः खलाधानर्थम्=खलिहानस्य कृते वर्तते।

[kY;k& खलाधाने रक्षितानि अन्नानि खल्याः इति कथ्यन्ते। मन्त्रोऽस्ति–**[kY;k; pA** यजु•१६/३३।। तात्पर्यमस्ति खलाधाने स्थापितमन्नं प्राप्नुयाम।

[kyk/kku Ñfeuk'k&खलाधाने स्थापिते अन्ने आर्दतादिभिः यदि कृमयः भवेयुः, तदा तान्नाशयितुमपि वेदस्यादेशः। यथा–**[ky tk----rkuL;k cã.kLir irhck/ku uk'k;A** अथर्व•८/६/१५।।

अर्थात् खलजाः=खलाधाने अन्नेषु उत्पन्नाः ये कृमयः, तान्=तत्सम्बन्धीन्, ब्रह्मणस्पते=विद्वान्, अस्याः=अस्य दोषस्य, प्रतीबोधेन=ज्ञानं कारयित्वा, नाशय=नाशयेत्।।

मन्त्रे खलजाः पदं खलाधाने उत्पन्नानाम्=कृमीणाम् संकेतम्।।

fuLr"dj.ke¾mlkuk& गोधूमः इत्यादीनां पक्वे सति तेषां पादादिभिः आहननम्=मड़ाई भवति, ततः निःतुष्य, काण्डम्=डण्ठल, बुसं च पृथक् क्रियते।

मन्त्रः विद्यते— **r|'k iykokui rf}uDr|A**

अथर्व॰१२/३/१६।।

भावोऽयं यत् तुषं पलावान्=बुसं, खेट्टम्=तिनका, काण्डं च, तत्=तदाख्यः निःतुष्कर्म, अप विनक्तु=अवच्छिद्य अन्नात् दूरं कुर्यात्।

मन्त्रे तुषं पदं बुसमादेः वाचकम्, अन्यच्च विनक्तु=पदम् अपवारणस्य वाचकं विद्यते।

Ñ"kd lKk%& क्षेत्रस्य स्वामिने वेदे क्षेत्रपति शब्दस्याभिधानं वर्तते। यथा च मन्त्रः—

ue% {k=L; ir;A

अथर्व॰२/८/५।।

अर्थात् क्षेत्रस्य पतये=भूमेः स्वामिनम्, नमः=अन्नम् (नमः इति अन्ननाम निघ॰ २/७) प्राप्नुयात्।[11]

कृषिकर्मवतां जनानां यथा क्षेत्रपतिः संज्ञा अस्ति, तथैव कृष्टराधिः, अन्नवित् सीरपतिः[12], कीनाशः[13], क्षेत्रवित्[14] इत्यादयः संज्ञाः अपि वर्तन्ते। तथा च कृष्टराधेः मन्त्रः—**Ñ"Vjkf/k#ithouh;k HkofrA** अथर्व॰८/१०(४)/२।।

अर्थात् कृष्टराधिः=कृषिविद्यायाः निपुणः, उपजीवनीयः=अन्येषां जीवनानाम् आश्रयः, भवति=जायते।

अन्नविद् संज्ञायाः मन्त्रोऽस्ति—

;|ke pØfu[kuUrk vx dk"khZo.kk v™fonk u fo|;kA अथर्व॰६/११६/१।।

अर्थात् अन्नविद्=अन्नसम्बन्धिज्ञानवन्तः, अन्नलब्धारः, कार्षीवणाः=कृषकाः, न विद्यया=विना विद्याम्, विद्यायाः अभावेऽपि, अग्रे=आदौ, निखानन्तः=भूमिं विदारयन्तः, यत्=यानि, यामम्=नियमानि, चक्रुः=कृतवन्तः, तानि कल्याणकराणि भवन्तु।

मन्त्रेषु कृषिविशेषज्ञानां कृषकाणां कृष्टराधिः एवम् अन्नविद् संज्ञा विहिताः सन्ति।

बहूनि क्षेत्राणि वेदेषु एतदपि इंङ्गितं यज्जनाः बहुक्षेत्रवन्तः अपि स्युः। यथा—**{k=.kk ir;s ue%A**

यजु॰ १६/१८।।

अर्थात् क्षेत्राणाम्=अनेकानां धान्योद्भवाधिकरणानाम्, पतये=रक्षकाय, नमः=अन्नं प्राप्नुयात्।

तात्पर्यमिदं यस्य यादृशं सामर्थ्यम् तस्य पार्श्वे एकम् अनेकानि वा, सामर्थ्यानुसारं क्षेत्राणि भवन्ति।

fL=;% {k=kf/kiRU;%& पुंसां सदृशं स्त्रियः अपि क्षेत्राणां स्वामिन्यः भवन्ति। वेदे चोक्तम्—

{k=L; iRuhA अथर्व॰२/१२/१।।

अर्थात् क्षेत्रस्य=अन्नोद्भवाधिकरणस्य, पत्नी=रक्षिका स्त्री विद्यते।

dU;kuka Ñf"kdeZ& कृषिकार्यं पुंसां यथा भवति, तथैव कन्यानामपि भवति। यथा मन्त्रः—**bUnz fojkg;- --rrL;kojkeAA** ऋ॰ ८/९१/५।।

मन्त्रस्य ऋषी अपाला आत्रेयी विद्यते। अस्य सूक्तस्य प्रथमे मन्त्रे कन्याशब्दः वर्तते। इत्थं पंचमस्यास्य मन्त्रस्य अर्थोऽभूत्—अर्थात् हे इन्द्र=ईश्वर व मेघ, ततस्य=पितुः, उर्वराम्=उर्वरायां भूमौ, वि रोहय=अन्नमुत्पादयः।

मन्त्रे कन्या पितुः कृषिकर्मणः वृद्धये परमात्मानं जलवृष्टये प्रार्थयति। तात्पर्यमिदं कृषिकर्मणे कन्या अपि पुंसां सहाय्यं कुर्वन्ति।

chtoiufo'k"kK%& क्षेत्रे बीजानि उप्यन्ते, सिंचनादिनिमित्ताय केदार्यः क्रियन्ते। तानि सर्वाणि सुष्ठु स्युः, एतन्निमित्तं विशेषज्ञैः विमर्शः आवश्यकः। मन्त्रः विद्यते—**v{k=fon~ {k=fona á iizkV l izfr {k=fonkuqf'k"V%A** ऋ॰१०/३२/७।।

अर्थात् अक्षेत्रवित्=यः कृषिकर्मणः ज्ञानं न जानाति सः, क्षेत्रविदम्=कृषिकर्म वेत्तारम्, हि=निश्चयेन, अप्राट्=पृच्छेत्, सः=प्रष्टाः, क्षेत्रविदा=कृषिकर्मवेत्रा, अनुशिष्टः=अनुज्ञापितः, शासितः सन् वा, प्रैति=क्षेत्रज्ञाने कर्मणि वा प्रवृत्तो भवति।

मन्त्रस्य अक्षेत्रवित् पदं क्षेत्रज्ञानरहितस्य जनस्य वाचकं, क्षेत्रविदा पदञ्च क्षेत्रकर्मवेतृणः वाचकम्। भूमिकरः=लगान लोके दृश्यते यत् क्षेत्रकारकाः राजानं भूमिकरं शस्यशुल्कं वा ददति। राजानं करं दद्युः, अस्य निर्देशकः मन्त्रः—**fo'k'pØ**

cfygr% lgkfHk%A ऋ•७/६/५।।

अर्थात् विशः=प्रजाः, सहोभिः=बलिष्ठान् शत्रून् (निरुद्धया= रोककर), बलिहृतः=करप्रापयितारः, चक्रे=भवेयुः[१५]। शस्यशुल्कविषये अथर्ववेदे उक्तम्–
lTkrkLr cfygr% Ñ.kkrA अथर्व•११/१/६।।

अर्थात् तेजस्वी सम्राट्! ते=तव कृते, सजातान्=यथा कर्माणं राजानम्, बलिहृतः=भूमिकरं दातारम्, कृणोतु=कुर्यात्।

Hkfefookn jkK% gLr{ksi%& क्षेत्राणां संख्यासु क्षेत्रस्वामिषु वा यदा विवादः स्यात्, तदा तस्मिन् विवादे निर्णयाय अधिकारः राज्ञः भवति। मन्त्रः वर्तते–**=lnL;Hkko% {k=lkrk o=gR;"k i#eA**

ऋ•७/१९/३, अथर्व•२०/३७/३।।

अर्थात् (इन्द्रः=राजा), क्षेत्रसाता=क्षेत्रस्य विभागे (षो अन्तकर्मणि), त्रसदस्युम्=भयभीतकारकम्, (प्र) आवः=प्रकर्षरूपेणः च, वृत्रहत्येषु शत्रुसंग्रामेषु, पूरुम्=पूर्णरूपेण रक्षेत्, निर्णयेत्।।

dhVfuokj.ke& क्षेत्रे उप्तानाम् अन्नानां नाशकाः कीटकाः शलभाः शिरयः= टिड्डी, मूषकाः इत्यादयः अपि उत्पद्यन्ते। तानि क्षेत्रनाशकतत्त्वानि नाशयितुमपि वेदे संकेतः। तथा मन्त्रः–

rn g irx g tH; gk miDolA
rkUlokl tEHk;kefl AA

अथर्व• ६/५०/२–३।।

अर्थात् है तर्द=हे हिंसक (तर्द हिंसायाम्), है पतंग=हे शलभ, हा जभ्य=हे सुरसुरीना–माख्यकीट, हा उपक्वस=हे मूषक इत्यादयः, तान्त्सर्वान्=युष्मान्सर्वान्, जम्भयामसि=वयं नाशयामः।[१६]

Ñ"k% Qye v™ke& मनुष्यस्य जीवनम् अन्नेन विकसति सम्पुष्यति च। अन्नेन विना मनुष्यः जीवितुं नार्हति। अन्नं जीवनस्य आधारः। तदन्नं कृषिणा उत्पद्यते। मन्त्रः–**Rk Ñf"k p lL;a p eu";k… mitholUrA** अथर्व•८/१०(४)/१२।।

अर्थात् ते मनुष्याः=कृषिकर्मणि रताः मनुष्याः, कृषिं च सस्यं च=कृषिकर्मणा एवं तेन कर्मणा उत्पन्नस्य सस्येन धान्येन वा, उपजीवन्ति=जीवनं धारयन्ति, अन्नाश्रया भवन्ति।

v™k leL; ;nlUeuh'kk%A

अथर्व•२०/७६/४।।

अयं मन्त्रस्य भावः हे परमेश्वर! यत्= यस्मिन्, अन्ने =अन्नविषये, समस्य= समेषाम् मनीषाः= मनसः कामनाः, असन् उत्पन्नाः जाताः।

तात्पर्यमिदं मन्त्राणां, यत् अन्नं कृषिकर्मणा प्राप्यते, तस्य अन्नस्य च कृते सर्वेषाम् मानसिकाः प्रवृत्तयः भवन्ति। प्रवृत्तिभूताय उत्तमाय अन्नोत्पादनाय वेदे चोक्तम्–

l|·lL;k% Ñ"khLÑf/kA यजु•४/१०।।

अर्थात् हे मनुष्य! सुऽसस्याः=शोभनानि उत्तमानि धान्यादीनि उत्पादनसमर्थाः, कृषीः=कृषिकर्मक्रियाः, कृधिः=कुरु।

mÙkek;k Ñ"k;k jkK% nkf;Uoe&कृषिकर्मणि सौष्ठवं स्यात्, अस्य दायित्त्वं राज्ञः वर्तते। वेदे राज्ञः चत्वारि कर्त्तव्यानि निर्दिष्टानि सन्ति[२०], तेषु कृषिरपि विद्यते। मन्त्रोऽस्ति–**Ñ";S Rok {kek; Rok j¸;S Rok iks"kk; RokA** यजु•९/२२।।

अर्थात् त्वा कृष्यै=त्वां कृषिकर्मणे, त्वा क्षेमाय=त्वां रक्षणाय, त्वा रय्यै=त्वां धनाय, त्वा पोषाय=त्वां पुष्टये अहमीश्वरः नियुनज्मि।।

v™kL; lk/kukfu&कृषिकर्मणा यदन्नं प्राप्यते, तत् यैः साधनैः भोज्ययोग्यं क्रियते, तेषां साधनानामपि वेदे सम्यक् निर्देशः विद्यते। यथा–**elyknhfu& elye-myw[kyeA** अथर्व•११/३(१)/३।।

अर्थात् अन्नम् उलूखले मुसलेन कुट्टनीयम्।

"kiie&कुट्टितस्य अन्नस्य शोधकं साधनं शूर्पः विद्यते। मन्त्रः वर्तते–**"kiie--"kiixkghA**

अथर्व•११/३(१)/४।।

अर्थात् शूर्पग्राही=शूर्पधारकः, शूर्पम्=शूर्पेण, तुषादिकं पृथक् कुर्यात्।

fÛ pRokfj jkK% dÙkO;kfu&

१• कृषेः संवर्धनम्,

२• प्रजायाः रक्षणम्

३• अर्थस्य सम्पत्तेश्च सुदृढीकरणम्

४• सुखानि सुविधाश्च दत्त्वा प्रजायाः पोषणम्।।

v™kik=e&शुद्धस्य कुटि्टतान्नस्य रक्षणाय पात्रं भवति, तत् पात्रस्यापि वेदे संकेतः। यथा मन्त्रः–**Åi ;ofeo fLFkfoH;%AA** ऋ•१०/६८/३।।

अर्थात् स्थिविभ्यः=अन्नरक्षणस्य कुसूलेभ्यः, यवम्=यवान्नम्, इव=यथा, ऊपे= निस्सार्यते, तथैव दोषान् निस्सारयेत्।

मन्त्रे स्थिविभ्यः पदम् अन्नरक्षणस्य कुसूलपात्रस्य वाचकमस्ति।

v™kekid%&कृषिणा उत्पन्नस्य अन्नस्य मापकोऽपि भवति। तस्य मापकस्यापि वेदेन विशिष्टा संज्ञा कृता। मन्त्रः वर्तते–**renzj u i`.krk ;osuUneAA** ऋ•२/१४/११।।

अर्थात् तम्=तदाख्यम्, इन्द्रम्=ऐश्वर्यवन्तम्, यवेन=यवान्नेन, न=यथा, ऊर्दरम्=कुसूलम्, डिहरा पात्रं वा भरन्ति, तथैव पृणत=पूरयत।

मन्त्रे ऊर्दरं पदम् अन्नपरिमापकस्य पात्रस्य अभिधायकम्।

v™kkuka laKk&कृषिणा उत्पन्नानि व्रीहयः इत्यादीनि यानि अन्नानि सन्ति, तेषां कणतण्डुलादिवत् अश्वः, गौः, इत्यादयः संज्ञाः अपि सन्ति। मन्त्रौ स्तः–

v'ok% d.kk xkoLr.Mqyk e'kdkLrq'kk%AA

अथर्व•११/३/५।।

dcq Qyhdj.kk% "kjks·HkzeAA

अथर्व•११/३/६।।

अर्थात् कणाः=कणरूपाः कुट्टने त्रुटिताः व्रीह्यादयः, अश्वाः=अश्वसंज्ञकाः भवन्ति, तण्डुलाः= न त्रुटितानि ओदनानि, गावः= गोसंज्ञकाः निगद्यन्ते, अन्नानां तुषाः=बुसं, काण्डम् इत्यादयः, मशकाः= मशकरूपेण ज्ञायन्ते। फलीकरणाः=एकत्रितानां तण्डुलानां खेट्टानि, कब्रुः=दागरूपदोषाः कथ्यन्ते, शरः=उद्वलितानां तण्डुलानां फेनम्, अभ्रम्=मेघरूपं भवति।

मन्त्रेषु अश्वाः, गावः, मशकाः, कब्रुः, अभ्रम् एताः अन्नानां वेदैः विशिष्टस्थितेः संज्ञाः कृताः।

Ñ"ks% lk/kukfu midj.kkfu&कृषेः कार्यं हलयन्त्रेण सम्पद्यते। तस्य हलस्यापि अनेकानि अवयवानि सन्ति। वेदेषु हलस्य तस्य अवयवानां च कृते विशिष्टशब्दानां प्रयोगः वर्तते।

gye&हलस्य कृते वेदे लाङ्गलम्, सीरः इति शब्दयोः प्रयोगः कृतः। यथा–**ykxya iohjoRlq'khHka lkselRlI#AA** अथर्व•३/१७/३।।

अर्थात् लाङ्गलम्=हलम्, पवीरवत्= वज्रतुल्यम् सुदृढं, कठोरं (पविरिति वज्रनाम, निघ• २/२०), सुशीभम्=चलाने सुखदम्, सोमसत्सरु= श्लक्षणमुष्टीकम्, जलयुतायां भूमौ सारल्येन गतिकारकं वा स्यात्–

lhjk ;q¥tfUr do;%AA यजु•१२/६७।।

अर्थात् कवयः=ज्ञानिनः, सीराः=हलानि कृष्युपकरणानि वा, युञ्जन्ति=योजयन्ति।

उपर्युक्तयोः मन्त्रयोः लाङ्गलं, सीराः इति पदे हलस्य वाचके स्तः।

Qky%&हलस्य अग्रिमः तीक्ष्णः भागः फालः, सीता पद्भ्याञ्च कथ्यते। मन्त्रोऽस्ति–

"kqua lqQkyk fo rqnUrq HkwfeeAA

अथर्व•३/१७/५।।

अर्थात् सुफालाः=सुष्ठु फालवन्ति हलानि, भूमिम्=बीजाधाराम्, शुनम्=सुखेन सारल्येन च, (शुनमिति सुखनाम,निघ•३/६), वि तुदन्तु=खनन्तु कर्षन्तु वा।।

lhrs oUnkegs RokAA अथर्व•३/१७/८।।

अर्थात् सीतेः=हलस्य तीक्ष्णभागेन कृष्टः भूभाग! त्वा=तव, वन्दामहे=गुणान् संकीर्तयामः।

मन्त्रयोः फालाः सीते च पदे वर्तेते, एते पदे हलस्य तीक्ष्णभागस्य वाचके। फालाः सीते इति पदयोरिव हलस्य लम्बं काष्ठं हलस=हस्स भवति, तस्य कृते वेदे ईषा पदं वर्तते।[१७]

;qx oj=k p&हलस्योपरि यः युज्यते तद् युगमिति कथ्यते[१८] । हलं युगं च योक्त्री रज्जुः च वरत्रा उच्यते[१९]।

d'kk&वृषभाणां प्रेरकः, कशा=चाबुक वेणुकं= पैना वा भवति। वेदे एषः एतद् वा अष्ट्रा प्रतोदश्च कथ्यते। मन्त्रोऽस्ति–“kue"Vªefnx;AA अथर्व•३/१७/६।।

अर्थात् शुनम्=सुखकारिणीम्, अष्ट्राम्=कशां वेणुकं वा, उदिंगय= उपरि उत्थाप्य, वृषभान् प्रेरय।

lkjFkh j'ek irksn%AA

अथर्व•१५/२/७।।

अर्थात् सारथी=वृषभादेः चालकस्य जनस्य, रेष्मा=श्वासप्रश्वासरूपा ध्वनिः, प्रतोदः=कशा भवति।।

मन्त्रयोः अष्ट्राम्, प्रतोदः पदे स्तः, ते कशायाः वाचके स्तः।

इत्थं कृषिसम्बन्धीनि अन्यान्यपि अनेकानि उपकरणानि साधनानि वा वेदेषु प्रतिपादितानि सन्ति। कृषिसाधनविषये ऋग्वेदस्य ४/५७/४–८, यजुर्वेदस्य १२/६८–७१, अथर्ववेदस्य ३/१७/१–६ स्थलानि विशिष्टरूपेण द्रष्टव्यानि वर्तन्ते।।

Ñf"kdeZf.k ;K%&कृषिकर्मणः समृद्धये वेदेषु यज्ञकरणस्यापि निर्देशः विद्यते। येन अतिवृष्टिः अनावृष्टिः इत्यादीनां बाधानां निवारणं स्यात्। मन्त्रोऽस्ति–**Ñf"k'p e o`f"V'p e-----;Ksu dYiUrke~A** यजु• १८/६।।

अर्थात् कृषिः=भूमेः कर्षणम् च, अन्यच्च वृष्टिः=समयानुसारं वर्षाकार्याणि, यज्ञेन=पदार्थानां संगतिकरणेन यज्ञादिक्रियया च, कल्पन्ताम्= सिद्ध्यन्तु।।

मन्त्रतात्पर्यं कृषेः कर्म यज्ञपूर्वकं पदार्थानां नियोजनपूर्वकं च भवेत्। यज्ञेन=वृष्टिकर्मणा प्रभूतं जलं प्राप्येत।

इत्थं निष्कर्षोऽयं कृषेः कर्म वेदनिर्दिष्टं कार्यं वर्तते। परमपित्रा परमात्मना कृषेः सर्वेषां साधनानां क्रियाणां च वेदेषु संकेतः कृतः। कृषिकर्म वेदस्यैव विज्ञानं वर्तते।

वेदज्ञानप्राप्तेः अधुना १ अर्बुदम्, ६७ कोटिः, २६ लक्षम्, ४६ सहस्रम्, १ शतोत्तरं, १६ वर्षाणि व्यतीतानि। प्रायः एवं प्रतिभाति यत् सर्वाणि कार्याणि जगति वयं स्वतः कुर्मः, परं नैवेवम्, अल्पज्ञाय जीवाय ईश्वरेणैव सर्वेषां कार्याणां ज्ञानं प्रदत्तम्।

कृषिसम्बन्धीनि क्षेत्रकर्षणम्, वपनम्, गोडनम्, कर्त्तनम्, सिंचनम्, निःतुष्करणं इत्यादीनि सर्वाणि कार्याणि वेदेभ्यः एव परिज्ञातानि सन्ति इति निश्चप्रचम्।

ikpk;kZ&ikf.kfudU;kegkfo|ky;] okjk.klh&f0
&vk;ZdU;kx#dqy f'koxatLFke ¼jktÛ½

lUnHkZ&lwph %&

१. इक्कृष्यादिभ्यः। सू• रोगाख्यायां• वा• ३/३/१०८।।
२. इगुपधात् कित्। उणा • ४/१२१।।
३. कृषेः वृद्धिश्छन्दसि। उणा• २/१२८।।
4. अप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः।ऋ• १/१२७/६।।
5. आर्तनास्विष्टनिः। ऋ• १/१२७/६।।
6. करीषिणीं फलवतीम्। अथर्व• १६/३१/३।।
7. कुल्या इव हृदम्। अथर्व•२०/१७/७।।
8. सिन्धुभ्यः। अथर्व•१/४/३।।
9. अनूप्याः। अथर्व•१/६/४।।
10. खनित्रिमाः। अथर्व•१/६/४।।
११. शन्नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः। अथर्व• १६/१0/१०।।
१२. इन्द्र आसीत्सीरपतिः। अथर्व•६/३०/१।।
१३. शुनं कीनाशाः अनुयन्तु वाहान्। यजु•१२/६६।।
१४. अक्षेत्रवित् क्षेत्रविदम्। ऋ•१०/३२/७।।
१५. विशो बलिहृतस्करत्।। ऋ•१०/१७३/६।।
१६. हतं तर्दं समंकमाखुमश्विना छिन्त्तं शिरो अपि पृष्टीः श्रृणीतम्। अथर्व•६/५०/१।।
१७. नमस्ते लांगलेभ्यो नम ईषायुगेभ्यः। अथर्व•२/८/४।।
१८. युनक्त सीरा वि युगा तनोत। अथर्व•३/१७/२।।
१६. शुनं वरत्रा बध्यन्ताम्। अथर्व•३/१७/६।।

जीवों को योग्य है कि वेदों की रक्षा करने वाले नित्य पवित्र परमात्मा को जानें। (यजुर्वेद–७/१)

प्राचीनभारते कृषिः

❑ डॉ. प्रभासचन्द्रः.....✍

पुरा त्रयो व्यवसायाः प्रधानरूपेण प्रचलिता आसन् कृषिः पशुपालनं शिल्पं च। एतैर्निष्पन्नानि वस्तूनि व्यापारद्वारा देशेषुविदेशेषु प्रेष्यन्ते स्म। क्षत्रधर्मपरायणास्तु शस्त्रास्त्रबलै राष्ट्ररक्षामकुर्वन्।

कृषेर्लोकप्रियता

आर्याः कृषिप्रधाना इति तेषां नाम्नैव व्यक्तं भवति। परवर्तियुगे एतत् सम्यक् समर्थितममरेण 'ऊरुव्या ऊरुजा अर्या वैश्या भूमिस्पृशो विशः।' अर्य एवार्यः वैदिकसंस्कृतेः।

माङ्गलिकः कृषेः समारम्भोऽभूत्। कृषिकर्मणो दिव्यत्वं तस्य लोकप्रियतायाः संवर्धनायैव। तथा हि ऋग्वेदे–

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि।।
ऋग्वेद–५.५७.६

शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा
अभियन्तु वाहैः। शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः
शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम्।। ऋग्वेद–४.५७.७

अन्नस्य महिम्ना कृषेर्गौरवं जायते। तथा हि – अन्नं न निन्द्यात्। अन्नवानन्नादो भवति। अन्नं न परिचक्षीत। अन्नं बहुकुर्वीत। तद्व्रतम्।

अन्नं ब्रह्मेति मतम्। तदधिकृत्यान्नस्य संवर्धनाय कविनाथर्ववेदे प्रगीतम्–

उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव।
मृणीहि विश्वा पात्राणि मा त्वा दिव्याज्ञनिर्वधीत्।।

कृषिसमृद्ध्या राष्ट्राभ्युदयो भवतीति सम्मतम्।

अन्नात् सृष्टेः समारम्भ इति धर्मशास्त्रमतम्। तथा हि तैत्तिरोयोपनिषदि–अन्नाद् पुरुषः। अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते इति।

कवयोऽपि कृषेर्लोकप्रियतामभिव्यञ्जयितुम् आदिकालतोऽगायन्। तथा हि वाल्मीकिरामायणे–

खर्जूरपुष्पाकृतिभिः शिरोभिः पूर्णतण्डुलैः।
शोभन्ते किञ्चिदालम्बाः शालयः कनकप्रभाः।।
अरण्य० १६.१७

कालिदासो निदर्शयति–

काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा
सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या।
आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः प्राप्ता
शरन्नववधूरिव रूपरम्या।।

काव्यमीमांसायां च –

गेहाजिरेषु नवशालिकणावपातगन्धानुभावसुभगेषु कृषीवलानाम् । आनन्दयति मुसलोल्लसनावधूत-पाणिस्खलद्वलयपद्धतयो वधूट्यः।।
१८ अध्यायतः

अस्यां स्थितौ समग्रं राष्ट्रं कृषेरभ्युदयाय जागरूकमभवत्। महर्षीणामाश्रमेषु राज्ञां प्रासादपरिधिषु दरिद्राणां कुटीरेष्वपि कृषेः शस्यश्यामलता गौरवमाधत्ते स्म।

कृषिविज्ञानम्

नवीनप्रस्तरयुगे वन्यानामन्नानां भोज्यत्वम-भोज्यत्वं वा परिज्ञातुं प्रयासोऽभवत्। खाद्यान्नानां कृषियोजनया कृत्रिमोपायैर्विकासः समारब्धः। तस्मात् कालादारभ्य कस्मिन्नृतौ कीदृशे क्षेत्रे कियन्मात्रं बीजं वपनीयम्, तस्य सुसंवर्धनाय च कियद्वारं सेचनं कर्तव्यम्, भूमेरुत्पादनशक्तिः कथं वर्धनीयेति समस्यामधिकृत्य सम्यग्गवेषणं कृतम्। प्रयतमानाश्च ते कृषका अस्यां दिशि वैदेशिकानि बीजानि फलादीनि च स्वदेशे

संवर्धितवन्तः नित्यमेव वन्यानामन्नानां कृषिकल्पं कृतवन्तश्च।

सिन्धुसभ्यतायुगे जना नदीभ्यः सेचनार्थं कुल्या विधाय नालिकाभिः कूपजलं चोद्धृत्य क्षेत्रेषु जलादानं कुर्वन्ति स्म। सिन्धुनदस्य जलं सेचनायोपयुक्तम्।

वैदिकयुगे हले कदाचित् चतुर्विंशतिबलीवर्दाः संयोजिताः। द्वादशानामष्टानां षण्णां च बलीवर्दानां हले संयोजनमपि प्रचलितमासीत्। क्षेत्राणामुत्पादनशक्तिर्भूमि-लेपेन करीषादिना संवर्धिता। घृतेन मधुना च समक्ता सीता सुशोभना भवतीति सम्मतम्। कृषिकर्मणः सर्वाः प्रक्रियाः वैदिके युगेऽपि प्रायशस्तादृश्याः बभूवुः, यादृश्योऽधुना वर्तन्ते। कृषियोग्या भूमिः 'अप्नस्वती' इत्याकलिता। अयोग्या भूमिः 'अर्तना' इति ख्याता। क्षेत्राणां मापः कृतः। शकधूमप्रयोगैः कदा कियन्मात्रं वर्षणं भवेदिति ज्ञेयमासीत्।

परवर्तियुगेऽर्थशास्त्रानुसारं कृषिविज्ञानस्य त्रयो भेदाः - कृषितन्त्रं, गुल्मं वृक्षायुर्वेदश्च बभूवुः। कृषिकर्मणि सीताध्यक्षादयो राजकर्मचारिणः कृषिविद्याविशारदाः बभूवुः। विविधप्रदेशानां वर्षाप्रमाणमनुमतम्। तदनुकूलं तत्रत्योत्पाद्यान्नानां निर्णयः कृतः। वर्षाया उपयोगित्वमनुपयोगित्वं च निर्णीतम्। शाकफलादीनामुत्पादनाय विशिष्टा भूमिः पर्यालोचिता। बीजानामुपकल्पनं वैज्ञानिकविधिना कृतम्। तथा हि-तुषारापायनमुष्णशोषणं चासप्तरात्रादिति धान्यबीजानां त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा कोशीधान्यानां मधुघृतसूकरवसाभिः काण्डबीजानां छेदलेपो मधुघृतेन कन्दानामस्थिबीजानां शकृदालेपः शाखिनां गर्तदाहो गोस्थिशकृद्भिः काले दोहृदं च। प्ररूढांश्चाशुष्ककटुमत्स्यांश्च स्नुहिक्षीरेण वापयेत्।

राजा कृषिकर्मणि वैज्ञानिकानुसन्धानं पुरस्कर्तुं सचेष्ट आसीत्। तथा हि मेगस्थनीजलेखानुसारम्-

Any philosopher who may have committed any useful suggestion to writing, or observed any means for improving the crops and the cattle or for promoting the public interests declares it publicly.

शालेः क्षेत्राणि प्रदाहेन बहुशस्यप्रदानि कृतानि। धान्यानि द्विः रोपितानि। धान्यक्षेत्रात् कक्षाणामुन्मीलनम-क्रियत। अभिनवक्षेत्राणि कृषियोग्यानि संस्कृतानि। तेषां तृणानि वनानि च प्रदग्धानि। कार्पासबीजस्य लाक्षारसावसेचनेन रक्तवर्णः कार्पास उत्पादितः।

सेचनसाधनानि

सिन्धुसभ्यतायुगे सेतुबन्धेन नदीनां जलं समाहृत्य प्रणालीभिः प्रवाह्य क्षेत्राणां सेचनं कृतम्। वैदिकयुगे कूपजलं चक्रेणोद्वाह्य नालिकाभिः क्षेत्रसेचनाय प्रयुक्तम्।

महाभारतयुगे प्रायशो जलाशयानामुपयोगिता सेचनाय बभूव। नदीतटवासिनस्तु नदीमातृका बभूवुः।

अर्थशास्त्रानुसारं सर्वेषां ग्रामीणानां जनानां सहयोगेन सेचनार्थं सेतुबन्धाः निर्मिताः। महाजलाशया उच्चतमधरातले निर्मापिताः। तेषां जलं निम्नस्थलेषु स्थितानां जलाशयानां पूरणायोपयोजितम्। शासकाः सेचनायोजनानां विषये समुत्सुका आसन्। सौराष्ट्रप्रदेशे गिरिनगरस्य सुदर्शनतडागस्येतिहासः मौर्ययुगाद्गुप्त-युगपर्यन्तं भारतीयानां राज्ञांतत्सम्बधिप्रयत्नं निदर्शयति। चन्द्रगुप्ताशोक-खारबेल-रुद्रदाम-स्कन्दगुप्त-वाक्पति-भोज-करिकाल-राजेन्द्रादीनां नृपतीनाम्। सेचनकार्याणि प्रख्यातानि सन्ति। क्वचित्तुलाकोटिः सेचनाय प्रयुक्तासीत्।

काश्मीरको महाराजो ललितादित्यस्तु 'अरघट्टाली' निर्माय वितस्ताया जलं बहुषु ग्रामेषु संचारयामास। तद्यथा कल्हणः-

चक्रे चक्रधरे तेन वितस्ताम्भःप्रतारणम्।
विनिर्मायारघट्टालीस्तांस्तान् ग्रामान् प्रयच्छता।।

(राज० ४.१९२)

-नन्दन संस्कृत महाविद्यालय,
इसहपुर, मधुबनी (बिहार)

मनुष्य जैसे अपने सुख के लिये अन्न आदि जलादि पदार्थों को सम्पादन करें, वैसे ही औरों के लिये भी दिया करें।
-यजुर्वेद-७/२

अन्नसंवर्धने यज्ञमहत्त्वम्

सत्यकामः....✍

सृष्टिरियं कर्मफलाधीना समग्रचेतनव्यवहारः कर्मफलचक्रे अवस्थितः। तात्विकस्तरे परमात्मा कर्मणैव सृष्टिस्थितिलयरूपफलं परिणामं वा जनयति। भारतीयतत्त्वचिन्तने पुरुषः अन्नाद उक्तः। तात्पर्यं त्विदं यत् पुरि शरीरे स्थितः आत्मा यावत्कालं शरीरवान् भूत्वा तिष्ठति तावत्कालं शरीरयात्रायै अन्नमत्ति। अतः अन्नं प्राप्तुं सः कर्मवान् भवति किन्तु अन्नं जीवनस्य साधनमस्ति, साध्यं न। साध्यन्तु पुरुषार्थ एव। अन्नशब्दस्य व्युत्पत्तिविषये कथयति आचार्यः यत् **'अद् भक्षणे'**[१] धातोः **(निष्ठा)**[२] सूत्रेण क्तप्रत्यये अन्न शब्दः सिद्ध्यति। निरुक्तकारो यास्कः अद् भक्षणे धातोः नप्रत्यययोगाद् **(कृवृजृसिद्रूपन्यनिस्वपिभ्यो नित्)**[३] अनेन अन्नशब्दस्य निर्वचनं विधाय अन्नशब्दस्य अर्थम् अद्यतेऽत्ति च भूतानि इति स्वीकरोति।[4] वस्तुतः अन्नं यदा अद्यते तदा वृद्धिकारिकाः क्रियाः जायन्ते प्राणिषु। वृद्धिं सम्प्राप्य पुनः अन्नेनैव अद्यन्ते प्राणिनः। पञ्चभौतिके हि जगति परस्परम् अनुप्रवेशतया पञ्चभूतानि अन्योऽन्यैरद्यन्ते तान्यदन्ति च, अतः सर्वाण्यपि भूतानि अन्नं भवन्ति एवमेव पाञ्चभौतिकं स्थूलशरीरं प्राणैः युक्तः जीवात्मनोऽन्नमय कोशः इत्युच्यते। स चान्नमयकोशः कालभावं प्राप्य अन्नेनैव पोष्यमाणः पुनः कालस्य आहारो भवति। शरीरपोषणनिमित्तभूतान्नस्य संवर्धने यज्ञस्य महती आवश्यकता वर्तते। उक्तमपि श्रीमद्भगवद्गीतायां यत्–

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यः यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।[५]
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।[६]

श्लोकेऽस्मिन् अन्नसमुत्पादने पर्जन्यस्य महती आवश्यकता प्रतिपादिता। पर्जन्यस्य समुत्पादने यज्ञस्य आवश्यकता प्रतिपादिता। अन्नस्य च भूतानां समुत्पादने आवश्यकता, किन्तु अत्र मूलं यज्ञ एव अन्नसमुत्पादने प्रतिपादितं कथं यज्ञाद् अन्नसंभवः इत्युक्ते प्रतिपादयति यत् आदित्याद् वृष्टिसृष्टिः प्राकृतिकी प्रक्रिया अस्ति किन्तु अनुकूलवृष्टिकारकः पर्जन्यः प्राकृतिकघटना मात्रं न भवति अपितु यज्ञस्तत्र हेतुः भवति। यज्ञः वस्तुतः हव्यद्रव्याणां सूक्ष्मो जायां परिवर्तनस्य वैज्ञानिकी प्रक्रिया अस्ति। व्रीहियवादीनां हव्यानां सूक्ष्मांशः अग्निना धूमरूपेणान्तरिक्षे नीयते। स एव धूमः अभ्रो भवति। अभ्र एव पर्जन्यः, यः अन्नस्य पुष्टिकरं गुणमवधार्य वर्षणयोग्यो भवति। दाहात्मकस्वभावोऽग्निः हव्यादिरूपेणेन्धनं प्राप्य वायुना प्रेर्यमाणः अन्तरिक्षं गच्छति। तदा स ऊर्ध्वं वायुनोदितः धूमो भवति। धूमः अभ्रो भवति, अभ्रावस्थां प्राप्य न भ्रश्यते। वस्तुतः धूमेन सह यद् हव्यान्नं सूक्ष्मरूपेण ऊर्ध्वं प्रेर्यते तद् पृथिवीत्वात् गुरु भवति। अतः गुरुत्वात्पतनम् इति न्यायात् तस्य पतनं सम्भाव्यते किन्तु शीतीभूय वायुभिः अवरोध्यमानः न भ्रश्यते।

अभ्रा एव अन्तरिक्षस्थवायुरूपमेघाः भवन्ति। स एव धूमअभ्र–मेघ–इति क्रमेण वर्षाकारकावस्थायां पर्जन्य इत्युच्यते। यदा पर्जन्यो वर्षति तदा यवाद्योषधयो जायन्ते ओषधिभ्योऽन्नं भवति। शतपथब्राह्मणे साक्षादग्नेः वृष्टिक्रमः उक्तः।

'अग्नेर्वै धूमो जायते धूमादभ्रम् अभ्राद् वृष्टिः।'[७] एवमुपर्युक्ते भगवद्गीतावचने उक्तो यज्ञोऽग्निरेवेति वक्तुं शक्यते, तस्माद् यज्ञात् पर्जन्यो भवति अथोल्लेखनीयमत्र यद् अग्निना यथागुणं हव्यं समर्प्यते, तद्गुण एव धूमो भवति, तथैव चाभ्रं मेघो वर्षा अन्नं च भवति। अन्नगुणान्विता वर्षा, वर्षानुरूपा ओषधयः तदुत्पन्नं चान्नमन्नानुरूपश्च पुरुषो भवति। लोकेऽपि एषा प्रसिद्धिः

श्रूयते यद् यादृशि भूमौ जातम् अन्नमत्ति प्राणी, तद्वदेव तस्य रूपाकारगुणाः जायन्ते। उक्तप्रकारेण पर्जन्य एव साक्षादन्नस्य परम्परया च समस्त-जीवसृष्टेः कारणं भवति। अन्नस्य हेतुभूताः वनस्पत्योषधयो चरप्राणिवदेव प्रजायन्ते प्रजननक्षमत्वात्। प्रजननं हि सजातीयपदार्थजननक्षमत्वम् इति आधुनिकाः जीववैज्ञानिकाः अपि स्वीकुर्वन्ति। अन्नं प्रजाश्चोभयं बीजानुसारेणैव जायते। अत्र विचारणीयं यद् बीज एव जीवो भवति। कर्मजन्यादृष्टवशादेव कश्चिद्-जीवोऽन्नादिरूपेण भुक्तः आङ्गिरसवीर्यतया रेतः सेचनेन स्त्रीयोनिं प्राप्य संवर्धितः पोषितश्च पुरुषाकारतया जायते, कश्चिज्जीवश्चादृष्टवशादेव भूमेरन्तः निक्षिप्य तिष्ठति। ते च जीवा अव्यक्तबीजानि भूत्वा पर्जन्येन प्राप्तजीवना पौनः पुन्येन सस्यत्वेन प्रवर्धन्ते। अतः यज्ञप्रज्ज्वलित-समिधाभिः प्रचुरमात्रया तापसर्जनेन हविष्यपदार्थानां धूमेन च मेघानिर्माणे सहायो भवति अतोऽथर्ववेदस्य सीरायुञ्जन्ति सूक्ते शुनासीराभ्यां हविष्यप्रदानस्य निर्देशः-

'शुनासीरा हविषा तोषमाना सुपिप्पलाः ओषधी कर्तमस्मै।'[८] हविषा सन्तुष्टैः मरुदादिविश्वैर्देवैरनुमता सीता सस्यसमृद्धिं प्राप्नोति। **'घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वेदेवैरनुमता मरुद्भिः। सा नः सीते पयसाभ्याव-वृतस्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना।।'**[९]

मन्त्रार्थः घृतेन मधुना च सिंचिता भूमिः सूर्यवाय्वादीना-नुकूल्ये सति अस्मान् बलं प्राणशक्तिमदद्यात् धृतवती अन्नदात्री च भवेत्।

अन्नसमृद्धिविषये शुक्लयजुर्वेदस्य मन्त्रे उक्तम्-
व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।[१०]

यज्ञेन व्रीहियवमुद्गमाषादिसर्वविधधान्यानां समृद्धिः भवति। वाजपेयेन यज्ञेन अन्नाधिपत्यलाभश्च शास्त्रानुमोदित एव।

ऐतरेयब्राह्मणेऽपि उक्तम्-

न ह वा अपुरोहितस्य राज्ञो देवा अन्नमदन्ति तस्माद्राजा यक्षमाणे ब्राह्मणं पुरो दधाति।।[११]

यज्ञैरन्नसिद्धित्वात् यज्ञसाधकपुरोहितानां विशेषसम्मानमासीत् राष्ट्रे। यज्ञाग्नि-समिधा-धूम-भस्मादियज्ञीय-तत्वानि वनस्पतीनां पोषकानि भवन्ति।

यज्ञधूमेनापि अन्नसमृद्धिः भवति। घृतमधु-दुग्धसोमरसादिपुष्टकरैः यज्ञाहुतिभिः वातावरणे प्रसरति यद्धूमो तेन लतापादपप्ररोहादिभिः लभ्यते वायव्यसारः।

वेदविज्ञानाचार्यपण्डितवीरसेनवेदश्रमी वनस्पतिषु यज्ञस्य विस्मयजनकं प्रभावं समीक्ष्य लिखन्ति, येषु वृक्षेषु सततं फलाभाव आसीत् तेषु जातानि फलानि, येषु फलानि लघुकटुकषायाण्यासन् तेषु वृद्धाकारसरसमधुराणि फलानि समागतानि। यथा वायुमण्डले ऑक्सीजननाइट्रोजनयोः प्रधानरूपेण समावेशात् ऑक्सीजनेन जीवन्ति चेतनप्राणिनः नाइट्रोजनेन वनस्पतयश्च तथा यज्ञधूमेन वनस्पतयो धूमस्य सूक्ष्मतैजसप्राणेन च जीवाः विशेषेण लाभान्विता भवन्ति।[१२]

यज्ञधूमेन पर्यावरणशोधनं कीटनाशश्च भवति। यतः यज्ञधूमे पर्यावरणशोधनस्याभूतपूर्वा शक्तिर्विद्यते यज्ञे अग्निप्रज्ज्वालनाय नवसमिधः प्रयुज्यन्ते।

'अर्कः पलाशः खदिरश्च अपामार्गोऽथ पिप्पलाः। उदुम्बरः शम्याम्रश्च दर्भश्च समिधः क्रियात्।' एते कीटनाशकाः भवन्ति। उक्तमपि अथर्ववेदे **'समिधः पिशाचः जम्भनी।'**[१३]

हविः सुगन्धितं पोषकञ्च भवति। स्मार्तोल्लासे तिलम्, दधिः, पयः, सोमो यवागूरोदनं घृतं तण्डुलं फलं माषश्चेति दशहविद्रव्याणामुल्लेखः। चन्दनागुरुकर्पूर-गुग्गुलादीनामपि प्रयोगः। एते पदार्था सूक्ष्मांशेन वायुमण्डले विचरन्तः पर्यावरणं शोधयन्ति रोगजनककीटान् विनाशयन्ति शस्यं तर्पयन्ति च। गुग्गुलधूमस्य रोगशमनशक्तिः वर्णिता अथर्ववेदे-

नतं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते।
यं भेषजस्य गुग्गुलो सुरभिर्गन्धो अश्नुते।।[१४]

यज्ञधूमेन भूमेरुर्वराशक्तिर्वधनं भवति। यद् क्षेत्रमनुर्वरं तत्र यज्ञधूमस्य प्रभावो मृत्तिकायामपि परिलक्ष्यते। समिधः हविषश्च सूक्ष्मांशा दिवसः सौर्यतापेन

रात्र्याः शीतलज्योत्स्नया वायुमण्डलीयाऽर्द्रतया मृत्तिकाकणैः सह सम्मिश्र्य भूमिमुर्वरां कुर्वन्ति सरसाञ्च अतो वैदिकवाङ्मये कृषिक्षेत्रे यज्ञसम्पादनस्य मातरं महीमाहुतिप्रदानस्य च निर्देशः-

'वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमिति अन्नं वै वाजो अन्नस्य नु प्रसवे मातरं महीमिति।'[१५]

यज्ञभस्मना शस्यपोषणं भवति। यज्ञभस्म मृत्तिकापोषकं भवति। गोकरीषेण सह यज्ञभस्मप्रयोगेण सर्वाणि शस्यविनाशकानि कीटानि नश्यन्ति। मधुधृतदुग्धतिलादिभस्मना फलेषु माधुर्यरसवृद्धिश्च भवति। मन्त्रोच्चारेणापि अन्नसंवर्धनं भवति। यज्ञेषु मन्त्रोच्चारणपूर्वकमाहुतिः दीयते देवेभ्यः।

मन्त्रध्वनेः प्रभावोऽपि भवति स्थावरजङ्गमेषु। वैज्ञानिकैः परीक्षणैः १०-२० % यावत् शस्यवृद्धिः प्रमाणिता मन्त्रप्रभावैः। प्रभावोऽयं सुपरिज्ञात एवासीत्। ऋषिभ्योऽतः ऋग्वेदे मन्त्रेण सस्यसंवर्द्धनस्य निर्देशः। क्षेत्रकर्षणबीजवपनादीनि सर्वाणि कृषिकर्माणि मन्त्रेणैव स्युः। **'युनक्तसीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्। गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत सृण्यः पक्वमयात्'**[१६] अर्थशास्त्रेऽपि मन्त्रपूर्वकं बीजवपनस्य निर्देशः।

प्रजापतये काश्यपाय देवाय नमः सदा।
सीता मे ऋध्यतां देवी बीजेषु च धनेषु च।।[१७]

आधुनिकवैज्ञानिकैरपि परीक्षणं कृतं वर्तते यत् यज्ञेनान्नसंवर्धनं भवति। वाशिंगटने अग्निहोत्र इति विश्वविद्यालये कृषिवैज्ञानिकैः शस्येषु यज्ञप्रभावस्य वैज्ञानिकं परीक्षणं कृतम्। तेषां मते रासायनिकोर्वरककीटनाशकादीनां स्थाने मन्त्रोच्चारणेन घृताहुतिभिः सम्पादितैः यज्ञैः शस्यानां सर्वरोगनाशनं चतुर्गुणं पोषणञ्च शक्यम्। कृषिक्षेत्रेषु नियमितरूपेण कृतेन यज्ञेन पर्यावरणशुद्धिः तीव्रगत्या शस्यसंवृद्धिश्च भवतः। यज्ञप्रभावः शस्यानां मूलं यावद् भवति तत्रार्द्रतासंरक्षणमधिकतरं परिलक्ष्यते। एको यज्ञः २०० एकडयावत् क्षेत्रस्य शस्यस्वरूपपरिवर्तनेऽलं भवति। तैरभिप्रमाणितं यद् यज्ञधूमः ८ किलोमीटरं यावत् प्रसरति, वायुप्रदूषणं समाप्य क्षेत्रस्य शस्यं पोषयति च। तैः शस्यसंवर्द्धकस्य यज्ञस्य होमथेरपीफार्मिंग इत्यभिधानं कृतम्।[१८]

अनेन ज्ञायते - यज्ञात् अन्नसंभवः इयं कृष्णस्योक्तिः प्रमाणितरूपेण सार्थिका अभूत्। अतः सर्वैः यज्ञ अवश्यं कुर्यादन्नसंवर्धनाय वृष्टये पर्यावरणशोधनाय च।

स्नातकः,
गुरुकुलपौन्धा, देहरादूनस्थम्

सन्दर्भ-सूची-

१. धातुपाठः
२. अष्टाध्यायी
३. उणादिकोषः-३/१०
४. निरुक्तम्-२/७
५. श्रीमद्भगवद्गीता-३/१४
६. श्रीमद्भगवद्गीता-६/७
७. शतपथब्राह्मणम्-५/३/५/१७
८. अथर्ववेदः-३/१७/५
९. अथर्ववेदः-३/१७/९
१०. शुक्लयजुर्वेदः-१८/१२
११. ऐतरेयब्राह्मणम्-८/४०/१
१२. भूमिकाभास्करः प्रथमोभागः, पृ.-२१६
१३. अथर्ववेदः-५/२९/१४
१४. अथर्ववेदः-१९/३८/१
१५. शतपथब्राह्मणम्-५/१/३/४
१६. ऋग्वेदः-१०/१/३
१७. अर्थशास्त्रम्-२/२४/२४
१८. सार्वदेशिकपत्रिका, ७ जूलाई १९९१

स्त्री पुरुष का और पुरुष स्त्री का परस्पर प्रियाचरण अनुकूल रहना व्यभिचार वा विरोध कभी न करना। -पञ्चम समु., सत्यार्थ-प्रकाश

प्रधानमन्त्रिशस्यबीमानीतिः कृषिक्षेत्रे

❑ डॉ. कान्ता शर्मा.....✍

प्रतिदिनं प्रातःकाले समाचारपत्रेषु कृषकाणां दुर्दशायाः सजीवचित्रणं दरीदृश्यते। महती दुर्भाग्यस्य वार्ता विद्यते यत् कृषिप्रधानदेशे अपि कृषकाणाम् एतादृशी स्थितिः वर्तते। भारतवर्षे अशीतिप्रतिशतं जनाः कृष्याधारितं जीवनं यापयन्ति। अपि च एतेषु जनेष्वपि बहवास्तु न्यूनस्तरस्यापि नीचैः जीवन्ति। स्थित्यामस्यां परिवर्तनाय यानि अपि प्रयत्नानि कृतानि, सर्वान्येव आशातीतं साफल्यं नैव सम्भवमभवत्। कारणमपि प्रयत्नानाम् अपूर्णता एवास्ति।

किन्तु साम्प्रतिके काले निर्मिता 'प्रधानमन्त्रि-शस्यबीमानीतिः' इति नाम्नी योजना आशायाः किरणं वर्तते। एतस्याः साफल्यं तु अस्या नीत्याः रूपरेखायामेव प्रतिभासितमस्ति।

पुराकालस्य नीतीनां कुत्रापि तु अधिका भुगतानराशिः तर्हि कुत्रापि दुष्कर-प्रक्रिया तादृशं काठिन्यम् आसीत्। कृषिः सम्भावनाधारितं व्यवसायं वर्तते। अत्र बहवाः कृषकाः तु दातुं शक्नुवन्ति किम्?

उत्तरं तु सर्वज्ञातव्यमेवास्ति यत् 'नैवं मान्याः! ते समर्थाः न सन्ति'।

अनेनैव कारणेन सर्वाः योजनाः केवलं पत्रेषु एव सार्थकाः अभवन् नैव तु धरातले। किन्तु अस्मिन् नवयोजनायां काठिन्यताभ्यः मुक्त्यर्थमुपायः पूर्वमेव कृतः।

प्रधानमन्त्रिशस्यबीमायोजनान्तर्गते लघु-उच्चाः च सर्वाः कृषकाः सम्मिलिताः सन्ति, यद्यपि पुरा एषा सुविधा सीमिताऽसीत्। अस्यां योजनायां भुगतानराश्याः दरं २५ प्रतिशततः अल्पीकृत्य नाममात्रमेव कृतम्। इदानीम् रबी इति कृते १.५ प्रतिशतं, खरीफशस्ये २ प्रतिशतं, कपासे ५ प्रतिशतं तिलहने १.५ प्रतिशतं इति भुगतानार्थं दराणि सन्ति।

अस्यां योजनायां धनार्थे राज्यस्य केन्द्रस्य च उभयस्य सहभागिता भविष्यति। अस्याः प्रक्रिया अपि वर्तते, येन सर्वाः लाभान्विताः भविष्यन्ति। योजनायाः अनेन कारणेन कृषकात्महत्यायाः दरेऽपि ऋणात्मकं परिवर्तनं भविष्यति, इदं अनुमानमस्ति, तदपि एतस्याः सार्थकता स्पष्टा। आपदोपरान्ते कृषकाणां शीघ्रातिशीघ्रं ध नराशिप्रदानाय तकनीकीसुविधाऽपि भविष्यति, येन भ्रष्टनीत्याः मुक्तिरपि सेत्स्यति। उचितं धनं उचितहस्तौ एव गमिष्यति।

एषा नीतिः २०१६ वर्षस्य जूनमासात् प्रारब्धा भविष्यति, या 'नेशनल एग्रीकल्चर इन्शोरेन्स स्कीम', 'मॉडिफाई नेशनल एग्रीकल्चर इन्शोरेन्स स्कीम' च उभयोरेव स्थानं प्राप्स्यति।

आशामहे यत् एषा नीतिः कृष्याः कृषकस्य च हिते च नवकीर्तिं रचयेत्।

प्राध्यापक
गर्ल्स हाई स्कूल,

वि॒द्यां चाऽवि॑द्यां च॒ यस्तद्वेदो॒भय॑ꣳ स॒ह।
अवि॑द्यया मृ॒त्युं ती॒र्त्वा वि॒द्यया॒ऽमृत॑मश्नुते॥

—यजुः० अ० ४० । मं० १४॥

जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है, वह '**अविद्या**' अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तरके '**विद्या**' अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है।

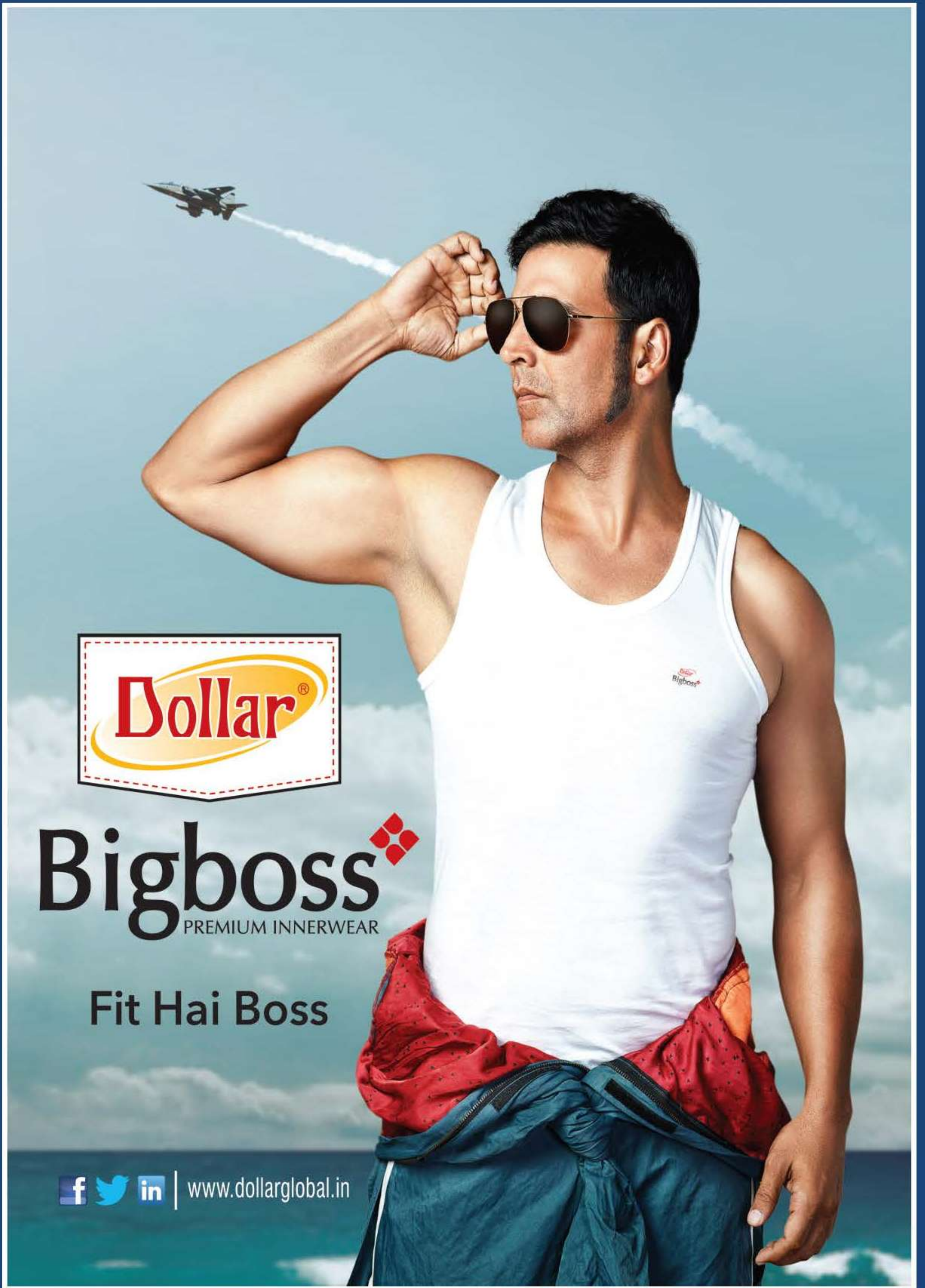
Dollar®
Bigboss
PREMIUM INNERWEAR
Fit Hai Boss
www.dollarglobal.in

पंजीयन संख्या : UTTBIL/2008/235/23546 डाक पंजीयन नं. : UA/DO/DDN/397/2016-2018

पतंजलि®

प्रकृति का आशीर्वाद

करोड़ों देशवासियों का भरोसेमन्द हर्बल टूथपेस्ट

दन्त कान्ति

दन्त कान्ति के लाभ

- ✓ लौंग, बबूल, नीम, अकरकरा, तोमर, बकुल आदि बेशकीमती जड़ी बूटियों से निर्मित दन्त कान्ति, ताकि आपके दाँतों को मिले लंबी उम्र व असरदार प्राकृतिक सुरक्षा।
- ✓ पायरिया, मसूड़ों की सूजन, दर्द व खून आना, सेंसिटिविटी, दुर्गन्ध एवं दाँतों के पीलेपन आदि को दूर करे।
- ✓ कीटाणुओं से लम्बे समय तक बचाकर दे दाँतों को प्राकृतिक सुरक्षा कवच।

पूरी दुनिया अब नैचुरल प्रोडक्ट्स को अपना रही है
आप भी पतंजलि के नैचुरल प्रोडक्ट्स अपनाइए और प्रकृति का आशीर्वाद पाइए

आवाहन– राष्ट्र के जागरुक व्यापारियों व ग्राहकों से हम विनम्र आवाहन करते हैं कि करोड़ों देश भक्त भारतीयों की तरह, आप भी पतंजलि के उत्पादों को अपनी दुकानों व दिलों में सर्वोच्च प्राथमिकता देकर जन–जन तक पहुँचाएं और देश की सेवा व समृद्धि में योगदान दें। जिससे महात्मा गाँधी, भगत सिंह व राम प्रसाद बिस्मिल आदि सभी महापुरुषों के स्वदेशी अपनाने के सपने को मिलकर साकार कर सकें।

पतंजलि आयुर्वेद के लगभग 500 उत्पाद हैं, ये शुद्ध खाद्य उत्पाद व हर्बल सौन्दर्य उत्पाद हमारे पतंजलि स्टोर्स के साथ ओपन मार्केट की दुकानों पर भी उपलब्ध हैं।

मुद्रक, प्रकाशक एवं स्वामी : आचार्य धनञ्जय द्वारा श्रीमद्दयानन्द आर्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुल, दून वाटिका-2 पौंधा, देहरादून (उत्तराखण्ड) से प्रकाशित एवं जयरति ऑफसेट स्क्रीन प्रिन्टर्स, 35 कांवली रोड, देहरादून से मुद्रित।